ISSN 0974-1100

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ - A Social Science Research Journal

Peer Reviewed Bilingual International Research Journal

The Journal indexed in the UGC-CARE list.

वर्ष 31 * अंक - 121

अप्रैल-जून, 2025

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ A Research Journal of Social Sciences

Peer Revied Bilingual International Research Journal
This Journal is included in the UGC-Consortium for Academic and Research Ethics

वर्ष 31, अंक 121 अप्रेल–जून, 2025

❒
प्रधान सम्पादक
डॉ. हरिमोहन धवन

❒
प्रकाशक
पी.सी. बैरवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी
बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010
दूरभाष (0734) 2518737
E-mail : mpdsaujn@gmail.com Website : www.mpdsa.org

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

परामर्श मण्डल

डॉ. प्रकाश बरतुनिया
पूर्व कुलाधिपति– बाबा साहेब अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. अनिल दत्त मिश्रा
प्रतिष्ठित गांधीवादी विद्वान व वरिष्ठ उपाध्यक्ष, सुलभ अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सेवा संगठन, नईदिल्ली

डॉ. रामगोपाल सिंह
पूर्व आचार्य, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.)

डॉ. जयप्रकाश कर्दम
वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

डॉ. हीरालाल अनिजवाल
अतिरिक्त संचालक, उज्जैन संभाग, उच्च शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश

डॉ. डी. डी. बेदिया
आचार्य एवं निदेशक, व्यवसाय प्रबंध संस्थान, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

सम्पादक मण्डल

डॉ. ज्ञानचन्द्र खिमेसरा
पूर्व आचार्य अर्थशास्त्र व प्राचार्य, शास.स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर

डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलु
पूर्व आचार्य इतिहास व प्राचार्य, शास. माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. शैलेन्द्र पाराशर
पूर्व आचार्य समाजशास्त्र व अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. प्रेमलता चुटैल
पूर्व आचार्य, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. अरूण कुमार
प्राध्यापक,राजनीति विज्ञान, शासकीय तिलक महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)

प्रधान सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन
आचार्य, राजनीति विज्ञान व पूर्व प्राचार्य, उच्च शिक्षा विभाग, (म.प्र.)

प्रकाशक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,
बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

वर्ष 31, **अंक** 121 **अप्रेल–जून, 2025**

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

वर्ष 31 अंक 121 अप्रेल–जून, 2025

❐ अनुक्रम ❐

1. वर्तमान दलित वर्ग एवं उसका बदलता अर्थशास्त्र — डॉ. अजय कुमार 1

2. समकालीन समाज में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन — आलोक कुमार तिवारी, डा. ज्याउद्दीन 12

3. राजस्थान में लैंगिक असमानता के आयाम एवं प्रवृत्तियाँ — श्रीमती शुभलता यादव, डॉ. संजीव कुमार 23

4. घरेलू कामगार महिलाओं के प्रति यौन हिंसा वाराणसी जिले के विशेष संदर्भ में — मंजरी गोंड, डॉ. प्रतिमा गोंड 33

5. डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन में अस्पृश्यता का ऐतिहासिक विश्लेषण — महेश कुमार 44

6. आदिवासी धर्म–संस्कृति के सरंक्षक गोंड कलाकारों की विविध लोककलाएं — डॉ. अर्चना रानी 55

7. ग्लास सीलिंग और निजी स्कूल की शिक्षिकाएं — डॉ.संजय कुमार, डॉ. पंकज सिंह 62

8. जाति का उन्मूलन – अम्बेडकर से परे — मेवालाल 72

9. भारत में दिव्यांग महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु संबंधित नीतियाँ प्रभाव और समावेशन — आँचल, डॉ. दिव्या रानी 85

10. किसान पहचान की राजनीति में राजनीतिक दलों की बदलती हुई भूमिका का विश्लेषण, 1980–2022 उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में
सौम्या राय, डॉ. दिव्या रानी 96

11. **Healthcare Practices and Beliefs among Trives in Baran District, Rajasthan** **Alok Chauhan 110**

12. **Revisiting Gandhian Thought for Holistic Development in Emerging India- Addressing Contemporary Challenges and Opportunities** **Mr. Lav Kumar, Ms. Ankita Pandey 121**

13. **Inclusive Education- Reflection of Dr. B.R. Ambedkar's Philosophy of Social Justice in the National Education Policy 2020 and National Curriculum Framework for School Education 2023**
Dr. Subhash Singh 132

14. **The Position of Indian Scheduled Tribe Women in the MSME Sector** **Dr. Himanshu Agarwal, Taruna 142**

15. **The Dutch East India Company and their slave trade across India** **Rohit Raj 156**

16. **Kamala Markandaya's The Nowhere Man A Study of The Racial Discrimination Between Two National Identities In Diasporic Literature** **Dr. Pramod Kumar 165**

17. संगोष्ठी प्रतिवेदन डॉ. हरिमोहन धवन 172

'पूर्वदेवा' में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है. सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 01–11

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

वर्तमान दलित वर्ग एवं उसका बदलता अर्थशास्त्र

डॉ. अजय कुमार
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail: ajkumardu@gmail-com Mob. +91 7531829231

सारांश

प्राचीन भारतीय समृद्ध इतिहास (ऋग्वैदिक समय) के बाद भारत के इतिहास में ऐसे कई समय आये जिससे भारत में अस्थिरताऐं आयी है, फिर चाहे वह मुस्लिम शासन हो या अंग्रेजी शासन। इन सबने भारत की सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्था पर कठोर प्रहार किया है। इन सामाजिक जातिगत, जेंडर, गरीबी, बेरोजगारी सम्बंधित समस्याओं का समाधान करने में भारतीय राज्य और प्रशासन ने पुरजोर परिश्रम किया है। इस परिश्रम का परिणाम भारतीय जातिगत व्यवस्था और इससे सम्बंधित लोगों में भी देखने को मिला है, यह भारतीय प्रशासन की सक्रियता का ही परिणाम था कि भारतीय दलित समाज ने अपना विकास किया है, प्रशासन में अपने आप को सहभागी और समावेशी स्वीकारा है। राजनितिक, सामाजिक स्वतंत्रता के बाद यह आर्थिक स्वतंत्रता भी आवश्यक थी, और इस सफलता का एक बहुत बड़ा उदहारण है पश्चिम बंगाल के होराह जिले की महिस्य जाति, जिसका लेख में विस्तार से वर्णन है। यह प्रशासन की मुस्तैदी ही थी कि जातिगत, परंपरागत एकाधिकार प्रणालियों में बदलाव आया है। बाजारों में निवेश, व्यापर किसी जाति के माध्यम से नहीं वरन लाभ के पैमाने से तय हुआ है, जिसे हरीश दामोदरन ने 'सेकुलर ग्रोथ' कहा। परंपरागत व्यवसायों में परिवर्तन आया है। यह स्वीकार्य है कि इस उदारवादी, बाजारवादी और निजीकरण ने लाभ और विकास को जाति–शून्य बनाया है। यह सब संभव हुआ है एक उपयुक्त प्रशासन और सामाजिक आतंरिक परिवर्तन से, जिसकी चर्चा यह लेख करता है।

मुख्य शब्द– जाति, बाजार, उत्तर–प्रभुत्वकारी, श्रेणीबद्धता, दलित अरबपति

परिचर्चा

जाति और व्यवसाय, दोनों में जनसाधारण अमूमन कोई खासा संबंध नहीं समझ पाता। जहां जाति कुछ समान लक्षणों वाला एक समूह माना जाता है, कुछ नियमों के साथ काम करता

है, इसमें रिश्तों का आधार जाति संबन्धित होता दिखता है। दूसरी ओर व्यवसाय, 'कुशलता' जैसे पैमानों को महत्व देता है, यहाँ योग्यता महत्वपूर्ण कारक होती है, औपचारिक श्रेणीबद्धता इसमें देखने को मिलती है, जो बदलती भी रहती है, उच्च पद के व्यक्ति निम्न और निम्न पद के व्यक्ति उच्च पदासीन होने की सभी संभावनाएं होती हैं। किन्तु अकादमिक शोध में इन दोनों में मजबूत संबंध है, इसीलिए कहा भी जाता है कि जाति लोगों का विकास, अवसर, सामाजिक स्थिति, और जीवन के भिन्न पहलुओं का निर्धारण करती है, और इन सबमें महत्वपूर्ण कारक होता है एक सफल, और असफल प्रशासन, जिसकी हम चर्चा भी करेंगे।

प्रश्न, जैसे– क्या जाति और व्यवसाय में किसी प्रकार का कोई संबंध है ? यदि है, तो यह विकास को किन रूपों में प्रभावित करते हैं ?, जाति और व्यवसाय समाज को दो अलग–अलग समूहों में बांटते है ?, या किसी प्रकार से दोनों के मिलन के साथ एक समृद्ध समाज का निर्माण होता है ? जिन लोगों ने परंपरागत जातिगत व्यवसायों का अनुगमन किया उनका विकास हो पाया या नहीं ? दोनों ही परिस्थितियों में वह अपने व्यवसाय का चयन करने में स्वतंत्र थे या नहीं ?, और जिन्होंने अन्य व्यवसायों का भी चयन किया वह कितना कामयाब हो पाये ? क्योंकि समावेशन और बहिष्करण भी एक बड़ा प्रश्न है।

भारत में जाति को एक महत्वपूर्ण प्रभावकारी तत्व माना जाता है, जो की वर्तमान सामाजिक संरचना में कभी–कभी लगता भी है, क्योंकि वर्तमान संरचना का इतिहास कई घटनाओं से प्रभावित होकर हम तक पहुंचा है या यूं कहें कि पहुंचाया गया है, अतः कुछ मतभेद और मनभेद हैं। जाति, जो की भारतीय मूल इतिहास और ग्रन्थों का किसी भी प्रकार से हिस्सा नहीं है, ने भारत को समूल प्रभावित किया है। इसने कुछ हद और कुछ समय तक (मंडेलसहन के अनुसार 1955 के समय के आस–पास तक)[1] लोगों को अवसर प्रदान करने में, सहभागिता, समावेशन में समस्या उत्पन्न की हैं, जिसके कारण लोगों के विकास में बाधाएं आई हैं, जसमें एक असमावेशी, अनिच्छुक प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

अकादमिक जगत हमें जाति को यूरोपिय (व्यक्तिवादी मॉडल) नजरिए से परोसा गया है, जो 'एकता' के मॉडल के बिलकुल विपरीत है। इसे एक कर्तव्य आधारित व्यवस्था के परे केवल अधिकार आधारित व्यवस्था के तौर पर लोगों तक पहुंचाया गया (जहां कर्तव्य सभी जातियों के लिए होते हैं और अधिकार मात्र व्यक्ति सम्बंधित)। प्रो. रामचंद्रन वैद्यनाथान (Prof. Ramchandran vaidyanathan) बताते हैं कि जाति को हमें हेय दृष्टि से दिखाया गया है, परंतु यदि देखा जाए तो पता चलेगा कि वास्तव में यह एकता के रूप में प्रलयकारी भी हो सकती है।[2]

वर्त्तमान समय में यह सर्वविदित है कि लोगों की आर्थिक स्थिति(संबंध) उनके अन्य सम्बन्धों का आधार बनती है। आर्थिक संपन्न होना व्यक्तियों का आत्मविश्वास बढ़ाता है, अपराधों के विरुद्ध आवाज उठाने, न्याय प्राप्त करने और अन्य संसाधन जुटा पाने में भी सहायक सिद्ध होता है। आर्थिक संपन्न व्यक्ति ही अनुभव करता हैं कि 'वह अब सौदेबाजी (Bargaining) की स्थिति में भी हैं'। मिल्टन फ्रीडमेन की पुस्तक 'केपिटालिस्म एंड फ्रीडम' में राजनीतिक और नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए 'आर्थिक स्वतंत्रता' को आवश्यक बताया गया है, अतः देख सकते हैं कि इसका होना अन्य क्षेत्रों में भी व्यक्ति का विकास करता है। इन सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं को जमीन तक पहुँचाने में एक मजबूत और दृढ़ प्रशासन की सदैव आवश्यकता होती है।

अकादमिक जगत में विभिन्न विद्वान विकास को जाति के साथ सीधे तौर पर जोड़ते हैं, खासकर इस नजरिये से कि जाति ने लोगों के विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न की है, जैसे– सुखदेव थोराट (Sukhadeo Thorat) बताते हैं कि सामाजिक अवसरों में कुछ लोगों का(उच्च जाति) 'अनैच्छिक समावेशन' (Un-favourable Inclusion) और कुछ का(निम्न जाति) 'अनैच्छिक बहिष्करण' (Un-favourable Exclusion) किया जाता है, जो 'सब चिह्नित होता है (This All Work Done Selectively)।[3] इन सब आधारों पर वह कार्यों/रोजगार में भेद को 'व्हाइट कॉलर (Whit Collar)' और 'ब्लू कॉलर (Blue Collar)' नौकरियों के आधार पर विभाजित किया जाता हुआ भी बताते हैं। वहीं केविन मुंशी (Kavin Munshi) विकास के मार्ग को जातिगत 'संपर्क (Contact)' के विचार से जुड़ता दिखाते हैं, जहां वह बताते हैं कि रोजगार प्राप्त होना, बैंक से ऋण प्राप्त होना, आकस्मिक कार्य में आर्थिक सहायता में जाति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह इसके प्रभाव को विद्यालय की शिक्षा से भी जोड़ते हैं जहां वह कहते हैं कि उच्च जाति के लोग अँग्रेजी शिक्षा ग्रहण करते हैं, जबकि निम्न जाति के लोग मराठी (मुंबई अध्ययन), जो आगे जाकर 'ए' ग्रेड नौकरियों एवं 'बी, सी, डी' ग्रेड नौकरियों में तबदील हो जाता है, और यह सब उनके विकास को प्रभावित करता है।[4] जयति घोष (Jayati Ghosh) भी कहती हैं कि समाज के वंचित वर्ग को बाजार में रखकर उनको मुनाफे से दूर रखा गया है। अमित बसोले (Amit Basole) भी 'गैर–रोजगार संवृद्धि (Growth without Employment)' की बात करते हैं, जह यूपीए (UPA) के समय से 10 प्रतिशत विकास दर होने के बावजूद भी रोजगार दर मात्र एक प्रतिशत ही बताते हैं।

अकादमिक जगत में यह सब है, परंतु अकादमिक तयखाने में ऐसा लेखन एवं व्यावहारिक धरातलीय ज्ञान और अनुभव भी छुपा हुआ है जिसके बारे में विरले ही चर्चा की जाती है, जैसे– किस प्रकार से पश्चिम बंगाल में महिस्य (Mahishy) जाति जो निम्न समुदाय से संबंध रखती थी उसने व्यावसायिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त की, और यह सब इसलिए संभव हो पाया क्योंकि उन्हें इस क्षेत्र में अनुभव अपने पूर्वजों से मिला था(जो एक जातिगत अनुभव था)। डिक्की जैसी संस्थाओं ने दलितों को बड़े उद्योगपति बनने में सहायता की है, इस समुदाय से लोग अरबपति भी हैं जिसका वर्णन चंद्र भान प्रसाद, मिलिंद कांबले, अंकलेश्वर अय्यर और सुरेन्द्र सिंह जोधका करते हैं। जहां अय्यर यह भी बताते हैं कि इस वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि हुई है, उनकी दूसरों पर से निर्भरता कम हुई है, वह अपना व्यवसाय कर रहे हैं।[5]

उच्च जाति के लोग भी अब श्रेणीबद्धता की परवाह किए बिना सभी प्रकार के कार्य कर रहे हैं, वह बताते हैं कि इनकी सत्ताओं को चुनौती मिली है, जिसका समर्थन एंद्रे बेटली (Andre Beteille) भी करते हैं, जब वह अपने शोध क्षेत्र श्रीपुरम का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि प्रभुत्वकारी जातियों का एकाधिकार समाप्त हुआ ह (The Dominance Of Upper Castes Have Ended)। इस सबमें एक कुशल और कर्मबद्ध प्रशासन रहा है।

रोम की एक पुरानी कहावत है– 'निजी संपत्ति की गंध' नहीं होती (Private Property Doesn't Have Smell)', वह किसी विशेष से संबंध नहीं रखती, उसका संबंध केवल बाजार

और लाभ से होता है। बाजार में निवेश, जाति, विचारधारा, पारिवारिक सम्बन्धों से बेदाग रहता है, जिसे हरीश दामोदरन (Harish Damodaran) 'सेकुलर ग्रोथ (Secular Growth)' की वजह कहते हैं।[6] वास्तव में भारत में व्यवसाय केवल कुछ जातियों तक ही सीमित नहीं रह गया है, अनेकों जातियों ने अपने परंपरागत व्यवसायों को छोड़ कर नए/गैर–परंपरागत व्यवसायों को अपनाया है, और यह व्यवसाय परिवर्तन प्रक्रिया 1991 के बाद तो और तीव्र हुई है। ज्ञान एवं कौशल आधारित नए अवसर खुले, इसने अलग–अलग पृष्ठभूमि से आए हुए लोगों को अपने में समावेशित किया और इन्हें भी लाभ/विकास में सहभागी बनाया है।

प्रो. वैद्यनाथन अपनी पुस्तक 'इंडिया अनइनकोर्पोरटेड (India Unincorporated)' में बताते हैं कि भले ही 'राजनीति में जाति (Caste in Politics)' विभाजनकारी तत्वों को अपने साथ रखती हो, किन्तु 'आर्थिक क्षेत्र में जाति (Caste in Economic Field)' सामुदायिक एवं एकता के भाव के साथ काम करती है। जिन जातिगत लोगों ने राजनीति का मार्ग चुना उनमें से कुछ नाममात्र लोगों को ही सफलता मिल पाई है, जबकि जिन्होंने आर्थिक मार्ग चुना उनका अन्य लोगों के साथ विकास हुआ है।

जोधका, जेम्स मेनर (James Manor) को संदर्भित करते हुए बताते हैं कि मेनर ने भारतीय राजनीति और समाज को पाँच दशकों तक समझा है, इस समय में वह दो प्रमुख परिवर्तन बताते हैं, जो भारत में हुए हैं, प्रथम– लोकतन्त्र पहले से मजबूत हुआ है (Democracy Has Become Strong)", तथा "भारतीय गांवों में जाति श्रेणीबद्धता में कमी आई है (Caste Heirarachy Has Decreased In Villagè)।", हालांकि वह इस बात को स्वीकार करते हैं कि यह दूसरा परिवर्तन ज्यादा खुलकर सामने लाया नहीं गया है, इस बात को श्री नारायणस्वामी श्रीनिवास (Narayanaswami Srinivasan) अपनी पुस्तक 'एन ओबिचूरी ऑन कास्ट एज आ सिस्टम (An Obituary on Caste as a System)' में भी स्वीकारते हैं कि देश के विभिन्न भागों से ग्रामीण इलाकों से जाति की पुरातन व्यवस्था समाप्त हुई है।[7]

जोधका अपने लेख में बताते हैं कि प्रशासन की भिन्न नीतियाँ एवं 'ऊपर से(From Above)' किए गए प्रयासों ने भी जाति प्रवृति परिवर्तन में योगदान दिया है। आरक्षण की नीति(Reservation PolicieS) ने न केवल सामाजिक आर्थिक परिवर्तन सार्थक बनाया है बल्कि निम्न जाति के लोगों को सत्ता का सुख भी प्रदान किया है। इसी प्रकार 'बगल से(From side)' भी परिवर्तन आए है, जैसे– कृ ा क्षेत्र में हरित क्रांति जैसे परिवर्तनों एवं आद्योगिक विकास ने पुरातन निम्न जातियों के परंपरागत व्यवसायों में परिवर्तन किया है, जिसने इन्हें नए अवसर भी दिये हैं।[8]

गोपाल गुरु भी इस विकास के दावे को स्वीकार करते हुए बताते हैं कि व्यावसायिक मैदान में दलित व्यावसायिक भी है जो लखपतियों की सूची में हैं। यह वर्णित करते हुए कि दलित समाज का संपत्ति संग्रहण को लेकर किसी भी प्रकार का कोई इतिहास नहीं रहा है, वह बताते हैं कि वर्तमान उत्तर–औपनिवेशिक, उदारवादी, बाजारवादी राज्य एवं प्रशासन ने इनको जगह प्रदान की है, जहां यह विकास में सहभागी बन सके और अपना और अपने समाज का विकास कर सके और इसी का लाभ उठा कर यह समाज अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में है।[9]

मुंशी जिस 'संपर्क सिद्धान्त (Contact Theory)' एवं श्री निवास जिस 'प्रभुत्वकारी जाति (Dominant Caste)' का वर्णन करते हैं, मंडेलसहन ओलिवर उसे स्वीकार तो करते हैं किन्तु वह

यह भी बताते हैं कि 1955 के समय से (श्री निवास का अध्ययन समय) इसमें काफी परिवर्तन एवं सुधार आया है। 1991 के आर्थिक सुधारों एवं वैश्वीकरण ने लोगों को जातिगत नहीं वरन ज्यादा मुनाफे की ओर बढ़ाया है, पैसा(लाभ), जाति से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। जोधका भी इस परिवर्तन को स्वीकार करते हैं, जिसके पीछे वह भी अहम कारण उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) को मानते हैं।[10] इस सब को एम एन श्रीनिवासन (M N Srinivasan) जातिगत 'कुछ अच्छा होता हुआ' बता रहे हैं। इन्हीं परिणामों के कारण अय्यर, एडम स्मिथ को जाति विरोधी और दलितों का मित्र भी बताते हैं।

प्रसाद बताते भी हैं कि भारत में आर्थिक सुधारों ने जातिगत समीकरणों में परिवर्तन किया है। पूंजीवादी बाजार (LPG) में भी जातिवाद की तरह सामाजिक अनुक्रम है जो जाति व्यवस्था पर आंतरिक प्रहार करता है, जो राज्य नहीं करता। प्रसाद इस विचार को मानते हैं कि पूंजीवाद में क्षमता है कि वह जाति–व्यवस्था को खत्म कर सकता है, और ऐसा हुआ भी है। वह मानते हैं कि बाजार भारत को जाति मुक्त(जाति–शून्य) बनाने की क्षमता रखता है। उनके अनुसार बाजार केवल आर्थिक संमृद्धि एवं मुनाफे से संबंध रखता है, परंतु हमें यह जानना जरूरी है कि बाजार पुरातन व्यवस्था में परिवर्तन करने में सक्षम भी है।[11] वैसे देखा जाए तो यह पूंजीवाद ही था जिसने सामंतवाद जैसी शोषणकारी व्यवस्था का खात्मा किया था।

मंडेलसहन ओलिवर (Oliver Mendelsohn), अपने लेख में ग्रामीण समाज, सम्बन्धों के बदलते स्वरूप का वर्णन करते हैं, वह बताते हैं कि एम एन श्रीनिवास का 'प्रभुत्वकारी जाति (Dominant Caste)' का विचार काफी कमजोर पड़ गया है। वह लिखते हैं कि यह इतना परिवर्तित हो गया है कि अब भारत किसी मार्क्सवादी वर्गिकरण नजरिए का मोहताज नहीं रह गया है। ओलिवर का तर्क है कि वर्तमान समय में भूमि एवं सत्ता का एक दूसरे से संबंध विच्छेद हो गया है, शक्ति संरचना (Power Structure) में लगातार परिवर्तन आ रहा था, जो कुछ समय पूर्व से यह काफी तीव्र हुआ है, यह एक सक्रीय प्रशासन उसकी जवाबदेही, पारदर्शिता से ही संभव हो पाया है। प्रश्न यदि इस परिवर्तन के न दिखने का है, तो दरअसल हमें यह भी समझने की जरूरत है कि हमें पूर्वतः चीजों को वर्ग (Class) के नजरिये से देखने के लिए प्रोग्राम किए गए हैं, जहां क्रांति नहीं हुई तो हम परिवर्तन हुआ नहीं समझते। परिवर्तन आया है, लोगों ने परंपरागत मलीन कार्यों को छोड़ा है, वह नए कार्य एवं अपनी इच्छा अनुसार कार्यों का चयन कर रहे हैं। मंडेलसहन के अनुसार इस प्रभुत्व को समाप्त करने में 'न्यायिक सत्ता/शक्ति (Judicial Authority)' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिसके 'निर्णय (Judicial Verdicts/ OrderS)' इच्छा विरुद्ध भी मनवाएँ गए हैं, (एस सी, एस टी एक्ट एक्ट इसका एक बड़ा उदाहरण है)।

ओलिवर, आनंद चक्रवर्ती (Anand Chakravarti) के अध्ययन (1964–65) को संदर्भित करते हुए बताते हैं कि(जो उनके अनुसार अंतिम 'पूर्ण ग्रामीण' (देवीसार, जयपुर) अध्ययन (Last Whole Village Study) रहा होगा), देवीसार का प्रभुत्वकारी दौर अब नहीं रहा है। इसका स्वरूप संघर्षात्मक राजनीतिक कारणों (Struggling Political CauseS) की वजह से बदल गया है, यह परिवर्तन 1954 में 'जागीरदारी उन्मूलन' से भी प्रभावित हुआ है। इसने भूमि पर मालिकाना हक को पुनः वितरित किया, 1954 से पूर्व जिन प्रभुत्वशाली लोगों पर 84 प्रतिशत

भूमि थी अब उनके पास भूमि मात्र 29 प्रतिशत के आस–पास ही रह गई है, आधे से ज्यादा गाँव उनके नियंत्रण से बाहर चले गए हैं। लोगों ने विरोध करना, विद्रोह करना और चुनौती देना ुरू किया है, ओलिवर के अनुसार यह 'प्रभुत्वकारी से उत्तर–प्रभुत्वकारी (From Dominating To Post&Dominating)' चरण था।[12]

लेखक बताते हैं कि बहरोड़ (राजस्थान के अलवर जिले में एक मुनिसिपल टाउन) में हरित क्रांति, ईंट के भट्टों, पत्थर की खदानों, छोटी–छोटी दुकानों ने लोगों की आर्थिक क्षमताओं में वृद्धि की है और उन्हें परंपरागत काम और दमन से छुटकारा दिलाया है। ओलिवर मंडेल्सोहन (Oliver Mendelsohn½ 'भंगी' समाज का उदाहरण देते हैं, जो एक पिछड़े समाज के रूप में जाना जाता है। वह बताते हैं कि 1985 तक भंगी समुदाय के 60 में से 5 मकान पक्के बने हुए थे, इस समुदाय के लोग बाहर भी काम कर रहे हैं जिनमें 20 पुणे में, 5 अंबाला, 3 दिल्ली, 2 मुंबई और 2 दार्जलिंग में हैं, इनमें से कुछ लोग पुणे में पिछले 30 वर्षों से ज्यादा समय से हैं। कहने का अर्थ है यह अब वह पुरातन परंपरागत कार्य को नहीं करते हैं, न कोई उन्हें करने को मजबूर करता है, न कोई उनसे इन्हें करवा सकता है। एक और समुदाय जिसकी चर्चा ओलिवर करते हैं वह है 'धनक' समुदाय जो 1985 के समय तक काफी प्रगति कर चुका था, इस समुदाय ने कृषि क्षेत्र से जुड़े पुरातन 'निम्न कार्यों' को छोड़ दिया था। 1985 तक इनमें से 2 शिक्षक, 2 पुलिस अधिकारी तथा समुदाय से संबन्धित लोग पटवारी भी थे, इनमें से कई कुशल–अकुशल कार्यों में भी लिप्त थे।[13]

इन्हें कुछ कार्यों में पुरातन कार्यों से कम ही अर्जन करने को मिल पाता था, परंतु सामाजिक स्तरीकरण में इन कार्यों को पुरातन कार्यों की तुलना में ज्यादा सम्माननीय समझा जाता था, अतः लोगों का परंपरागत कार्यों से स्थानांतरण आर्थिक कीमत पर भी हुआ है। बाकी इन कार्यों(जो निम्न समझे जाते थे) को अब उनके परिवार वाले ही (जो उस भूमि का मालिक है) करने लगे हैं, जो पूर्वतः इन कार्यों को निम्न समझ कर नहीं किया करते थे। इसी प्रकार से राजस्थान के 'जाट' के बारे में भी वर्णन आता है कि वह निम्न कृषक हुआ करते थे, जो जागीरदारी उन्मूलन के बाद काफी समृद्ध हुए एवं राजनीतिक में भी काफी मजबूत हुए।

काफी ब्राह्मण पुरानी भूमियों को खो चुके हैं, उन्हें भी अब रोजगार के लिए पलायन करना पड़ता है। बहुत बड़ा ब्राह्मण वर्ग है जो अपने 'पवित्र' घोषित कार्यों को छोड़ चुका है, यह बहुत आम हो चुका है कि हम ब्राह्मण समुदाय को तथाकथित पवित्र कार्यों तक सीमित मिलें, वे आपको नाई दुकानों, व्यापार करते, श्रम करते, छोटी–छोटी दुकानों पर देखने को मिल जाते हैं, ओलिवर इसके माध्यम से 'जजमानी व्यवस्था' के अंत की ओर भी इशारा कर रहे हैं। मंडेल्सोहन पूर्वी उत्तर प्रदेश का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि यहाँ कांग्रेस के समय से उच्च जातियों का राज रहा है, किन्तु 1967 के बाद चौधरी चरण सिंह के द्वारा पीड़ित जातियों को एकत्रित किया एवं एक मजबूत विकल्प तैयार किया, यह सब प्रयास रहा इस दलित वर्ग का सीधे प्रशासन में भागीदारी से। अतः देखा जा सकता है कि किस प्रकार से जाति और इस विकास मार्ग में जातियाँ विकास की ओर बढ़ी हैं, अब वह अपना व्यवसाय, विकास, भविष्य स्वयं चयन कर रहीं हैं। अब हमें उन पुराने रूढ़िवादी विचारों से मुक्ति पा लेनी चाहिए जो किसी भी प्रकार के परिवर्तन को नजर–अंदाज करते हैं।

इसी समावेशी विकास और समावेशन का एक उदाहरण हमें बंधोपाध्याय और अन्य के अध्ययन में देखने को मिल जाता है जहां वह भारत में पूंजी संचयन, व्यवसाय, जाति एवं विकास के संबंध का वर्णन करते है, लेखन 1940 एवं 1970 के दशक के समय 'महिसयास' जाति से संबन्धित है। बंधोपाध्याय और अन्य, जाति की आर्थिक ऐतिहासिकता (Economic Historicity) पर चर्चा करते है, जहां 1940 से 1970 के मध्य हौराह जिले के छोटे और मध्यम उद्योगों (हौराह– प. बंगाल का एक महानगर) का अध्ययन करते है, जो कि 1850 के दशक से औद्योगिक माहौल में रहा है। रेयमोंड ली ओवेंस और आशीष नंदी (Raymond L Owens, Ashis Nandy) के द्वारा इन महिस्याओं (महिस्य बंगाल में एक कृषक जाति है) को 'नव–वैश्य (Nav-Vaishy)' कहा है। 1966 सितंबर एवं 1968 अगस्त में यहाँ का क्षेत्रक अध्ययन (Field Study) किया गया, जहां यह पता लगा कि महिस्य समुदाय के लोगों ने अपने परंपरागत क्षेत्र व्यवसाय में एक–पक्षीय पकड़ बनाई हुई है। छोटे अभियंता कार्यों में महिस्य जाति का प्रभुत्व था, जो अचानक आया हुआ परिवर्तन नहीं था। मध्य 19वीं शताब्दी से ही हौराह अन्य जिलों की तुलना में तुलनात्मक शहरीकृत एवं औद्योगिक था।[14]

लोगों ने परंपरागत कार्यों को छोड़ा भी है, और जो अभी भी पुरातन व्यवसाय का पालन कर रहे, उन्होने उनके साथ अपना विकास किया है। विकास इतना, कि वह फैक्ट्रियों के मालिक भी हैं, साथ ही अन्य लोगों को व्यवसाय भी प्रदान कर रहे हैं। 1931 में भूमिहीन श्रमिक वर्ग हौराह में 44.64 प्रतिशत से घटकर 1951 में 38.2 प्रतिशत हो गया, जो इनका भूमि की ओर संपन्नता को दिखाता है।

ओवेंस और नंदी बताते हैं कि कई अभियंता कार्यशाला (Engineering Workshops) यह जाति पिछली दो पीढ़ियों से करती आ रही है, इस वर्ग को पूर्व से ही कार्यशालाओं का ज्ञान था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इनमें से कई के द्वारा अपना खुद का व्यवसाय खोला जिसने युद्ध के दौरान बढ़ती मांगों को पूरा किया था, परिणामतः यह वर्ग आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रों में मजबूत हुआ जिसने ब्राह्मणों एवं कायस्थों के वर्चस्व को चुनौती दी है। इससे हम यह समझ सकते हैं कि निम्न समुदाय ने अपने व्यवसाय के साथ अपना विकास भी किया है और यह भी कि तथाकथित उच्च वर्ग के प्रभुत्व को चुनौती भी दी है। ओवेंस अपने साक्षात्कार में एक दृश्य का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं– *"बाबू की तरह दिखता है, एकदम सफेद बिना किसी दाग के धोती में है, कई लोगों से काम लेता, और निर्देशन भी देता है'।"*

यह सब एक बदला हुआ दृश्य है जिसका वर्णन भारतीय अकादमिक जगत में विरले ही देखने को मिलता है, हमें इस प्रकार के परिवर्तन को पहचान देनी होगी।

हालांकि क्षेत्रक अध्ययन में किसी प्रकार के बैंकिंग आंकड़ों के न होने के कारण इस व्यावसायिक वर्ग की वास्तविक आय में परिवर्तन को दिखाया नहीं जा सकता है, परंतु इनके रहन–सहन, भवनों, व्यवहार, सामाजिक स्थान सभी में काफी परिवर्तन आया है जो इनकी परिस्थितियों में बदलाव का सूचक सिद्ध साबित होता है।

फिर भी यदि देखा जाए तो हमें कृषि या भूमि के वितरण से संबन्धित आंकड़े 1928 के टेनेसी एक्ट के संशोधन के बाद से मिलते हैं (जिसमें यह व्यवस्था की गयी कि भूमि हस्तांतरण पर

20 प्रतिशत कर दिया जाना था), हालांकि कृषक भूमि पर शोध करने वालों के अनुसार यह भूमि हस्तांतरण 1920 से होता आ रहा है, इसके साथ ही यह हस्तांतरण की दर 1930 की मंदी के कारण भी सुस्त रही। पार्थ चटर्जी (Partha Chatterjee) इस भूमि हस्तांतरण को आंकड़ों के माध्यम से बताते हैं, महिस्य लोगों में भूमि का हस्तांतरण मिदनापुर (16.86 प्रतिशत), हुगली (12.72 प्रतिशत) और हौराह (12.25 प्रतिशत) हुआ, जो दक्षिण और पश्चिमी बंगाल से ज्यादा था। 1930–31 में हौराह (2.38 प्रतिशत) में भूमि का विक्रय/गिरवी मात्र तीन जिलों नोखाली (3.25 प्रतिशत), बोगरा (2.42 प्रतिशत) और पबना (2.42 प्रतिशत) से कम था।

भूमि खरीदने की दर में वृद्धि हुई है, तथा भूमि गिरवी रख अपनी जरूरतों को पूरा करने में भी कमी आई है, यह सब इस समाज की बदली परिस्थित्यों की ओर इशारा करता है। यह सब संरचना बदलती रही और यह सब महिस्य के हाथों में आता चला गया। लेखकों के द्वारा एक परिवार की चतुर्थ पीढ़ी के लोगों का साक्षात्कार किया गया, जो इनकी संपन्नता का साक्षात उदाहरण है। अनुकूल मण्डल, जिनके द्वारा बौरिया से वार्ड 39(हौराह, महिस्य शोध वार्ड) अपना रहने का स्थान बदला। उस समय तक ओवेंस और नंदी बताते हैं कि यह भूमि ब्राह्मण परिवारों के पास हुआ करती थी (जोगिन मुखर्जी और केशब चंद्र बेनर्जी)। अनुकूल ने 105 बीघा कृषक भूमि को बेचकर 39 वार्ड में भूमि खरीदी (17 Kotthas), एक भाग का रहने में और एक का इंजीनियरीग कार्यशाला के लिए इस्तेमाल किया जिसने 1915 में 22 लोगों को कामगार के तौर पर रखा, जिसमें 18 उसकी जाति से थे। जाति में एक व्यक्ति का विकास होने की स्थिति में औरों का भी विकास होता देखा जा सकता है।

अनुकूल का प्रथम पुत्र जुगल अँग्रेजी माध्यम के एक नामी विद्यालय में गया, 1967 में जुगल कॉग्रेस की ओर से लोकसभा सदस्य के तौर पर चुने गए, वह 300 से अधिक सक्रिय संगठनों से जुड़े हुए थे एवं अन्य–अनेक कार्यों में उतना ही मजबूत हैं जितना कोई पुरातन भद्रलोक हुआ करते थे। अलामोहन दास, जो कि माहिस्य जाति से संबन्धित बड़े उद्योगपति है उनके द्वारा अन्य लोगों के साथ एक औद्योगिक परिवेश छोड़ा है, वह अपने आप को 'वास्तविक बंगाली उद्योगपति (Real Bengali Businessmen)' कहा करते थे। अपने कड़े संघर्ष के बाद दास की प्रथम सफलता 'तोलने की मशीन' से प्रारम्भ हुई जिसमें उन्हें हानि झेलनी पड़ी, इतनी हानि की उसकी पूर्ति के लिए उन्हें अपनी धर्मपत्नी के गहने तक बेचने पड़े। दास ने अपने संबन्धित व्यक्ति से 25 रूपये का ऋण लिया और चाय पत्ती बेचना आरंभ किया, उसने पुनः बचत करना आरंभ किया। 1993 तक उसके द्वारा नई कपड़ा मीलों की स्थापना, छाप मशीनें प्रारम्भ की गईं, इन सब ने दास को रोजगार प्रदाता बनाया। कुछ समय बाद उसने जूट फैक्ट्री खोली, 1938 में 1,000 बीघा भूमि खरीदी। 1940 में इनके द्वारा नए बैंक का निर्माण(1939) किया गया 'दास बैंक लिमिटेड (Das Bank Limited)', जिसकी शाखाएँ बंगाल में हैं। यह सभी तथाकथित निम्न समुदाय की सफलता की कहानियाँ है।

निष्कर्ष

इस जाति–विकास संबंध में आए बदलाव को जेम्स मेनर समझाते हैं, वह भारतीय जातिगत वर्णन तीन रूपों में करते हैं– वर्ण, जाति एवं जातिगत–समूह। मेनर इन तीनों में से जातिगत–समूह (Caste Group) अवधारणा को हाल ही में आया हुआ बताते हैं, जिसमें समान जातियाँ एक दूसरे के साथ गठजोड़ कर अपना संख्या–बल बढ़ाती हैं और यह संख्याबल मायने रखने लग जाता है (खासकर लोकतन्त्र में)। भिन्न परिस्थितियों में देखा जा सकता है कि दलित वर्ग के अर्थशास्त्र में जमीनों आसमान का अंतर आया है, जो समावेशन की ओर निरन्तर बड़ रहा है, यह जगजाहिर है की एक मजबूत और दृढ़शक्ति के प्रशासन के बिना यह बिलकुल भी संभव नहीं था।

❐

संदर्भ सूची

1. *Mendelsohn. "The Transformation Of Authority In Rural India." Pp- 805.*
2. *Vaidyanathan, R. India Growth: The Untold Story –Caste As Social Capital. Pp- 04.*
3. *Thorat. "Labour Market Discrimination: Concept, Forms And Remedies In The Indian Situation." Pp- 02-03.*
4. *Munshi. "Community Networks And The Process Of Development." Pp- 50.*
5. *Aiyar. Capitalism's Assault On The Indian Caste System- How Economic Liberalization Spawned Low-Caste Dalit Millionaires. Pp- 03.*
6. *Damodaran. India's New Capitalists-Caste, Business, And Industry In A Modern Nation. Pp- 13-17.*
7. *Srinivas. "An Obituary On Caste As A System". Pp- 04-05.*
8. *Jodhka. "A Forgotten 'Revolution': Revisiting Agrarian Change In Haryana." Pp- 03-04.*
9. *Guru. Corporate Class And Its Veil Of Ignorance. Pp- 01-02.*
10. *Jodhka. "Caste & The Corporate Sector" Pp- 02.*
11. *Prasad, Chandra Bhan. 2008. "Markets And Manu: Economic Reforms And Its Impact On Caste In India." Pp- 05-07.*
12. *Mendelsohn. "The Transformation Of Authority In Rural India." Pp- 814-817.*
13. *Ibid. Pp- 822-23.*
14. *Bandyopadhyay, Samaddar. "Caste And The Frontiers Of Post-Colonial Capital Accumulation." Pp- 02-04.*

संदर्भ ग्रन्थ

1. *Vaidyanathan, R. India Growth: The Untold Story –Caste As Social Capital. Https://Rvaidya2000.Com/2012/10/18/India-Growth-The-Untold-Story-Caste-As-Social-Capital/*
2. *Panagariya, Arvind, Vishal, More. 2014. "Poverty By Social, Religious And Economic Groups In India And Its Largest States- 1993-94 To 2011-12." No. 2013-02. Indian Growth And Develop ment Review. Https://Www.Emerald.Com/Insight/Content/Doi/10.1108/IGDR-03-2014-0007/Full/Html*
3. *Gupta, Shekhar. "Capitalism Is Changing Caste Much Faster Than Any Human Being. Dalits Should Look At Capitalism As A Crusader Against Caste." Indian Express, April 2021. Https:// Indianexpress.Com/Article/News-Archive/Web/Capitalism-Is-Changing-Caste-Much-Faster-Than-Any-Human-Being-Dalits-Should-Look-At-Capitalism-As-A-Crusader-Against-Caste/*
4. *Narayan, Badri. "A Begger's Song Of Democracy," In Handbook Of Politics In Indian States, Edited By Sudha Pai, 269-280. New Delhi: Oxford University Press, 2013.*
5. *Prasad, Chandra Bhan. 2008. "Markets And Manu: Economic Reforms And Its Impact On Caste In India." Casi Working Paper Series. Center For The Advanced Study Of India, University Of*

Pennsylvania.Https://Casi.Sas.Upenn.Edu/Sites/Default/Files/Research/Markets%2Band%2Bmanu%2B-%2Bchandra %2Bbhan%2Bprasad.Pdf.

6. *Aiyar, Swaminathan S Anklesaria. "Waiting For A Hundred Dalit Billionaires". Times Of India, June 16, 2013.Https://Timesofindia.Indiatimes.Com/Blogs/Swaminomics/Waiting-For-A-Hundred-Dalit-Billionaires/.*
7. *Jodhka, Surinder S. "Caste: Why Does It Still Matter?," In Routledge Handbook Of Contempo rary India, Edited By Knut A. Jacobsen, 243-255, New York: Routledge, 2016.*
8. *Sanklesaria Aiyar, Swaninathan. Harness The Catse System. Swaminomics, 2000. Http://Swaminomics.Org/Harness-The-Caste-System/.*
9. *Manor, James. Accommodation And Conflict. Https://Www.India-Seminar.Com/2012/633/633_James_ Manor.Htm.*
10. *Guru, Gopal. Corporate Class And Its Veil Of Ignorance. Http://Www.India-Seminar.Com/2005/549/ 549% 20gopal%20guru.Htm.*
11. *Thorat, Sukhadeo. "Labour Market Discrimination: Concept, Forms And Remedies In The Indian Situation." The Indian Journal Of Labour Economics51, No. 1(2008): 1-22.*
12. *Omvedt, Gail. Dalits And Democratic Revolution. New Delhi: Sage Publications, 2014.*
13. *Desai, Sonalde, Dubey, Amaresh, Vanneman, Reeve, Joshi, Brij Lal, Sen, Mitali, Shariff, Abusaleh. "Social Integration And Exclusion". In Human Development In India- Challenges For A Society In Transition. New Delhi: Oxford University Press, 2010.*
14. *Jodhka, Surinder S. "Caste & The Corporate Sector". Indian Journal Of Industrial Relations44, No. 2 (2008), 185-193.*
15. *Aiyar. Swaminathan S Anklesaria. Capitalism's Assault On The Indian Caste System- How Economic Liberalization Spawned Low-Caste Dalit Millionaires. Policy Analysis-Cato Institute. 2015. Https://Www.Cato.Org/Sites/Cato.Org/Files/Pubs/Pdf/Pa776_1.Pdf.*
16. *Vaidyanathan, R. Caste As Social Capital. Chennai: Westland Publications, 2009.*
17. *Das, Gurcharan. India Unbound: From Independence To The Global Transformation Age. New Delhi: Penguin Books, 2002.*
18. *Jodhka, S. 2008. "A Forgotten 'Revolution': Revisiting Agrarian Change In Haryana." Poverty And Social Exclusion In India, Indian Institute Of Dalit Studies, New Delhi.*
19. *Kapur, Devesh, C. B. Prasad, L. Pritchett, And D. S. Babu. "Rethinking Inequality: Dalits In Uttar Pradesh In The Market Reform Era." Economic And Political Weekly45, No.35 (2010): 39–49.*
20. *Witsoe, J. 2008. "Caste, Public Institutions, And Inequality In Bihar." Unpublished Working Paper, World Bank, Washington, DC.*
21. *Bandyopadhyay, Ritajyoti, Samaddar, Ranabir. "Caste And The Frontiers Of Post-Colonial Capi tal Accumulation." In Accumulation In Post-Colonial Capitalism, Edited By Iman Kumar Mitra, Ranabir Samaddar, Samita Sen. Singapore: Springer Nature, 2017.*
22. *Damodaran, Harish. India's New Capitalists-Caste, Business, And Industry In A Modern Nation. New York: Palgrave Macmillan, 2017.*
23. *Guru, Gopal. "Rise Of The 'Dalit Millionaire': A Low Intensity Spectacle," Economic And Politi cal Weekly17, No-50 (2012): 1-10.*
24. *Jodhka, Surinder S. "Dalits In Business: Self-Employed Scheduled Castes In North-West India." Economic And Political Weekly45, No. 11 (2010): 41-48.*
25. *Munshi, Kaivan. "Community Networks And The Process Of Development." In American Eco nomic Association, Journal Of Economic Perspectives28, No-4 (2014): 49-76.*
26. *Mendelsohn, Oliver. "The Transformation Of Authority In Rural India." Modern Asian Studies27, No. 4 (1993): 805-842.*
27. *Kaivan, Munshi. Rosenzweig, Mark. "Traditional Institutions Meet The Modern World: Caste, Gender, And Schooling Choice In A Globalizing Economy" In American Economic Review96, No-4 (2006) 1225-1252.*
28. *Srinivas, M N. "An Obituary On Caste As A System", Economic And Political Weekly38(5), (2003): 455-459.*
29. *Thorat, Sukhadeo. "Economic Exclusion And Poverty: Indian Experience Of Remedies Against*

Exclusion, Prepared For Policy Forum Agricultural And Rural Development For Reducing Poverty And Hunger In Asia: In Pursuit Of Inclusive And Sustainable Growth Session C On "Poverty And Hunger In Rural Asia" Organized By International Food Policy Research Institute (IFPRI) And Asian Development Bank (ADB) ADB Headquarters, Manila, Philippines, August 9–10, 2007.

30. *Thorat, Sukhadeo, S Newman, Katherine. "Caste And Economic Discrimination: Causes, Conse quences And Remedies", Economic And Political Weekly42, No.41 (2007): 4121-4124.*
31. *Jadav, Narendra. Economic Policy And Social Justice In India: An Agenda For The New Millen nium. Http://Www.Drnarendrajadhav.Info/Drjadhav-Data_Files/Published%20papers/ Economic%20Policy%20and%20Soc*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 12–22

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

समकालीन समाज में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

आलोक कुमार तिवारी
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, डीएवी पीजी कॉलेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
E-mail: aloktiwaribhu751@gmail.com

डा. ज्याउद्दीन
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डीएवी पीजी कॉलेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
E-mail: ziyasocio@gmail.com

सारांश

वर्तमान में बाल श्रम एक वैश्विक गंभीर समस्या बनी हुई है। बाल श्रम का विषय वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय मानकों के संदर्भ में समकालीन चुनौती के रूप में फिर से चर्चा में आया है जब विशेषकर यूनिसेफ के एक अनुमान के अनुसार कोविड–19 महामारी के कारण पिछले दो दशकों में पहली बार बाल श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हो सकती है। भारत जैसे विकासशील देशों में बाल श्रम एक निरंतर समस्या बनी हुई है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत में 14 वर्ष से कम आयु के करीब 10.1 मिलियन बच्चें श्रम में संलग्न है, जिसमें से अकेले उत्तर प्रदेश में 2.17 मिलियन बाल श्रमिक है। यहाँ की सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ जो कि गरीबी, पारिवारिक दबाव, बेरोजगारी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित पहुँच जैसे कारकों से संबंधित है को समझना महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार ये परिसिथितियाँ बच्चों को विद्यालय जाने की जगह कार्य पर जाने को मजबूर करती है। प्रस्तुत अध्ययन में समकालीन समाज में बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं की बहुआयामी प्रकृति का विश्लेषण संरचित प्रश्नावली के माध्यम से एकत्रित प्राथमिक तथ्यों के आधार पर समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में बाल श्रम की समस्याओं, इसके मूल कारणों, प्रभावों तथा इसे बनाये रखने में सहायता करने वाले कारकों का विश्लेषण किया गया है तथा नीति–निर्माताओं के लक्षित हस्तक्षेप और आवश्यक नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण और क्रियान्वयन पर जोर दिया गया है। उपरोक्त पृष्ठभूमि में यह शोध पत्र बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं को नये परिप्रेक्ष्य से समझने में सहायक होगा।

मुख्य शब्दः बाल श्रम, असंगठित क्षेत्र, सामाजिक–आर्थिक स्थिति, शिक्षा।

प्रस्तावना

प्रायः कहा जाता है कि बच्चे राष्ट्र का भविष्य होते है और समाज तथा राष्ट्र जिस प्रकार इन बच्चों का पालन–पोषण तथा देखभाल करेगा बच्चे उसी का प्रतिफल होंगे।[1] आज हमारा समाज 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है, तकनीक की इस दुनिया में जहाँ हर 'असंभव' को 'संभव' में तब्दील किया जा रहा है फिर भी हम मानवता के इस कलंक बाल श्रम को नही मिटा पा रहे है। गैर सरकारी आँकड़ों के अनुसार विश्व में लगभग 16.8 करोड़ बच्चे अभी भी बाल मजदूरी के लिए अभिषप्त है।[2] अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार विश्व में लगभग 160 मिलियन बच्चे आर्थिक गतिविधियों में व्यस्त है। बाल श्रम को विश्व के कई देशो में विशेषकर उप–सहारा अफ्रीका में भाहरी गरीबी का प्रतीक होता है। इन क्षेत्रों में बच्चे ज्यादातर घरेलू कार्यो या बिक्री के कार्यो में व्यस्त रहते है। इनके कार्य की स्थितियाँ बहुत ज्यादा अस्वास्थ्यकर होती है, ये बच्चे कई घंटे कार्य करते है जिसके लिए इन्हे बहुत कम या नही के बराबर वेतन मिलता है।[3]

बाल श्रमिक दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें स्वयं में विरोधाभास है। 'बाल' शब्द का अर्थ निष्कपट अथवा नाजुक है, जबकि 'श्रमिक' शब्द का अभिप्राय कठिन कार्य या परिश्रम से होता है।[4] बाल श्रम की परिभाषा को लेकर कोई सर्वमान्य उपागम नही है, विशेषकर बाल श्रम और बाल कार्य के बीच अंतर को लेकर। ILO और UNICEF ने मिलकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाल श्रम को परिभाषित करने का प्रयास किया है, यद्यपि यह अभी भी भारतीय संविधान में परिभाषित बाल श्रम की परिभाषा से कुछ मामलों में अलग है।[5] बाल कार्य वह सामान्य कार्य है जो बच्चा सामाजीकरण की प्रक्रिया के हिस्से के रूप में सीखता है। बाल कार्य बच्चों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक विकास में बाधा उत्पन्न नहीं करता है, वहीं बाल श्रम नकारात्मक प्रभाव डालकर उनकी विकास प्रक्रिया में बाधा डालता है।[6] बाल श्रम अधिनियम, 1986 के अनुसार वह व्यक्ति जिसने अभी 14 वर्ष की आयु पूरी न की हो और खतरनाक कार्यो में कार्यरत है तो वह बाल श्रमिक की श्रेणी में आता है।[7] भारत में (5–14 वर्ष) आयु वर्ग की कुल बाल जनसंख्या 259.6 मिलियन है, जिसमें से 10.1 मिलियन अर्थात् 3.9 प्रतिशत बच्चें मुख्य कामगार या सीमान्त कामगार के रूप में कार्यरत है। विश्व के संपूर्ण बाल श्रमिकों का 2 प्रतिशत भाग और भारत के 21 प्रतिशत बाल श्रमिक अकेले उत्तर प्रदेश में रहते है।[8]

बाल श्रम के कारण

बाल श्रम की समस्या को बाकि समस्याओं से अलग करके नही समझा जा सकता है क्योकि यह कई कारको से प्रभावित होती है।[9] यह सच है कि बाल श्रम और शोषण के अनेक कारण है जिसमें गरीबी, सामाजिक मापदंड, वयस्कों तथा किशोरों के लिए कार्य के अच्छे अवसरों की उपलब्धता की कमी शामिल है।[10] भारत में बाल श्रम के प्रमुख निर्धारकों की चर्चा निम्न घरेलू आय तथा गरीबी से ही भाुरू होती है। माता–पिता द्वारा बच्चों को कार्य पर भेजने का एकमात्र कारण उनकी निम्न आय का होना होता है। गरीब माता–पिता अपने बच्चों की शिक्षा का खर्च वहन नही कर पाते है, परिणामस्वरूप मजबूर होकर उन्हे अपने बच्चों को श्रम करने के लिए भेजना पड़ता है।[11]

हालांकि, कई विद्वानों का तर्क है कि केवल गरीबी ही एकमात्र बाल श्रम का कारक नही है बल्कि शिक्षा और बाल श्रम के बीच भी एक संबंध मौजूद है।[12] भारत में बाल श्रम की दर स्कूल ड्रॉपआउट की दर से संबंधित है। शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण इलाकों में, लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में विशेषकर निचली जातियों में स्थिति ज्यादा गंभीर है।[13] इन सबके अतिरिक्त माता–पिता के शिक्षा का स्तर भी बच्चों का श्रम बाजार में जाने के निर्णय को प्रभावित करता है। शहरी प्रवास भी बाल श्रम के प्रमुख कारको में से एक है। भोजन, आश्रय जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण इन परिवारों को को सड़कों तथा गलियों में रहना पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप, इनके बच्चे सड़क पर कार्य करने वाले बाल श्रमिक बन जाते है।[14] धार्मिक विश्वास, जाति प्रथा तथा सदियों पुरानी परंपराएँ भी बाल श्रम के लिए जिम्मेदार है। भारत में जाति प्रथा तथा व्यवसाय वर्षों से एक दूसरे से संबंधित रहे है और इसका प्रमाण हमें बाल श्रमिकों में भी मिलता है।[15]

उपरोक्त चर्चा के आधार पर हम कह सकते है कि किसी भी देश में बाल श्रम की प्रकृति को गरीबी के अतिरिक्त कई कारक यथा– धार्मिक विचार, मूल्य प्रणाली, शिक्षा प्रणाली, लैंगिक मानदंड इत्यादि प्रभावित करते है।

साहित्य समीक्षा

जुयाल (1987)[16] ने अपनी पुस्तक ''**चाइल्ड लेबर एक्सप्लॉयटेशन इन कॉरपेट इंडस्ट्री''** में वर्णित किया है कि बाल श्रमिकों पर शारीरिक हिंसा और अन्य दुर्व्यवहारों में शामिल होना एक सामान्य घटना बन जाती है जो किसी को भी परेशान नही करती है। 16 वर्ष से कम आयु के बाल श्रमिक बुनाई का 80 प्रतिशत कार्य को पूरा करते है। बाल श्रमिक बिना किसी विरोध के लंबे समय तक कार्य करते है, आसानी से विवश हो जाते है और कारखाना के मालिक उनसे बहुत सारे अवैतनिक कार्य भी करवाते है, जबकि बुनकर और अंतिम विक्रेता की आय में अंतर काफी ज्यादा होता है, जहाँ एक वर्ग गज कालीन के लिए विक्रेता को 100 से 400 रूपये प्राप्त होता है वहीं इसके लिए बुनकर (बाल श्रमिक) को मात्र 5 से 10 रूपये का भुगतान मिलता है। इसके अतिरिक्त इन पैसों में से करघा मालिक भोजन, कपड़ों तथा दवाईयों का भी खर्च काट लेता है।

जोधा और सिंह (1991)[17] ने अपने शोध पत्र ''**चाइल्ड लेबर इन ड्राई लैंड एग्रीकल्चर''** में भारत मे शुष्क कृषि भूमि मे बच्चों की भागीदारी और उत्पादकता की समय–सीमा का अध्ययन प्रस्तुत किया। इसमें लेखक ने बताया कि मानसून के 3–4 महीने के विस्तार के दौरान किसान अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए बच्चों को सक्रिय सदस्य के रूप में कृषि कार्य में लगा देते है जिसकी वजह से बच्चों की शिक्षा छूट जाती है। दूसरी तरफ सूखे के मौसम मे अन्य महत्वपूर्ण अनौपचारिक गतिविधियों (पशुओं को चराना, परिवार के लिए छोटी फसलें काटना इत्यादि) मे शामिल होते है, जिससे प्राथमिक शिक्षा बुरी तरह प्रभावित होती है और अन्त मे ड्रॉप आउट के रूप में समाप्त होती है।

सेकर (2004)[18] ने अपनी पुस्तक **"चाइल्ड लेबर इन अर्बन इनफॉर्मल सेक्टर : अ स्टडी ऑफ रेगपिकर्स इन नोएडा''** में उत्तर प्रदेश राज्य के नोएडा भाहर में कचरा बीनने वाले

बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखिका ने अपने अध्ययन में प्राप्त किया कि ज्यादातर निचली जाति के गरीब बच्चें अपने जीवन निर्वाह के लिए कूड़ा बीनते है। शिक्षा को कम प्राथमिकता, अपशिष्ट प्रबंधन की कमियाँ इत्यादि की वजह से कचरा बीनने की घटनाएँ बढ़ती है। कबाड़ी वाले अक्सर उनकी अज्ञानता और अशिक्षा का फायदा उठाते है और बच्चें ठग लिए जाते है। कूड़ा बीनने की इन घटनाओं ने बच्चों के जीवन पर कई नकारात्मक प्रभाव डाले है जिनमें शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के साथ ही साथ उनके शैक्षणिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

नेंगरू और भट (2017)[19] ने प्रकाशित अपने शोध पत्र **''व्हाई चाइल्ड लेबर? एविडेन्सेज फ्रॉम होम बेस्ड कारपेट वेविंग इंडस्ट्री ऑफ कश्मीर''** में बाल श्रम के निर्धारकों को जानने या सामने लाने के लिए कश्मीर के कालीन उद्योग के 960 परिवारों का का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है। शोध में उन्होने पाया कि माता–पिता की निरक्षरता, परिवार का आकार बड़ा होना, अल्प आय ऐसे सभी कारक थे जो बच्चों को कम उम्र में बाल श्रम में शामिल होने के लिए मजबूर करते है। इसमे उन्होने सुझाव दिया कि सरकार को बच्चों को मुफ्त शिक्षा देनी चाहिए, वयस्क शिक्षा पर भी ध्यान देना चाहिए तथा ऐसी नीतियों को बढ़ावा देना चाहिए जो कि रोजगार पैदा कर सके। सामाजिक जागरूकता पर विशेष जोर होना चाहिए और मनरेगा जैसी योजनाओं को और प्रभावी ढंग से लागू करना चाहिए।

नंदा (2019)[20] ने अपने लेख ''**अ क्रिटिकल एनालिसिस ऑन दि स्टैटस ऑफ चाइल्ड लेबर इन वेस्टर्न ओड़िसा इन इंडिया''** में पश्चिमी ओड़िसा में बाल श्रम की वर्तमान स्थितियों का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत इन्होने अध्ययन क्षेत्र में बालकों के शोषण के बुनियादी कारणों का तथा उनके प्राथमिक शिक्षा में न जाने के कारणों का और साथ ही साथ इसे दूर करने के तरीको का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अपने अध्ययन में उन्होने पाया कि जिस जिले में सबसे कम सिंचित भूमि तथा विद्युतीकरण हुआ था वहाँ पर सबसे ज्यादा बाल श्रम था। आगे बताते है कि मुक्त कराए गए बाल श्रमिकों को जब माता–पिता के पास सौप दिया जाता है तो गरीबी की वजह से कुछ दिनों के बाद वह फिर से अपने बच्चों को कार्य पर लगा देते है।

उपर्युक्त अध्ययनों के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बाल श्रम के लिए केवल गरीबी ही नही बल्कि अन्य सामाजिक–आर्थिक कारक (अल्प आय, बेरोजगारी, निरक्षरता, परिवार का बड़ा आकार आदि) भी उत्तरदायी है। जिसकी वजह से बाल श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक तथा शैक्षणिक शोषण का सामना करना पड़ता है।

भारत में बाल श्रम और असंगठित क्षेत्र

असंगठित क्षेत्र में छोटे पैमाने की वे उद्योग इकाईयाँ शामिल है जो आमतौर पर व्यक्तिगत रूप से संचालित की जाती है। इसमें पारंपरिक कारीगर तथा उनकी सेवाएँ, छोटे व्यापारी, ठेके पर आधारित निर्माण कार्य तथा वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की इकाईयाँ शामिल है जो छोटे पैमाने पर बिना किसी औपचारिक संगठन के कार्य करती है।[21]

भारत में बाल श्रमिकों की अधिकांश आबादी असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत है, असंगठित क्षेत्र के कुल श्रम शक्ति का 11.88 प्रतिशत 5 से 17 वर्ष के बाल श्रमिकों द्वारा पूरा किया जाता है। इसमें पुरूष श्रम शक्ति का 10.08 प्रतिशत बालक श्रमिक है, जबकि महिला श्रम शक्ति का 13.8 प्रतिशत बालिका श्रमिक है जो कि लड़कों की अपेक्षा थोड़ा अधिक है।[22] सेव दि चिल्ड्रेन की रिपोर्ट (2016)[23] के अनुसार बाल श्रमिक मुख्य रूप से कृषि, कपड़ा उद्योग, ईंट उद्योग, पटाखा उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में कार्यरत है, जो कि मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्रों पर निर्भर रहते है। इन क्षेत्रों में बच्चों को कार्य पर लेने का मुख्य कारण सस्ता श्रम तथा बिना किसी सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा के कई घंटों तक कार्य करते रहना है।

शोध का उद्देश्य – असंगठित क्षेत्र में कार्यरत बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं के लिए उत्तरदायी कारणों का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र हेतु उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के आधार पर भदोही जनपद का चयन किया गया है। भदोही जनपद में स्थित विभिन्न प्रकार के असंगठित क्षेत्रों यथा– ढाबों, प्रतिष्ठानों, कूड़ा कचरा बीनना, ईट–भट्ठों, लघु उद्योगों में कार्यरत ऐसे बालक तथा बालिका जिन्होने अभी तक 14 वर्ष की आयु पूर्ण नही की है और औपचारिक शिक्षा से दूर रहते हुए श्रम करने को मजबूर है, प्रस्तुत शोध के समग्र के रूप में शामिल है। उत्तरदाता के रूप में असंभावनामूलक प्रतिचयन (Non-Probability Sampling) के अन्तर्गत सुविधाजनक प्रतिचयन (Convenient Sampling) के माध्यम से भदोही जनपद के ज्ञानपुर ब्लाक से 123, भदोही ब्लाक से 92 तथा औराई ब्लाक से 85 बाल श्रमिकों का चयन किया गया है, जिनकी कुल संख्या 300 है। अध्ययन की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक सह व्याख्यात्मक शोध अभिकल्प का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में मात्रात्मक और गुणात्मक दोनो पद्धतियों का उपयोग कर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। चयनित उत्तरदाताओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

उत्तरदाताओं की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि : अध्ययन क्षेत्र के विशेष संदर्भ में

बाल श्रम से संबंधित कारणों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि बाल श्रम की उत्पत्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक उनकी सामाजिक–आर्थिक तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि है। समाजशास्त्र के अनेक विद्वानों द्वारा यह बताया गया है कि सामाजिक पृष्ठभूमि, सामाजिक व्यवस्था, पारिवारिक वातावरण तथा सामाजीकरण और व्यक्तित्व निर्माण में अत्यंत घनिष्ठ संबंध होता है। ऐसे अध्ययनों में (मार्क्स, 1904)[24] तथा (पारसंस, 1951)[25] का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रस्तुत शोध पत्र के अर्न्तगत भदोही जनपद के असंगठित क्षेत्र में विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिससे समकालीन समाज में बाल श्रमिकों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

तालिका क्रमांक : 1

परिवार में सदस्यों की औसत संख्या

क्र.	सदस्य संख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
1	चार सदस्य	28	9.3
2	पांच सदस्य	45	15.0
3	छः सदस्य	61	20.3
4	सात या सात सदस्य से अधिक	166	55.3
	योग	**300**	**100**

स्रोत–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 1 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 21.3 प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार में 4 सदस्य, 41.0 प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार में 5 सदस्य, 17. 3 प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार में 6 सदस्य तथा 20.3 प्रतिशत बाल श्रमिकों के परिवार में 7 या 7 से अधिक सदस्य है।

अतः प्रस्तुत तालिका के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सर्वाधिक बाल श्रमिकों के परिवार में सदस्यों की संख्या 7 या उससे अधिक है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि जनसंख्या का अधिक होना बाल श्रमिकों के परिवार की समस्या है। **नंदा (2019)**[26] ने भी पश्चिमी उड़ीसा के 10 जिलों पर एक अध्ययन के दौरान अवलोकित किया कि 88 प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनके बच्चों की संख्या 5 या 5 से ऊपर थी इसलिए अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बच्चों को भी कार्य पर जाना पड़ता है। तुलनात्मक रूप से निम्न आय अर्जित करने वाले परिवारों का बड़ा आकार घर के बच्चों को श्रम की तरफ धकेल देता है क्योंकि वे अपने परिवार की बुनियादी जरूरते भी पूरी नही कर पाते है।

तालिका क्रमांक : 2

बाल श्रमिक बनने का कारण

क्र.	बाल श्रमिक बनने का कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	परिवार की आर्थिक सहायता हेतु	239	79.7
2	पढाई में रूचि न होने की वजह से	28	9.3
3	स्वयं के खर्च वहन करने के लिए	17	5.7
4	अन्य	16	5.3
	योग	**300**	**100**

स्रोत–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 2 के अन्तर्गत चयनित न्यादर्शो से बाल श्रमिक बनने के कारण जानने का प्रयत्न किया गया 79.7 उत्तरदाताओं ने परिवार को आर्थिक रूप से मदद करने के लिए श्रमिक बनने का कारण बताया, 9.3 प्रतिशत बाल श्रमिक ऐसे है जो पढ़ाई में रूचि न होने की वजह से बाल श्रमिक बने, 5.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वयं का खर्च उठाने के लिए श्रम

करने का फैसला लिया जबकि 5.3 बाल श्रमिक ऐसे है जो अन्य कारणों (अन्य बच्चों को देखकर, पारिवारिक दबाव में इत्यादि) से बाल श्रमिक बने है।

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता पारिवारिक मजबूरियों की वजह से बाल श्रमिक बन है, जिसमें से आर्थिक कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। **अली, (2012)**[27] ने अपने अध्ययन में गरीबी और बाल श्रम के बीच के गहरे संबंध पर प्रकाश डालते हुए बताया कि अशिक्षा, जागरूकता की कमी, कर्ज, व्यवसाय, परिवार इत्यादि कारक बाल श्रम के लिए उत्तरदायी है परन्तु सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कारक गरीबी है। ज्यादातर बाल श्रमिक गरीब परिवार से आते है। गरीब परिवारों के लिए बाल श्रम उनके जीवन निर्वाह का दूसरा नाम है, स्पष्ट है कि अगर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर दिया जाए तो बच्चों के बाल श्रमिक बनने की संभावना काफी कम हो जाएगी।

तालिका क्रमांक : 3

शैक्षिक स्तर के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र.	शैक्षिक स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	अशिक्षित	211	70.3
2	प्राथमिक	47	15.7
3	माध्यमिक	42	14.0
4	हाईस्कूल	—	—
	योग	**300**	**100.0**

स्रोत–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 3 से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 70.3 प्रतिशत बाल श्रमिक अशिक्षित है, 15.7 प्रतिशत बाल श्रमिक प्राथमिक तक पढाई किए है, 14.0 प्रतिशत बाल श्रमिकों ने माध्यमिक तक पढाई किया है तथा हाईस्कूल तक पढाई करने वाले बाल श्रमिकों की संख्या नगण्य है।

प्रस्तुत तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में सर्वाधिक बाल श्रमिक अशिक्षित है। **कुरोसाकी तथा अन्य (2006)**[28] ने अपने शोध पत्र में बताया कि जैसे–जैसे शिक्षा का अनुपात बढ़ता है, वैसे–वैसे बाल श्रम घटता है। साथ ही उन्होने अपने अध्ययन में निष्कर्ष प्राप्त किया कि बाल श्रम को घटाने के लिए माता का शिक्षित होना आवश्यक है जबकि विद्यालयों में नामांकन में वृद्धि के लिए पिता का शिक्षित होना ज्यादा महत्वपूर्ण है। उत्तरदाताओं ने क्षेत्र अध्ययन के दौरान बताया कि गरीबी, पारंपरिक व्यवसाय सीखने का दबाव और पारिवारिक मजबूरियों की वजह से उन्हे पढ़ाई की जगह श्रम बाजार में प्रवेश करना पड़ा।

तालिका क्रमांक : 4

कार्यस्थल पर उपलब्ध अन्य सुविधाओं की स्थिति

क्र.	कार्यस्थल पर उपलब्ध अन्य सुविधाएँ	हाँ	नही	कभी–कभी	योग
1	मनोरंजन के लिए समय	31 (10.3)	143 (47.6)	126 (42.0)	**300** (100.0)
2	मध्यान्तर	53 (17.6)	107 (35.7)	140 (46.7)	**300** (100.0)
3	साप्ताहिक अवकाश	19 (6.3)	240 (80.0)	41 (13.6)	**300** (100.0)

स्रोत–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

उपर्युक्त तालिका बाल श्रमिकों के लिए कार्यस्थल पर उपलब्ध अन्य सुविधाओं का विश्लेषण करता है, तालिका क्रमांक : 3 में अन्तर्विष्ट दत्त सामाग्री के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि संपूर्ण न्यादर्श में से 10.3 प्रतिशत बाल श्रमिकों को कार्य के दौरान मनोरंजन के लिए समय मिलता है, 47.6 प्रतिशत बाल श्रमिकों को नही मिलता है जबकि 42 प्रतिशत बाल श्रमिकों को कभी–कभी मनोरंजन के लिए समय मिलता है। कार्य के दौरान मध्यांतर का विश्लेषण किया जाए तो केवल 17.6 प्रतिशत बाल श्रमिकों को कार्य के दौरान आराम करने का मौका मिलता है, 35.7 प्रतिशत को नही मिलता है जबकि सर्वाधिक 46.7 प्रतिशत बाल श्रमिकों को कभी–कभी कार्य के दौरान मध्यांतर मिल जाता है। साप्ताहिक अवकाश के आंकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि केवल 6.3 प्रतिशत बाल श्रमिकों को हमेशा साप्ताहिक अवकाश मिलता है, सर्वाधिक 80.0 प्रतिशत बाल श्रमिकों को साप्ताहिक अवकाश नही मिलता है जबकि 13.6 प्रतिशत बाल श्रमिक ऐसे है जिन्हे कभी–कभी साप्ताहिक अवकाश मिल जाता है।

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न क्षेत्रो में कार्यरत बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर अन्य सुविधाओं का अभाव ही रहता है। **विवेक (2012)**[29] बताते है कि भारत के माचिस उद्योग में कार्य करने वाले लगभग 2 लाख बच्चे कार्य करते है, अधिकांश मौकों पर ये बच्चे एक बार में 14 घंटे तक कार्य करते है। इनको किसी भी प्रकार के अवकाश की अनुमति नही होती है, यहाँ तक कि राष्ट्रीय अवकाश के मौकों पर भी। शहरों में असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाले बाल श्रमिक अमानवीय परिस्थितियों में रहते है, जहाँ इन्हे कम भुगतान दिया जाता है। इन्हे बचा हुआ भोजन दिया जाता है या सड़क के किनारे जो मिलता है उसे खा लेते है, जिसकी वजह से इन्हे विभिन्न प्रकार की बीमारियों का सामना करना पड़ता है।

तालिका क्रमांक : 5

कार्य स्थल पर किसी प्रकार के दुर्व्यवहार की स्थिति

क्र.	दुर्व्यवहार का प्रकार	आवृत्ति	प्रतिशत
1	डाँटना	48	16.0
2	गाली–गलौज करना	71	23.7
3	जाति सूचक शब्दों का प्रयोग करना	83	27.7
4	मारना–पीटना	13	4.3
5	पारिश्रमिक में कटौती या देर करना	25	8.3
6	अन्य स्पष्ट करे	20	6.7
7	कोई दुर्व्यवहार नही	40	13.3
	योग	**300**	**100.0**

स्रोत–क्षेत्र कार्य से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर आधारित

प्रस्तुत तालिका क्रमांक : 2 के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कुल बाल श्रमिकों में से 260 बाल श्रमिकों के साथ कार्यस्थल पर किसी न किसी प्रकार का दुर्व्यवहार हुआ है या होता रहा है। उपर्युक्त सारणी और रेखाचित्र यह बताती है कि 16.0 प्रतिशत बाल श्रमिकों को डांटना, 23.7 प्रतिशत बाल श्रमिकों के साथ गाली–गालौच, 27.7 प्रतिशत बाल श्रमिकों के लिए जाति सूचक शब्दों का प्रयोग करके अपमानित करना, 4.3 प्रतिशत बाल श्रमिकों के साथ मारने पीटने की घटना, 8.3 प्रतिशत बाल श्रमिकों के पारिश्रमिक में देरी या कटौती तथा 6.7 बाल श्रमिकों के साथ अन्य प्रकार का दुर्व्यवहार हुआ है।

प्रस्तुत तालिका के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि ज्यादातर बाल श्रमिकों के साथ कार्यस्थल पर दुर्व्यवहार होता है और इन्हे कई प्रकार से प्रताड़ित किया जाता है। उपर्युक्त सारणी में बाल श्रमिकों को सर्वाधिक बार जाति सूचक शब्दों का प्रयोग करके उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। **एम. इकबाल तथा अन्य (2021)**[30] बताते है कि बाल श्रमिकों को कार्यस्थल पर भावनात्मक, शारीरिक एवं यौन दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है। बाल श्रमिकों के साक्षात्कार से ज्ञात होता है कि घर और कार्यस्थल दोनों जगहों पर सभी प्रकार के दुर्व्यवहार मौजूद है। बच्चों ने कार्यस्थल पर बार–बार डाँट–फटकार और अपमान की शिकायत की, साथ ही ऐसी शारीरिक हिंसा की जो घातक हो सकती है। यह विभिन्न प्रकार का हो सकता है जिसका एकमात्र उद्देश्य इन नन्हे श्रमिकों पर दबाव बनाकर अधिक से अधिक कार्य करवाना होता है।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत चयनित बाल श्रमिकों से संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित किया गया है। जिससे वर्तमान में असंगठित क्षेत्र के बाल श्रमिकों के सामाजिक–आर्थिक समस्याओं की जानकारी प्राप्त हो सके। उत्तरदाताओं ने बाल श्रम में आने का सबसे बड़ा कारण परिवार की खराब आर्थिक स्थिति को बताया है। विभिन्न प्रकार के अध्ययनों से भी यह ज्ञात हुआ है कि जब परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति

नही हो पाती है तो माँ–बाप को बच्चों को कार्य पर लगाने के अलावा और कोई रास्ता नही होता है। उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी से स्पष्ट है कि परिवार का आकार बड़ा होना बाल श्रम को बढ़ावा देता है क्योंकि अक्सर परिवार की खराब आर्थिक स्थिति का बोझ बच्चों को भी ढोना पड़ता है। बाल श्रम के लिए गरीबी, बेरोजगारी के अलावा शिक्षा भी एक महत्वपूर्ण कारक है। बाल श्रम एवं शिक्षा के बीच नकारात्मक संबंध है। अगर बच्चों को शिक्षित करने के साथ–साथ उनके माता–पिता को भी शिक्षित किया जाए तो शायद हमें बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकते है। बाल श्रमिकों को कार्यस्थल पर अनेक प्रकार के दुर्व्यवहारों का सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से जाति सूचक प्रताड़ना। बाल श्रमिक बेहद ही कठिन परिस्थितियों में कार्य करते है, जहाँ पर उन्हे मूलभूत मानवीय सुविधाएँ भी उपलब्ध नही रहती है। इन्हे कार्य के बीच अंतराल, साप्ताहिक अवकाश तथा मनोरंजन के लिए भी समय नही दिया जाता है। जिसकी वजह से बाल श्रमिकों की उत्पादक क्षमता घटने के साथ–साथ उनका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य भी बुरी तरह से प्रभावित होता है।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समकालीन समाज में बाल श्रम विभिन्न प्रकार की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारकों के संचयी परिणामों से उत्पन्न होता है जिसकी वजह से बाल श्रमिकों को अनेक प्रकार की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिसमें गरीबी के अलावा अशिक्षा, परिवार का बड़ा आकार तथा कार्यस्थल पर दुर्व्यवहार तथा मूलभूत मानवीय सुविधाओं का अभाव शामिल है। वर्तमान समय में आवश्यकता है कि सरकार तथा नीति–निर्माताओं द्वारा बाल श्रमिकों को राष्ट्रीय स्तर पर लक्षित कर उनके सर्वांगीण विकास के लिए सुचारू रूप से कार्य नियम, कानून तथा योजनाओं के क्रियान्वयन की है, जिससे इनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार कर इन्हे समाज की मुख्यधारा में शामिल किया जा सके।

❐

सन्दर्भ –

1. *डॉ. मुकेश कुमार शर्मा, बाल मजदूरों का बदहाल बचपन, कुरूक्षेत्र, मई 2005, पृ.4–5*
2. *सत्यार्थी कैलाश ''सुरक्षित बचपन से ही होगा सशक्त भारत का निर्माण'' योजना भवन, संसद मार्ग, नईदिल्ली, अप्रैल 2017, पृ. 25–28*
3. *वर्ल्ड बैंक, दि वर्ल्ड बैंक एनुअल रिपोर्ट, यीअर इन रिव्यू, वर्ष 2005, www. Worldbank.org*
4. *सेकर, हेलेन आर., ''बाल श्रम कानून में सुधार'', योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली, अप्रैल, 2017, पृ.29–31*
5. *Kim j., Olsen, & Wisnoiwski, A, Predicting child-labour risks by norms in India. Work, employ ment and Society, 37(6),2023, 1605-1625*
6. *अण्डरस्टैडिंग दि कांस्पेट ऑफ चाइल्ड लेबर, इंटरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन, 2005 पृ. 5*
7. *श्रीवास्तव, एस.सी., चाईल्ड लेबर लॉ एण्ड इट्स इम्प्लीमेंशन, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, 2017, गुडगाँव, पृ.4*
8. *भारतीय जनगणना, 2011*
9. *साहू, बी.पी. ऐ साशियोलाजिकल स्टडी ऑफ पैटर्न्स एण्ड डिटरमिनेन्ट्स ऑफ चाइल्ड लेबर इन इण्डिया, जर्नलस ऑफ चिल्ड्रेन्स सर्विसेज, 2021, 16 (2), 132–144 https://doi.org10.1108JCS-10-2020-0067A*
10. *चोपड़ा, डॉ.धनंजय, ग्रामीण बाल मजदूर और मानव अधिकार, मानव अधिकार : नई दिशाएँ, आई.एस.एस.एन. 0973, वर्ष 2022, अंक19, पृ. 82–85*
11. *बसु, के. ''चाइल्ड लेबर : कॉज एण्ड कांसक्वींसेज एण्ड क्योर विद रिमार्क्स ऑन इण्टरनेशनल लेबर स्टैण्डडर्स, जर्नल्स ऑफ इकोनामिक लिटरेचर, 37(3), वर्ष 2019, पृ. 1083–1119*

12. सत्यार्थी के. डेवलपमेंट, डेस्टीट्यूशन एण्ड चाईल्ड लेबर वल्नेरेबिलिटी इन इंडिया, सत्यार्थी, के. एण्ड जुत्शी बी. (एडी.) ग्लोबलाइजेशन, डेवलपमेंट एण्ड चाईल्ड राइट्स, शिप्रा पब्लिकेशंस, नईदिल्ली, वर्ष 2017, पृ. 37–42
13. वीनर, एम. कैन इंडिया एंड चाइल्ड लेबर, इंडिया इंटरनेशलन सेंटर क्वॉटरली, वाल्यूम 16, नं.4 1989, पृ. 43–50
14. यादव एस. एवं सेनगुप्ता जी., एनवायरमेंटल एंड आक्युपेशनल हेल्थ प्राब्लम्स ऑफ चाइल्ड लेकबरः सम इश्यूज एंड फॉर फ्यूचर, जे. हयूम इकोल., 282, वर्ष 2009, पृ. 143–148
15. चौधरी, के. दि इंटरसेक्शन ऑफ कास्ट इन बिहार, इकोनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, वाल्यूम 55, नं. 4, वर्ष 2020, पृ. 1–9
16. जुयाल, बीन.एन., चाइल्ड लेबर एक्सप्लॉयटेशन इन कॉरपेट इंडस्ट्री, वॉल्टर फर्नान्डिज (एड.) इंडियन सोश्यल इंस्टीट्यूट, नईदिल्ली, नं.29, वर्ष 1987, पृ. 13–45
17. जोधा, एन.एस., एंड सिंह, आर.पी., (1991) पृ.4, चाइल्ड लेबर इन ड्राई लैंड एग्रीकल्चर इन, के. रमेश (एडी.), चाइल्ड लेबर इन दि इण्डियन सब–कान्टीनेंट : डायमेन्संस एण्ड इम्पलीकेशंस, नई दिल्ली : सेज, वर्ष 1991, पृ. 63–77
18. सेकर, हेलेन आर., ''चाइल्ड लेबर इन अर्बन इनफॉर्मल सेक्टरः अ स्टडी ऑफ रेपिकर्स इन नोएडा'', वी.वी. गिरी नेशनल लेबर इंस्टीट्यूट, नोएडा–201301 (यू.पी.) 2004, पृ. 1–7
19. नेंगरू, ए.एच. एण्ड भट्ट जी.एम., व्हाई चाइल्ड लेबर ? ऐविडेन्सेज फ्रॉम होम बेस्ट कारपेट वेविंग इंडस्ट्री ऑफ कश्मीर, चिल्ड्रेन एण्ड यूथ सर्विसेज रिव्यू, 2017, पृ. 50–56
20. नंदा, समीर कुमार, ''अ क्रिटिकल एनालिसिस ऑन दि स्टैटस ऑफ चाइल्ड लेबर इन वेस्टर्न ओड़िसा इन इंडिया'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल सांइसेज, नई दिल्ली, वाल्यूम 8, 2019 पृ. 79–86
21. मिश्रा, एस.एन. एवं मिश्रा एस., टाइनी हैण्ड्स इन अनऑर्गनाइज्ड सेक्टर, नई दिल्ली, इंडियाः शिप्रा पब्लिकेशन्स, वर्ष 2004, पृ. 13–40
22. Bhat, Jahangir & Yadav, paritosh, Economic Informal Sector and Perspective of Informal Work ers in India. Arts and Social Sciences Journal 2017, P. 1-9, 08. 10.4172/2151-6200.1000241
23. Save the Children, 5 sectors where child labour can be found majorly in India. Retrieved August 30, 2017, from https://www.savethechildren.in/resource-centre/articles/5-sectors-where-childlabour-can-be-found-majorly.
24. मार्क्स, कार्ल, अ कॉन्ट्रिब्यूशन टू दि पॉलिटिकल इकोनामी, इंटरनेशनल पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1904, पृ. 3
25. पासंस, टॉलकाट, दि सोशल सिस्टम, दि फ्री प्रेस, ग्लेनकों, इलिनियास, 1952, पृ. 34
26. नंदा, डॉ. समीर कुमार, ''लेट्स स्टॉप चाइल्ड लेकर–नेशनल चाईड लेबर प्रोजेक्ट स्कीम इन इंडिया एण इट्स इम्पैक्ट'', आई. आर.ई. जर्नल्स, वाल्यूम 3 (4), 2019, पृ. 140–149
27. अकील, जाहिद, ''नेक्सन बिटविन पावर्टी एण्ड चाइल्ड लेबर : मिजरिंग दि इम्पैक्ट ऑफ पावर्टी अलिविएशन ऑन चाइल्ड लेबर'' गुड थिंकर्स ऑर्गनाइजेशन फॉर ह्यूमन डेवलपमेंट, कसूर, 2012, पृ. 1–27
28. कुरोसाकी, ताकाशी एवं अन्य, चाइल्ड लेबर एण्ड स्कूल इनरालमेंट इन रूरल इंडिया : हूज एजुकेशन मैटर्स ? दि डेवलपिंग इकोनॉमिज, वाल्यूम 44, नं. 4, सितम्बर 2006, पृ. 1–19
29. विवेक, पी.एस., सोशल एण्ड इकॉनामिक डाइमेंशन्स ऑफ चाइल्ड लेबर इन साउथ एशिया : विद स्पेशल रिफ्रेन्स टू इंडिया, (एनस्लेब्ड इनोसेंस चाइल्ड लेबर इन साउथ एशिया, इटीडीए भक्ति काक एण्ड बिस्वमाय रॉय), प्राइमस बुक्स, नई दिल्ली 110009, 2012, पृ. 213–214
30. Iqbal, M., Fatmi, Z., Khan, K. & Nafees, A., Violence and abuse among working children in urban and suburban areas of lower Sindh, Pakistan, Eastern Mediterranean Health Journal 27 (5); 2021, 501-508. https://doi.org/10.26719/2021/27.5.501

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 23–32

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

राजस्थान में लैंगिक असमानता के आयाम एवं प्रवृत्तियाँ

श्रीमती शुभलता यादव
सहायक आचार्य–.भूगोल, ला.ब.शा. राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली
E-mail- sh.latayadav@gmail.com Mb. 8619025649

डॉ. संजीव कुमार
सहायक आचार्य–भूगोल, श्री राधेश्याम आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनूं
E-mail- sanjeevdudi82@gmail.com Mb. 9461327770

सारांश

राजस्थान भारत का प्रमुख सशक्त कार्यवाही ग्रुप (ईएजी) राज्य है। लैंगिक असमानता के मामले में राजस्थान ईएजी राज्यों में मात्र झारखंड और बिहार से थोड़ा ही ठीक स्थिति में है। राज्य में लैंगिक असमानता व्यापक रूप से विद्यमान है। स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनीतिक सहभागिता, श्रम भागीदारी, निर्णयन, स्वामित्व इत्यादि सभी क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों की तुलना में काफी पिछड़ी और पीड़ित हैं। महिलाएँ राज्य की लगभग आधी आबादी है जो हाशिए पर हैं। लैंगिक असमानता का मूल कारण समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक सोच है। इसी सोच के कारण किनारे पर कर दी गई महिलाओं के मानवाधिकारों को संरक्षित करके एवं प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भूमिका को रेखांकित करके ही राज्य में लैंगिक समानता स्थापित की जा सकती है। लैंगिक समानता राज्य के समावेशी एवं सतत विकास के लिए नितांत आवश्यक है। इस शोध पत्र में लैंगिक असमानता सूचकांक के माध्यम से राज्य में व्याप्त लैंगिक विषमता और लैंगिक असमानता के विभिन्न आयामों की प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है।

मूल शब्द– लैंगिक अवधारणा, लैंगिक असमानता, पितृसत्तात्मक सोच, ईएजी राज्य, प्रजनन स्वास्थ्य, सशक्तीकरण, श्रम भागीदारी, सतत विकास लक्ष्य।

परिचय

प्रकृतिवश कहीं भी असमानता नहीं है अपितु विविधता है। इन विविधताओं की क्षमताओं का विवेकपूर्ण एवं न्यायोचित उपयोग करके समावेशित विकास की प्राप्ति की जा सकती है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को जैविक रूप से अलग–अलग बनाया है, किंतु लैंगिक अवधारणा सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और व्यवहारगत परिस्थितियों की देन है। यह समय और स्थान के हिसाब से हमेशा बदलती रही है। विकसित देश हों या अविकसित लगभग सभी देशों

में महिलाओं को न्यूनाधिक लैंगिक असमानता और पक्षपातपूर्ण माहौल का सामना करना पड़ा है और पड़ रहा है। सिमोन द बाउवर के अनुसार, "कोई महिला पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है।"[1] भारतीय संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की अवधारणा उल्लेखित की गई है। इसके अलावा मौलिक अधिकार, नीति–निर्देशक तत्त्व और कर्तव्य भी समानता की अवधारणा को पोषित करते हैं। इसके बावजूद भारत में महिलाओं के विकास के लिए अलग से विभाग बनाना और उनके नाम पर विशेष योजनाएँ संचालित करना इस बात का प्रतीक है कि समाज में महिलाओं की स्थिति हर क्षेत्र में दोयम दर्जे की है। इसका मूल कारण हमारे समाज में व्याप्त पुरुषों की पितृसत्तात्मक मानसिकता है और साथ ही इस मानसिकता की पोषक एवं संरक्षिका बनी वह महिलाएँ भी हैं जो स्वयं भी इस सोच की शिकार रही हैं। राजस्थान राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है और जनसंख्या की दृष्टि से आठवां बड़ा राज्य है। किंतु लैंगिक असमानता की दृष्टि से वर्ष 2017–18 में राजस्थान 36 राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों में से 22 वें स्थान पर है। हमारी स्थिति सशक्त कार्यवाही ग्रुप (ईएजी) के राज्यों में बदत्तर है। स्वास्थ्य, शिक्षा, राजनीति, आर्थिक सामर्थ्य, निर्णयन में भागीदारी, स्वामित्व आदि सभी क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों की तुलना में बहुत पीछे हैं। संयुक्त राष्ट्र का सतत विकास लक्ष्य–5 लैंगिक समानता पर बल देता है। किन्तु वर्ष 2030 तक इस लक्ष्य तक पहुँचना नामुमकिन है। भारत की जेंडरिक ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट (2017–18) के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लैंगिक असमानता सूचकांक के मामले में राजस्थान पिछड़ा राज्य है।

अध्ययन के उद्देश्य

(1) लैंगिक असमानता के आधार पर राजस्थान राज्य का ईएजी राज्यों से तुलनात्मक अध्ययन करना।

(2) राजस्थान में लैंगिक असमानता के विभिन्न आयामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

(3) लैंगिक असमानता के अवरोध को दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।

विधि तंत्र–

यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। यह आँकड़े एवं सूचनाएँ विभिन्न आधिकारिक वेबसाइट्स, सरकारी और गैर–सरकारी रिपोर्ट्स, विभिन्न शोध पत्रों एवं पत्र–पत्रिकाओं के अध्ययन पर आधारित हैं।

लैंगिक असमानता की अवधारणा

सामान्यतया सेक्स और जेंडर को समानार्थी रूप से प्रयुक्त किया जाता है किंतु दोनों भिन्नार्थी अवधारणाएँ हैं। सेक्स जैविक और प्राकृतिक अवधारणा है जिससे स्त्री एवं पुरुष जाति का बोध होता है। यह प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर समान रूप से लागू होती है। जेंडर

सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा है जो स्त्री और पुरुष की समाज में भूमिकाओं को संदर्भित करती है। समय और स्थान के हिसाब से लैंगिक अवधारणा में भिन्नता पाई जाती है क्योंकि लैंगिक अवधारणा सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यवहारगत और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से उपजती है। लैंगिक विषमता एवं लैंगिक असमानता में बारीक अंतर है। यूनिसेफ शब्दकोश के अनुसार, "लैंगिक विषमता महिलाओं एवं पुरुषों, बालकों एवं बालिकाओं के बीच सांख्यिकी अंतर है (अक्सर अंतराल के रूप में जाना जाता है), जो कुछ मात्रा में असमानता को दर्शाता है। लैंगिक समानता का मतलब है कि बालकों एवं बालिकाओं, स्त्रियों एवं पुरुषों को समान अधिकार, संसाधन, अवसर और सुरक्षा प्राप्त है।"[2] लैंगिक समानता मानवाधिकार है। लैंगिक समानता लैंगिक आधार पर समान अवसर, समान दशाओं और समान व्यवहार को पोषित करने वाली अवधारणा है। लैंगिक आधार पर किया जाने वाला पक्षपातपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार लैंगिक असमानता है। अर्थात लैंगिक आधार पर अवसरों, दशाओं, संसाधनों, अधिकारों की उपलब्धता को लेकर भेदभावपूर्ण रवैया ही लैंगिक असमानता है, फिर चाहे यह पुरुषों के साथ हो या स्त्रियों के साथ या फिर ट्रांसजेंडर के साथ। किंतु जब भी लैंगिक असमानता की बात की जाती है तो महिलाओं के साथ किए जाने वाले भेदभाव पर ही बात की जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि महिलाएँ सदियों से और बड़ी तादाद में लगभग सभी महिलाएँ विश्व के प्रत्येक हिस्से में भेदभाव एवं असम्मानजनक व्यवहार को झेलती आई हैं और झेल रही हैं। लैंगिक असमानता का महज आँकड़ों के आधार पर मापन करके इसे नहीं समझा जा सकता है अपितु इसकी गहराइयों में दबी जड़ों तक पहुँचना जरुरी है। लैंगिक असमानता लकवाग्रस्त समाज की पहचान है जो ग्लोबल समस्या है। यह घर, समाज और व्यवस्था में इस कदर जड़ जमाए हुए है कि इस समस्या को झेलने और इससे जूझने में जो मानव ऊर्जा बर्बाद हो रही है उससे न केवल स्त्री जाति का नुकसान हो रहा है अपितु पुरुष जाति भी कहीं ना कहीं उन नुकसानों को झेल रही है, साथ ही देश का विकास भी प्रभावित होता है।

राजस्थान में लैंगिक असमानता की स्थिति–

भारत के सशक्त कार्यवाही ग्रुप (ईएजी) राज्य देश की लगभग 46 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं।[3] ये राज्य जनसंख्या आकार, जनसंख्या वृद्धि एवं शिशु जनसंख्या की दृष्टि से देश के सामाजिक–आर्थिक विकास के निर्धारक हैं। ईएजी राज्यों में जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान क्रमशः उत्तरप्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश के बाद चौथे स्थान पर है। जनगणना–2011[4] में राजस्थान की कुल जनसंख्या 6.85 करोड़ है जिसमें से महिला आबादी 3.30 करोड़ है जो राज्य की कुल आबादी का 48.17 प्रतिशत है। अर्थात राज्य की लगभग आधी आबादी का प्रतिनिधित्व महिलाएँ करती हैं। राज्य में लिंगानुपात 928 है। लिंगानुपात की दृष्टि से ईएजी राज्यों में राजस्थान केवल बिहार और उत्तरप्रदेश से आगे है। 0–6 आयु वर्ग के मध्य राजस्थान का लिंगानुपात जनगणना–2001 में 909 था जो जनगणना–2011 में 21 अंक

गिरकर मात्र 888 रह गया है एवं यह 2017–19 में और अधिक गिरकर 879 ही रह गया है जो अतिचिंतनीय विषय है। शिशु लिंगानुपात की दृष्टि से राजस्थान ईएजी राज्यों की कतार में सबसे पीछे है। राज्य 21.44 प्रतिशत दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर के साथ क्रमशः बिहार, झारखंड एवं छत्तीसगढ़ के बाद चौथे स्थान पर है। राज्य में पुरुष साक्षरता दर 80.5 प्रतिशत जबकि महिला साक्षरता दर 52.7 प्रतिशत है। अतः जनांकिकी संरचना से स्पष्ट है कि आधी आबादी होने के बावजूद राजस्थान में महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में कहीं पीछे है।

तालिका–1 ईएजी राज्यों में लैंगिक असमानता सूचकांक

	उत्तराखंड	छत्तीसगढ	उड़ीसा	म.प्र.	उत्तरप्रदेश	राजस्थान	बिहार	झारखंड
2011–12	0.519	0.492	0.583	0.523	0.577	0.551	0.698	0.624
2017–18	0.434	0.440	0.483	0.488	0.520	0.589	0.682	0.741

स्रोत– जेंडरिक ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट (2017–18)[5]

लैंगिक असमानता सूचकांक प्रजनन स्वास्थ्य, सशक्तीकरणएवं श्रम भागीदारी के आधार पर मापा जाता है। लैंगिक असमानता सूचकांक का मूल्य 0–1 के मध्य होता है जिसमें 0 स्कोर स्त्री और पुरुष के निष्पक्ष रूप से समान होने तथा 1 स्कोर चरम लैंगिक असमानता को दर्शाता है। जेंडरिक ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट (2017–18) के अनुसार भारत के 36 राज्यों व केंद्र शासित प्रदेशों में 0.589 स्कोर के साथ राजस्थान 22वें स्थान पर रहा जबकि वर्ष 2011–12 में 0.551 स्कोर के साथ यह है 17वें स्थान पर था। इस प्रकार राजस्थान में लैंगिक असमानता बढ़ी है और अन्य राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की तुलना में यह पाँच पायदान नीचे आ गया है। लैंगिक असमानता सूचकांक की दृष्टि से राजस्थान भारत के तीसरी श्रेणी के राज्यों के ग्रुप में शामिल होता है। तालिका–1 के अनुसार वर्ष 2017–18 में ईएजी राज्यों में झारखंड और बिहार के बाद राजस्थान में लैंगिक असमानता सबसे अधिक है। यहाँ तक कि वर्ष 2011–12 से वर्ष 2017–18 में झारखंड के बाद केवल राजस्थान में लैंगिक असमानता बढ़ी है जबकि अन्य सभी ईएजी राज्यों में लैंगिक असमानता में कमी दर्ज की गई है। जाहिर है राजस्थान ईएजी राज्य है जो देश के विकास का मुख्य निर्धारक राज्य है, किंतु राज्य की आधी आबादी अभी भी पिछड़ी और अवसरों की मोहताज है। आजादी के बाद महिलाओं के विकास के नाम पर शिक्षा, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, राजनीति आदि क्षेत्रों में अनेक नीतिगत एवं संस्थागत सुधार हुए हैं, किन्तु स्त्री–पुरुष के मध्य विभेदन की खाई कम होने के बजाय बढ़ी है। लैंगिक असमानता न केवल मानव संसाधन की गुणवत्ता का ह्रास करती है, अपितु किसी भी प्रदेश के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश के सौंदर्यकरण को भी क्षति पहुँचाती है।

राज्य में लैंगिक असमानता के आयाम एवं प्रवृत्ति–

राजस्थान देश के विकास को निर्धारित करने वाले प्रमुख राज्यों में से एक है। सशक्त कार्यवाही ग्रुप (ईएजी) के अन्य राज्यों की तुलना में लैंगिक समानता की दृष्टि से राज्य की स्थिति दयनीय है। राज्य में लैंगिक असमानता के प्रमुख आयाम और उनकी प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है–

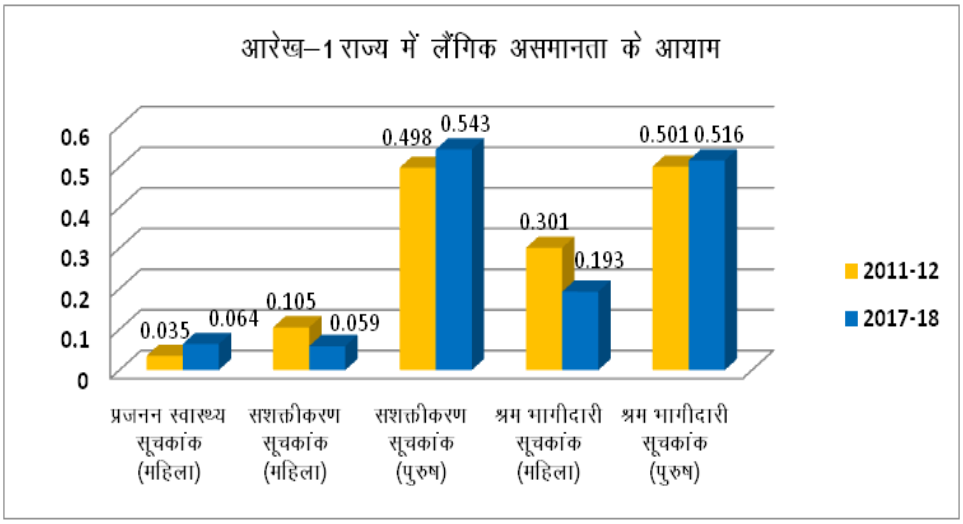

लैंगिक असमानता का पहला आयाम स्वास्थ्य है। मातृ–मृत्यु अनुपात और किशोर जन्म दर संकेतकों के आधार पर महिलाओं के प्रजनन स्वास्थ्य सूचकांक की गणना की जाती है। मातृ–मृत्यु अनुपात प्रति एक लाख जीवित जन्म पर मातृ मृत्यु संख्या तथा किशोर जन्म दर 15–19 आयु वर्ग की प्रति हजार महिलाओं पर जीवित जन्म लेने वाले बच्चों की वार्षिक संख्या है। राज्य में किशोर जन्मदर उच्च होने से न केवल महिला स्वास्थ्य में गिरावट देखने को मिलती है अपितु शिशु–मृत्यु दर और मातृ–मृत्यु अनुपात भी अधिक हैं। आरेख–1 के अनुसार राज्य में वर्ष 2011–12 में प्रजनन स्वास्थ्य सूचकांक 0.035 था जो वर्ष 2017–18 में मामूली–सा बढ़कर 0.064 हो गया। यह अच्छा संकेत है कि राज्य में प्रजनन स्वास्थ्य में सुधार हुआ है, किंतु यह सुधार राई भर है। आरेख–2 के अनुसार ईएजी राज्यों की तुलना में राजस्थान केवल मध्यप्रदेश (0.057) एवं छत्तीसगढ़ (0.063) राज्यों से ही आगे है जबकि बिहार (0.069), उत्तरप्रदेश (0.081), उड़ीसा (0.082), झारखंड (0.101) और उत्तराखंड (0.118) राज्य हमसे आगे हैं। एसआरएस बुलेटिन (2018–20) के अनुसार राज्य में मातृ–मृत्यु अनुपात 113 प्रति लाख जीवित जन्म रहा जो सतत विकास लक्ष्य 70 प्रति लाख जीवित जन्म से बहुत अधिक है।[7] एनएफएचएस–5 में राजस्थान की किशोर जन्म दर 31 जीवित जन्म प्रति हजार किशोर महिला रही। राज्य में मातृ–मृत्यु अनुपात एवं किशोर जन्म दर में निरंतर कमी दर्ज की गई है। अतः भविष्य में राज्य के प्रजनन स्वास्थ्य सूचकांक में और अधिक सुधार की संभावना है। किंतु महिलाओं के पोषण स्तर में कमी से यह सुधार नाममात्र का ही संभव है। एनएफएचएस–5 (2020–21)[8] के अनुसार राज्य में 15–19 आयु वर्ग में 59.4 प्रतिशत किशोर महिलाएँ और 15–49 आयु वर्ग में 54.4 प्रतिशत सभी महिलाएँ एनीमियाग्रस्त हैं। इसी प्रकार 15–49 आयु वर्ग में 19.6 प्रतिशत महिलाएँ

सामान्य से कम बीएमआई, 12.9 प्रतिशत महिलाएँ सामान्य से अधिक वजन एवं 59.0 प्रतिशत महिलाएँ उच्च वेस्ट–हिप अनुपात की समस्या से प्रभावित हैं। राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला स्वास्थ्य संबंधी मानक आज भी उपेक्षित हैं। साथ ही अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग की महिलाओं का स्वास्थ्य आज भी हाशिए पर है। राज्य में कम आयु में विवाह, बाल विवाह, कम उम्र में संतानोत्पत्ति, मातृ स्वास्थ्य की अनभिज्ञता, स्त्री उपेक्षा, पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता, आम आदमी तक सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं के लाभ की पहुँच में नाकामी आदि अनेक कारणों से महिला स्वास्थ्य में सुधारों की गति धीमी रही है। वर्ष 2030 तक संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य–3 'अच्छे स्वास्थ्य एवं कल्याण' तक पहुँचना तो दूर है ही, साथ में बुनयादी सुधारों के बजाय महज आँकड़ा प्रदर्शन से आज भी महिला स्वास्थ्य गुणवत्ता दोयम दर्जे की है।

लैंगिक असमानता का दूसरा आयाम सशक्तीकरण है। संसद में महिलाओं के भागीदारी प्रतिशत एवं 25 वर्ष व उससे ऊपर आयु के माध्यमिक शिक्षा प्राप्त जनसंख्या के प्रतिशत संकेतकों के आधार पर महिलाओं और पुरुषों के सशक्तीकरण सूचकांक की गणना की जाती है, जिसके आधार पर लैंगिक असमानता की पहचान की जा सकती है। आरेख–1 के अनुसार राज्य में वर्ष 2011–12 में महिला सशक्तीकरण सूचकांक 0.105 था जो वर्ष 2017–18 में घटकर 0.059 हो गया। इसी अवधि में पुरुष सशक्तीकरण सूचकांक क्रमशः 0.498 एवं 0.543 रहा। इस प्रकार राज्य में महिलाओं का सशक्तीकरण घटा है जबकि पुरुषों का सशक्तीकरण बढ़ा है, दूसरी तरफ उनके सशक्तीकरण सूचकांक में बहुत ज्यादा अंतर भी है। आरेख–2 के अनुसार ईएजी राज्यों में महिला सशक्तीकरण के मामले में राजस्थान केवल झारखंड (0.012) से आगे है जबकि बिहार (0.119), छत्तीसगढ (0.149), मध्यप्रदेश (0.151), उड़ीसा (0.154), उत्तरप्रदेश (0.173) एवं उत्तराखंड (0.215) राज्य राजस्थान से कहीं आगे हैं।

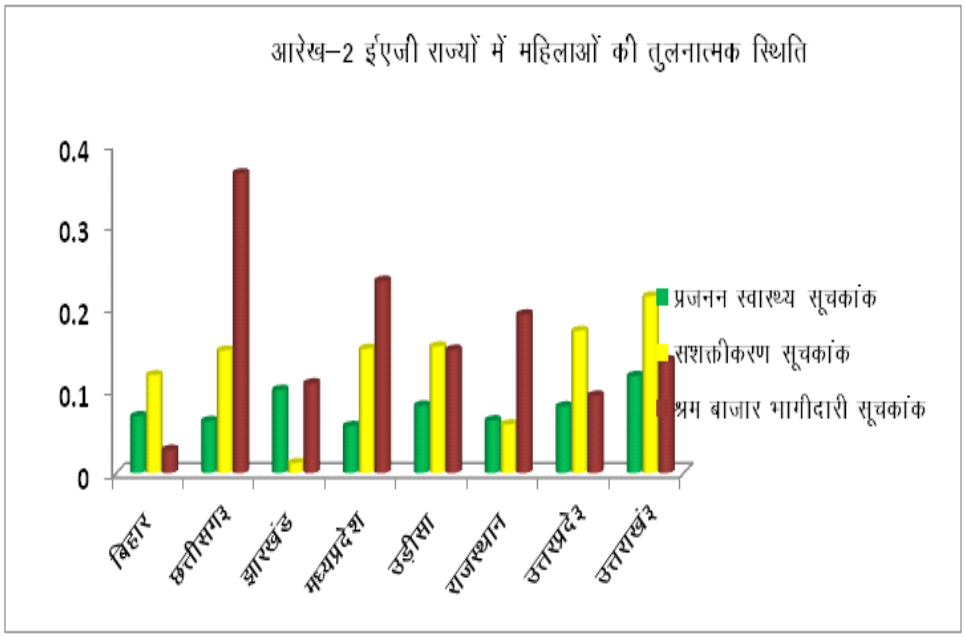

राजस्थान से अब तक कुल 437 सांसद लोकसभा में पहुँचे हैं, इनमें से 34 महिला सांसद है जो राजस्थान से संसद में महिलाओं की मात्र 7.79 प्रतिशत भागीदारी है। 18वीं लोकसभा चुनाव में राजस्थान की 25 लोकसभा सीटों में से केवल 03 महिला सांसद अर्थात केवल 12 प्रतिशत महिलाएँ लोकसभा में जीत कर गई हैं। ईएजी राज्यों की तुलना में राजस्थान केवल उत्तराखंड (शून्य) एवं उत्तरप्रदेश (8.75 प्रतिशत) से आगे है। यहाँ तक कि 16वीं राज्य विधानसभा में भी 200 विधायकों में से केवल 20 महिला विधायक हैं जो महिलाओं की मात्र 10 प्रतिशत भागीदारी रही है जबकि ये हमारी आधी आबादी हैं। महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में एक तिहाई सीट आरक्षण हेतु संविधान संशोधन (128वां) विधेयक–2023 लाया गया है जो अभी लागू नहीं किया गया है। इस देरी के पीछे कहीं न कहीं सदियों से सत्ता का सुख भोग रही छिपी हुई पुरुषवादी सोच है जिस पर हर राजनीतिक दल आंतरिक रूप से एकमत हैं।

महिला शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान ईएजी राज्यों की तुलना में सबसे पीछे है। जनगणना–2011 के अनुसार राज्य की कुल साक्षरता 67.1 प्रतिशत है। राज्य में पुरुष साक्षरता 80.5 प्रतिशत है जबकि महिलाएँ 52.7 प्रतिशत ही साक्षर हैं। हमारी आधी आबादी में से लगभग आधी महिलाएँ ही साक्षर हैं। एनएफएचएस–5 के अनुसार राज्य में 15–49 आयु वर्ग के अंतर्गत 64.7 प्रतिशत महिलाएँ एवं 88.9 प्रतिशत पुरुष साक्षर हैं। राज्य में 33.5 प्रतिशत महिलाएँ ही 10 साल या उससे ऊपर की स्कूली शिक्षा प्राप्त हैं जबकि इसी वर्ग में 51.9 प्रतिशत पुरुष स्कूली शिक्षा प्राप्त हैं। स्पष्ट है कि राज्य में महिला सशक्तीकरण का सूचकांक अत्यंत कम है। महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और शैक्षिक उन्नयन की दिशा में कड़े कदम उठाने की आवश्यकता है।

श्रम भागीदारी लैंगिक असमानता का तीसरा प्रमुख आयाम है। महिलाओं और पुरुषों के श्रम बाजार भागीदारी सूचकांक के आधार पर लैंगिक असमानता का निर्धारण किया जाता है। श्रम भागीदारी सूचकांक के आधार पर महिलाओं के आर्थिक सामर्थ्य की स्थिति का पता चलता है। आरेख–1 के अनुसार वर्ष 2011–12 में महिला श्रम भागीदारी सूचकांक 0.301 था जो 2017–18 में घटकर 0.193 रह गया। इसी अवधि में पुरुष श्रम भागीदारी सूचकांक क्रमशः 0.501 से बढ़कर 0.516 हो गया। यह न केवल महिला–पुरुष की आर्थिक असमानता को प्रदर्शित करता है अपितु विकास के दौर में महिलाओं के घटते आर्थिक सामर्थ्य को भी प्रदर्शित कर रहा है। आरेख–2 के अनुसार ईएजी राज्यों में राजस्थान छत्तीसगढ़ (0.365) और मध्यप्रदेश (0.234) के बाद महिला श्रम बाजार भागीदारी सूचकांक के साथ तीसरे स्थान पर है। उड़ीसा (0.150), उत्तराखंड (0.137), झारखंड (0.109), उत्तरप्रदेश (0.094) एवं बिहार (0.028) इस दृष्टि से राजस्थान से पीछे हैं। किन्तु इसका मतलब यह कतई नहीं है कि राजस्थान का यह आँकड़ा बेहतर है।

राज्य में जनगणना–2011 में 35.1 प्रतिशत महिला कार्यशील जनसंख्या दर रही जो 2017–18 में घटकर 26.3 प्रतिशत हो गई। जबकि इन्हीं वर्षों में पुरुष कार्यशील जनसंख्या दर 51.5 प्रतिशत से बढ़कर 69.1 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2023–24 में पीएलएफएस रिपोर्ट[10] के अनुसार महिला कार्यशील जनसंख्या दर 48.9 प्रतिशत और पुरुष कार्यशील जनसंख्या दर 74.8 प्रतिशत रही। जाहिर है राज्य में कार्यशील जनसंख्या में लैंगिक असमानता बड़े पैमाने पर

विद्यमान है। ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरी क्षेत्र में महिला कार्यशील जनसंख्या दर बहुत ही कम है। सभी ईएजी राज्यों में पुरुष कार्यशील जनसंख्या 70 प्रतिशत से अधिक है। महिलाओं पर मातृत्व एवं घरेलु कार्यों का बोझ, पुरुषवादी सोच, कार्यस्थल पर असुरक्षित माहौल, कार्यस्थल पर बुनियादी सुविधाओं का अभाव, अशिक्षा, समान कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में कम वेतन, रोजगार के विकल्पों में कमी इत्यादि कारणों से श्रम बल भागीदारी में महिलाएँ पिछड़ी हुई हैं।

लैंगिक असमानता के अवरोध को दूर करने के लिए आवश्यक सुझाव–

लैंगिक असमानता मानव दिमाग की उपज है जो धीरे–धीरे मानव समाज की समस्या के रूप में परिणित हो गई। "पारिवारिक माहौल में महिलाओं और पुरुषों (और लड़कों एवं लड़कियों के बीच) के बीच असमानता को अक्सर प्राकृतिक या उचित माना जाता है (भले ही उन पर आमतौर पर स्पष्ट रूप से चर्चा नहीं की जाती है)"।[11] समाज से मिले पोषण के कारण लैंगिक असमानता की जड़ें और गहरी होती गई। जिस प्रकार बंजर भूमि को उर्वर बनाने में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार रूढ़िवादी एवं पितृसत्तात्मक समाज को प्रगतिशील एवं जेंडर न्यूट्रल बनाने में न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व जैसी पोषक अवधारणाओं का स्थापित होना जरूरी है। विभिन्न क्षेत्रों में भागीदारी हेतु महिलाओं को समान रूप से अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। मातृसत्तात्मकता एवं नारीवाद को समान अर्थ में प्रयुक्त कर इसके विरुद्ध स्वर उठते रहते हैं। नारीवाद महिलाओं को मानव के रूप में समान अवसर प्रदान करने पर बल देता है जबकि मातृसत्तात्मकता ठीक वैसी ही अवधारणा है जैसे पितृसत्तात्मकता। लैंगिक समानता नारीवाद का समर्थन करती है ना कि मातृसत्तात्मकता का। "हमें अपने पूर्वाग्रहों को बदलना होगा या कम से कम उन पूर्वाग्रहों को निर्धारित करने से पहले रुकना होगा। और व्यापक अर्थ में, आप किसी व्यक्ति की क्षमताओं के बारे में सीधे तौर पर यह नहीं मान सकते कि आपने उसे जो भी जेंडर दिया है, उसके आधार पर आप उसे देख सकते हैं (आकोबॉक, के., नवंबर 2023)।"[12] कैरा आकोबॉक एवं सारा लेसी ने अपने शोध पत्र में स्पष्ट किया है कि प्रागैतिहासिक काल में पुरातात्त्विक एवं जीवाश्मीय साक्ष्यों से पता चलता है कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही शिकार करती थी, यहाँ तक कि गर्भवती होने पर भी वे शिकार करती थी। महिलाओं के पार्थिव शरीर के साथ शिकार के हथियार पुरुषों के समान ही कब्र में दफनाए गए थे। साथ ही उनके शरीर पर शिकार के वक्त लगी चोटों के निशान भी पुरुषों के समान पाए गए हैं। जब मानव की आवश्यकता महज भोजन प्राप्ति और संतानोत्पत्ति थी तो संभवतया कुछ समयावधि के लिए सुविधा के हिसाब से संतान की देखभाल महिला के हिस्से एवं शिकार व भोजन संग्रहण पुरुषों के हिस्से रहा होगा। 'पुरुष शिकारी' की अवधारणा ने धीरे–धीरे महिलाओं को केवल लाभार्थी एवं कमजोर वर्ग के रूप में प्रस्तुत किया। अतः इतिहास में महिलाओं की भूमिका को सही रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है।

लैंगिक समानता के लिए जरूरी है कि महिलाएँ शिक्षित हों। शिक्षित होने से न केवल आर्थिक क्षेत्र में भी आगे बढ़ सकती है अपितु अपने स्वास्थ्य का भी बेहतर ख्याल रख सकती हैं और अपने अधिकारों के प्रति भी सजग बन सकती हैं। राजस्थान में भौतिक बाधाओं एवं सुरक्षा कारणों से भी बालिकाओं की शिक्षण संस्थानों तक पहुँच सीमित हो जाती है। अतः

नीतिगत एवं संस्थागत सुधारों की आवश्यकता है। राजस्थान की सतत विकास लक्ष्य स्टेटस रिपोर्ट (2023) के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध अपराधों, घरेलू हिंसा, यौन उत्पीड़न एवं दहेज उत्पीड़न जैसे केसों में वृद्धि हुई है।[13] स्पष्ट है कि महिलाओं को पिछड़ेपन से निकालने एवं उनको सुरक्षित माहौल प्रदान करने में सरकार और समाज विफल रहा है। अतः आवश्यक है कि लैंगिक मुद्दों पर विभिन्न प्रकार के नुक्कड़ नाटक, फिल्म, प्रदर्शनी आदि के माध्यम से समाज में जागरूकता लाई जाए। सिनेमा का समाज पर गहरा प्रभाव रहा है। अतः सिनेमा सोच में बदलाव लाने का सशक्त माध्यम है। किरण राव द्वारा निर्देशित 'लापता लेडीज' जैसी फिल्मों का अंतर्निहित संदेश भी लैंगिक समानता को पोषित करता है। साथ ही विभिन्न शिक्षण संस्थानों एवं कार्यस्थलों में सेमिनार व संगोष्ठी आयोजित कर विचार–मंथन को गति प्रदान की जा सकती है। महिलाओं के लिए कार्यस्थलों पर बुनियादी सुविधाओं और सुरक्षित माहौल को सुनिश्चित किया जाना अत्यंत आवश्यक है। महिलाओं को आर्थिक रूप में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न प्रशिक्षणों के माध्यम से कौशल विकास को बढ़ावा दिया जाए एवं लघु ऋण व्यवस्था को सरल बनाया जाए। समान कार्य के लिए समान वेतन एवं मातृत्व अवकाश के अधिकारों को कठोरता से क्रियान्वित किया जाना जरूरी है। श्रम क्षेत्र में महिलाओं के अधिकारों के लिए समय–समय पर कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना जरूरी है। महिलाओं के लिए न केवल संसद एवं विधायिकाओं में एक तिहाई सीट आरक्षित की जाए, अपितु यह भी आवश्यक है कि सभी पार्टियाँ चुनावी उम्मीदवारों में कम से कम एक तिहाई या उससे अधिक महिलाओं को टिकट वितरित करें। नीति निर्माताओं द्वारा जो भी नीतियाँ बनाई जाती हैं उनमें ऐसी कमियाँ रह जाती है जिसका लाभ अंतिम पंक्ति में खड़ी महिला तक नहीं पहुँच पाता है। "लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए स्पष्ट नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है। पहले प्रकार की लैंगिक प्रगतिशील नीति महिलाओं को कानूनी अधिकार प्रदान करना है। दूसरी नीतिगत उपकरण माता–पिता के लिए बेटियों में निवेश करने के लिए वित्तीय प्रोत्साहन है।"[14] सिर्फ कागजों और आँकड़ों में इन सुधारों के लिखा–पढ़ी होने से समाज में परिवर्तन आना मुश्किल है। अतः जरूरी है कि एक पुख्ता निगरानी तंत्र की व्यवस्था की जाए। समाज में लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए जो कानून बनाए गए हैं, उनका प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन जरूरी है। लैंगिक समानता की दिशा में सभी प्रयास व्यक्ति, परिवार, समाज एवं सरकार के सामूहिक योगदान से संभव हैं। साथ ही महिलाएँ भी 'आत्म–देखभाल' की प्रवृत्ति सीखें। महिलाएँ स्वयं को इस बोझ से मुक्त करें कि 'आत्म–देखभाल' स्वार्थी होना है। यह उनके साथ–साथ उनके परिवार के हित में भी है।

निष्कर्ष

लैंगिक असमानता जटिलतायुक्त है जो हर क्षेत्र में कई तरीकों से और हर स्तर पर मौजूद है। राजस्थान में लैंगिक असमानता बड़े पैमाने पर विद्यमान है। महिलाओं को विशेष अधिकार नहीं बल्कि उन्हें समान अवसर मिलने चाहिए। हमें चाहिए कि हम अपने घर से बालकों को जेंडर संवेदनशीलता की परवरिश दें और साथ ही महिलाएँ भी चुप्पी तोड़े। राजनीतिक सशक्तीकरण के माध्यम से महिलाओं की निर्णयन में भागीदारी को बढ़ावा दें। महिलाओं के लिए किए गए कानूनी प्रावधानों को दृढ़ता से लागू किया जाए। शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं

राजनीतिक सहभागिता के द्वारा ही लैंगिक समानता की अवधारणा को सिंचित किया जा सकता है। हमें महिलाओं की भूमिका को पहचान देने, कार्यभार कम करने, कार्यों का पुनर्वितरण करने, रिवार्ड देने एवं निर्णयन में प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता है। अदृश्य बाधाएँ जो महिलाओं को करियर में आगे बढ़ने से रोकती हैं उन्हें दूर करना होगा। विश्व के जिन देशों में उच्च लैंगिक समानता है वह विकास के पैमाने पर भी अग्रणी हैं। लैंगिक समानता विद्यमान होने से मानव संसाधन गुणवत्ता एवं स्वस्थ समाज कायम करने में सफलता मिलती है। समावेशी सतत विकास और संतुलित समाज का निर्माण लैंगिक समानता द्वारा ही संभव है।

❒

सन्दर्भ –

1. *https://www.theguardian.com/books/2014/jan/09/simone-de-beauvoir-google-doodle-quotes*
2. *जेंडर इक्वलिटीः ग्लोसरी ऑफ टर्म एंड कान्सेप्ट्स, (नवंबर 2017), यूनिसेफ रीजनल ऑफिस फॉर साउथ एशिया, पृ. 03.*
3. *https://statistics.py.gov.in/state-wise-population*
4. *विमेन एंड मैन इन राजस्थान–2021, (जनवरी 2023), डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनॉमिक्स एंड स्टेटिस्टिक्स, राजस्थान.*
5. *जेंडरिंग ह्यूमन डेवलेपमेंट रिपोर्ट, (2017–18), मिनिस्टरी ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इंप्लीमेंटेशन, भारत सरकार, पृ. 52. https://mospi.gov.in*
6. *जेंडरिंग ह्यूमन डेवलेपमेंट रिपोर्ट, (2017–18), मिनिस्टरी ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इंप्लीमेंटेशन, भारत सरकार, पृ. 53. https://mospi.gov.in*
7. *एसआरएस, मेटेरनल मोर्टालिटी बुलेटिन, (2018–19), कार्यालय महारजिस्ट्रार, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया.*
8. *एनएफएचएस–5, (2020–21), स्टेट एंड डिस्ट्रिक्ट फैक्टशीट्स ऑफ राजस्थान, आईआईपीएस, मुंबई.*
9. *जेंडरिंग ह्यूमन डेवलेपमेंट रिपोर्ट, (2017–18), मिनिस्टरी ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इंप्लीमेंटेशन, भारत सरकार, पृ. 53. https://mospi.gov.in*
10. *पीएलएफएस वार्षिक रिपोर्ट, 2023–24, (सितंबर 2024), मिनिस्टरी ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इंप्लीमेंटेशन, भारत सरकार,ए–67.*
11. *Sen, A. (1995). Gender inequality and theories of justice. Women, culture and development: A study of human capabilities, 259-273. Google Scholar.*
12. *https://news.nd.edu/news/woman-the-hunter-studies-aim-to-correct-history/*
13. *राजस्थान एसडीजी स्टेट्स रिपोर्ट–2023, सेंटर फॉर एसडीजी इंप्लीमेंटेशन, डाइरेक्टरेट ऑफ इकोनॉमिक्स एंड स्टेटिस्टिक्स, राजस्थान.*
14. *Jayachandran, S. (2015). The roots of gender inequality in developing countries. Annual review of economics, 7(1), 63-88.Google Scholar.*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 33–43

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

घरेलू कामगार महिलाओं के प्रति यौन हिंसा वाराणसी जिले के विशेष संदर्भ में

मंजरी गोंड
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय,बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)
Email ID: manjaribhu5@gmail.com Mob. +91. 6389737739

डॉ. प्रतिमा गोंड
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी,
Email ID: pratima.gond1@bhu.ac.in Mob. +91. 07985720471

सारांश

वाराणसी शहर जहाँ घरेलू कामगार महिलाओं का एक बड़ा वर्ग निवास करता है, वे परिवार का भरण–पोषण करने के लिए घरों में फर्श पोंछना, बर्तन धोना, कपड़े धोने का कार्य करती हैं। इनमें से कई कार्यस्थल पर यौन हिंसा, कम वेतन, वित्तीय असुरक्षा, सामाजिक पूर्वाग्रहों और मानसिक शोषण का सामना करती हैं क्योंकि घरेलू कामगार महिलाएँ समाज का ऐसा वर्ग हैं, जो विशेष रूप से असुरक्षित और हाशिए पर हैं। इनके कार्यस्थल, जो अक्सर निजी घर होते हैं, यौन शोषण और हिंसा के लिए अनियंत्रित क्षेत्र बन जाते हैं। भारत में, घरेलू कामगार 47.5 लाख गरीबी से पीड़ित श्रमिकों की एक अदृश्य श्रेणी का गठन करते हैं। जिनमें से लगभग 63ः (30 लाख) महिलाएँ हैं। मार्था फैरेल फाउंडेशन द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 29 प्रतिशत से अधिक महिला घरेलू कामगारों ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की शिकायत की है।[1] लगभग 19 प्रतिशत ने इस घटना को पूरी तरह से नजरअंदाज किया, जबकि 15 प्रतिशत ने इस बारे में केवल अपने दोस्तों से बात की। जाहिर है, घरों को दुनिया में सबसे सुरक्षित जगह मानते हैं, फिर भी घरेलू कामगारों के लिए उनके कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एक आम बात है। हमारे कार्यस्थलों के विपरीत, उनके लिए कोई मानव संसाधन विभाग नहीं है, जहाँ वे उत्पीड़न की रिपोर्ट कर सकें। प्रतिशोध और आजीविका के नुकसान के डर और मुद्दे से जुड़े कलंक के कारण वे घटनाओं की रिपोर्ट करने से कतराती हैं। पारम्परिक मूल्यों में शिथिलता, समाज में बढ़ रही आपराधिक प्रवृत्तियाँ, कानूनी माध्यमों से हिंसा के अतिरंजित चित्रण आदि तीव्र गति से प्रसारित यौन उत्पीड़न में फैलाव सर्वाधिक दयनीय है। ये महिलाएँ कई बार आर्थिक मजबूरी और सामाजिक दबाव के कारण इस उत्पीड़न को सहन करती हैं और इसकी शिकायत नहीं कर पातीं। वर्तमान समय में घरेलू कामगार महिलाओं की यौन उत्पीड़न घटना अत्यन्त गम्भीर होती जा रही है, जो कि कामगार महिलाओं

के आत्मसम्मान, प्रतिष्ठा को चोट पहुँचाता है अतः प्रस्तुत शोध प्रस्ताव में घरेलू कामगार महिलाओं के यौन–उत्पीड़न से सम्बन्धित समस्याओं का समाज वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः– घरेलू कामगार महिला, यौन–उत्पीड़न, असंगठित क्षेत्र, असुरक्षित कार्यस्थल, सामाजिक दबाव।

प्रस्तावना

भारत में समग्र राष्ट्रीय विकास के परिप्रेक्ष्य में जिन आधारभूत विषयों पर विचार किए जाने की नितांत आवश्यकता है उनमें वर्तमान समय में कामगार महिलाओं के योगदान का मुद्दा सर्वोपरि है जिन्होनें संगठित एवं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत् होकर समाज में अहम् भूमिका निभाते हुऐ निर्विवाद रूप से सहयोग किया है। चूँकि प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य घरेलू कामगार महिलाओं के प्रति यौन हिंसा का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन है इसलिए इस विषय पर केन्द्रित रह इनकी स्थिति पर विचार करते हैं तो देखतें हैं कि असंगठित क्षेत्र में जहां एक तरफ इनके कार्य का विस्तार तीव्र गति से हो रहा है वहीं दूसरी तरफ ऐसे कार्यों में संलग्न ये घरेलू कामगार महिलाएँ अक्सर समाज के हाशिए पर होती हैं। घरेलू कामगार महिलाएँ वे महिलाएँ हैं जो घरों में सफाई, खाना–पकाने, बच्चों की देखभाल, कपड़े धोने और अन्य घरेलू कार्य करती हैं। इन कामगारों को असंगठित क्षेत्र का हिस्सा माना जाता है, जहाँ उनकी सुरक्षा और अधिकारों की अनदेखी तथा यौन हिंसा उनके जीवन को और भी चुनौतीपूर्ण बना देती है। ई–श्रम पोर्टल के अनुसार घरेलू कार्य भारत देश का द्वितीय स्थान पर सबसे अधिकतम संख्या में असंगठित क्षेत्र है। भारतीय देश में 2,82,07,597 घरेलू कामगार ई–श्रम पोर्टल पर रजिस्टर्ड है। राजकुमार (25 अक्टूबर 2023)।[2]

भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त के कार्यालय द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार, जनगणना, 2011 के अनुसार, भारत में महिला श्रमिकों की कुल संख्या 149.8 मिलियन है और ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिला श्रमिक क्रमशः 121.8 और 28.0 मिलियन हैं। कुल 149.8 मिलियन महिला श्रमिकों में से, 35.9 मिलियन महिलाएँ कृषक के रूप में काम कर रही हैं और अन्य 61.5 मिलियन कृषि मजदूर हैं। शेष महिला श्रमिकों में से, 8.5 मिलियन घरेलू उद्योग में हैं और 43.7 मिलियन अन्य श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत हैं। जनगणना 2011 के अनुसार, महिलाओं की कार्य सहभागिता दर 2001 के 25.63 प्रतिशत की तुलना में 2011 में 25.51 प्रतिशत है। महिलाओं की कार्य सहभागिता दर 2011 में मामूली रूप से कम हुई है, लेकिन 1991 के 22.27 प्रतिशत और 1981 के 19.67 प्रतिशत की तुलना में इसमें सुधार हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर 30.02 प्रतिशत है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 15.44 प्रतिशत है। जहां तक संगठित क्षेत्र का सवाल है, मार्च 2011 में देश में संगठित क्षेत्र में कुल रोजगार में महिला श्रमिकों की हिस्सेदारी 20.5 प्रतिशत थी, जो पिछले वर्ष की तुलना में 0.1 प्रतिशत अधिक है। रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा 31 मार्च 2011 को की गई पिछली रोजगार समीक्षा के अनुसार, संगठित क्षेत्र (सार्वजनिक और निजी क्षेत्र) में लगभग 59.54 लाख महिला श्रमिक कार्यरत थीं। इनमें से लगभग 32.14 लाख महिलाएं सामुदायिक, सामाजिक और व्यक्तिगत सेवा क्षेत्र में कार्यरत थीं।[3]

कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़न की रोकथाम और निवारण के लिए **अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO)** की सहायता से विशाखा दिशानिर्देशों के अनुरूप श्रम आयुक्त और शिकायत समिति की एक रूपरेखा तैयार की गई है। **कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध व निवारण) अधिनियम 2013,** पारित होने के बावजूद भी मानवाधिकार और श्रम अधिकार की अवहेलना बारम्बार होती रही है इसके अनुसार, 70 मिलियन वैश्विक घरेलू कर्मचारियों में से 70 प्रतिशत महिलाएँ हैं। इन महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा, 11 मिलियन, प्रवासी हैं। गरीबी से प्रेरित कई महिलाएँ खुद को ऐसे काम और जीवन की परिस्थितियों को स्वीकार करने के लिए मजबूर पाती हैं जो उनके मौलिक मानवाधिकारों का उल्लंघन करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में, कई प्रवासी घरेलू कामगारों को शारीरिक और सामाजिक अलगाव, आवागमन पर प्रतिबंध, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और यौन हिंसा, धमकी, नियोक्ता द्वारा पहचान दस्तावेजों को रोके रखना, वेतन रोक लेना, अपमानजनक कार्य और रहन–सहन की स्थिति और अत्यधिक ओवरटाइम जैसे दुर्व्यवहारों का सामना करना पड़ता है।[4] घरेलू कामगार महिलाएँ अपने परिवार के आर्थिक सहारे के लिए कार्य करती है। नौकरी खोने के डर से वे उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने से संकोच करती है। चुप्पी उनके लिए रक्षा तंत्र बन जाती है, जिससे वे अपनी और आय को सुरक्षित रखने की कोशिश करती है। घरेलू कामगार महिलाओं के कार्य की कोई स्थिरता नहीं होती और उन्हें अक्सर बिना किसी पूर्व अस्थिरता उनके आत्मविश्वास को कमजोर करती है। यौन उत्पीड़न भेदभाव का एक गम्भीर रूप है इसीलिए इसे बर्दाश्त नहीं करना चाहिए क्योंकि ये कार्य में असमानता को न्यौता देता है और काम करने वालों की इज्जत, गरिमा और सलामती के खिलाफ है पर परिवार की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए उन्हें मजबूर होना पड़ता है।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत देश में महिला साक्षरता 65 प्रतिशत है किन्तु घरेलू कामगार महिलाएँ ज्यादातर शिक्षित नहीं होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह प्रदर्शित है कि श्रमिक समूह, सिविल सोसायटी संगठन और मानवाधिकार समूह लगातार घरेलू कामगारों के लिए अधिकार और सुरक्षा की माँग के लिए खड़े हैं। इन्हीं प्रयासों से **ILO कन्वेशन नम्बर 189** को अपनाया गया है। यह घरेलू कामगारों के कार्य करने की स्थितियों को निर्धारित करने वाला अन्तरराष्ट्रीय दस्तावेज है। भारत देश ने इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर अत्यधिक महत्वपूर्ण नाम कन्वेंशन ऑन डोमेस्टिक वर्कर के नाम से जाना जाता है किन्तु अभी तक इसे अंशीकार नहीं किया गया है।

घरेलू कामगार :– घरेलू कामगार कन्वेंशन 2011 (सं0 189), अनुच्छेद–1 में ''घरेलू कामगारों व घरेलू कार्य'' को परिभाषित किया है।

(क) ''घरेलू कार्य'' शब्द का अर्थ यह है कि एक घर या घरों के लिए या उसमें किया जाने वाला काम।

(ख)''घरेलू कामगार'' शब्द का अर्थ है रोजगार सम्बन्ध के तहत घरेलू काम में लगा कोई भी व्यक्ति।[5]

यौन हिंसा :– अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के विभेदों का प्रतिशोध

अभिसमय (CEDAW)- Convention on Elimination of all form of Discrimination Against Women 1979 के अनुसार, यौन उत्पीड़न में अनचाहा यौन व्यवहार रंजित टिप्पणी, अश्लील साहित्य, अश्लील फिल्में व मौखिक या कृत्यों के माध्यम से यौन सम्बन्ध बनाने की माँग शामिल है। ऐसा व्यवहार शर्मनाक हो सकता है तथा महिला के स्वास्थ्य व सुरक्षा को प्रभावित करता है तथा स्त्री के प्रति हिंसा का तात्पर्य लिंग भेद पर आधारित ऐसा कोई हिंसापूर्ण कार्य है जिसके परिणामस्वरूप या जिसके कारण स्त्री को शारीरिक, लैंगिक या मानसिक क्षति पहुँचे।[6]

सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य :– संघर्ष सिद्धान्त का विकास **कार्ल मार्क्स** और **मैक्स वेबर** जैसे विचारकों ने किया था। यह सिद्धान्त मानता है कि समाज में विभिन्न वर्गों के बीच शक्ति और संसाधनों को लेकर संघर्ष होता है। इन संघर्षों के कारण असमानताएँ और शोषण उत्पन्न होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, समाज का उच्च वर्ग हमेशा अपने हितों की रक्षा करने के लिए निम्न वर्ग को शोषित करता है। संघर्ष सिद्धान्त के अनुसार, घरेलू कामगार महिलाएँ समाज के एक कमजोर वर्ग से आती है जिन्हें अपनी आजीविका के लिए अपने नियोक्ता पर पूरी तरह से निर्भर होना पड़ता है।

यह शक्ति का असंतुलन यौन हिंसा और शारीरिक शोषण के लिए दुरूपयोग उत्पन्न करता है। क्योंकि घरेलू कामगार महिलाएँ अक्सर नियोक्ता पर निर्भर होती हैं, जो उन्हें एक न्यूनतम वेतन और असुरक्षित कार्य परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर करता है। यह निर्भरता उन्हें हिंसा का शिकार होने के लिए असुरक्षित बना देती है। इसके परिणामस्वरूप समाज में घरेलू कामकाजी महिलाओं के खिलाफ हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती है।

अब तक के सभी मौजूदा समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। स्वतंत्र व्यक्ति और गुलाम, कुलीन और साधारण स्वामी और दास, संघ–स्वामी और मजदूर, एक शब्द में उत्पीड़क और उत्पीड़ित, एक दूसरे के लगातार विरोध में खड़े रहे, एक अविच्छिन्न, कभी छिपी हुई, कभी खुली लड़ाई जारी रखी, एक ऐसी लड़ाई जो हर बार या तो बड़े पैमाने पर समाज के क्रांतिकारी पुनर्गठन में समाप्त हुई या संघर्षरत वर्गों के आम विनाश में– कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स (कम्युनिस्ट घोषणापत्र 1848)।[7] वर्ग संघर्ष सिद्धान्त घरेलू कामकाजी महिलाओं पर यौन हिंसा के प्रभाव को समझने का एक प्रभावी तरीका प्रदान करता है। यह सिद्धान्त बताता है कि समाज में उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण कैसे होता है और घरेलू कामकाजी महिलाएँ इस संघर्ष का शिकार होती है। यौन हिंसा, शारीरिक उत्पीड़न और मानसिक शोषण का कारण वर्गीय और लैंगिक असमानताएँ हैं, जिन्हें बदलने के लिए सामाजिक, आर्थिक और कानूनी सुधार आवश्यक है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व

वाराणसी जिले में घरेलू कामगार महिलाओं के प्रति सामाजिक भेदभाव, मानसिक एवं यौन हिंसा एक महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा है, जो उनकी सुरक्षा, गरिमा और अधिकारों को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। इस संदर्भ में शोध करने की आवश्यकता इसीलिए है क्योंकि घरेलू कामगार महिलाएँ अक्सर असंगठित क्षेत्र में काम करती है, जहाँ उनके अधिकारों और सुरक्षा की अनदेखी होती है।

इस विषय पर समुचित और प्रामाणिक आँकड़ों की कमी है, जिससे समस्या की व्यापकता को समझने में कठिनाई होती है। इसीलिए अध्ययन के माध्यम से यौन हिंसा के कारणों और परिणामों का विश्लेषण करके, उचित नीतिगत उपाय सुझाए जा सकते हैं। इस शोध से समाज और नियोक्ताओं में महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाई जा सकती है। इसके साथ ही महिलाओं को उने अधिकारों और कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूक करना संभव होगा।

उपकल्पना

1—वाराणसी जिले में घरेलू कामगार महिलाएं सामाजिक भेदभाव एवं मानसिक हिंसा की समस्या से पीड़ित हैं।

2—घरेलू कामगार महिलाओं को अपने कार्यस्थल पर यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है।

शोध उद्देश्य : वाराणसी जिले में काशी विद्यापीठ ब्लाक के छितुपुर एवं चितईपुर गावं की घरेलू कामगार महिलाओं के प्रति सामाजिक भेदभाव, मानसिक हिंसा एवं यौन हिंसा की स्थिति को उजागर करना (जानना)।

शोध प्रविधि :— प्रस्तुत शोध में अन्वेषणात्मक सह वर्णानात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या :— प्रस्तुत शोध में वाराणसी जिले में काशी विद्यापीठ ब्लाक के छितुपुर एवं चितईपुर गांव कार्यरत् घरेलू कामगार महिलाओं को जनसंख्या के रूप में लिया गया है।

न्यादर्श एवं न्यायदर्शन विधि :— शोध हेतु वर्णित जनसंख्या में से न्यादर्श के रूप में वाराणसी जिले की 50 घरेलू कामगार महिलाओं का चयन सोद्देश्य एवं स्नोबाल न्यायदर्शन विधि द्वारा किया गया है।

साहित्य समीक्षा:— Women, Work, and Sexual Harassment: The Untold Story, नामक पुस्तक में लेखक Carnie N. Baker[8] ने बताया की यह पुस्तक कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न की गहन खोज प्रस्तुत करती है, विशेष रूप से महिलाओं के अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित करती है। यह यौन—उत्पीड़न के इतिहास, कानूनी ढ़ाँचे और उसके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण पर चर्चा करती है। लेखक पीड़ितों पर मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक प्रभावों और उन तरीकों की भी खोज करती है जिनसे संस्थाएँ और समाज इस मुद्दे को संबोधित करने या उचित रूप से स्वीकार करने में विफल होते हैं। Global Woman: Nannies, Maids, and Sex Worker in the New Economy में लेखक Barbara Enrenreich and Arlie Russell Hochschild[9] ने बताया कि यह पुस्तक वैश्विक अर्थव्यवस्था की कम वेतन वाली अक्सर प्रवासी श्रम पर निर्भरता की पड़ताल करती है। ये घरेलू कामगार महिलाओं पर काम की तलाश में अपने परिवार के साथ—साथ उनके पीछे समाजों के लिए आर्थिक तथा सामाजिकता के श्रम का स्त्रीकरण पर प्रकाश डालता है। एक वैश्वीकृत कार्यबल के सन्दर्भ में घरेलू कामगारों और उनके नियोक्ताओं के बीच संबंधों पर चर्चित है। Behind closed Doors: Domestic Workers and Sexual Harassment में लेखिका Premila Nadasen[10] द्वारा लिखित यह पुस्तक घरेलू कामगारों की छिपी दुनिया और निजी घरों में उनके द्वारा अक्सर झेले जाने वाले यौन उत्पीड़न पर केन्द्रित है। लेखक शोषण और दुर्व्यवहार के लंबे समय से चले आ रहे मुद्दे की जांच करते हैं जिसे

कई घरेलू कामगार, खासकर महिलाएँ ऐसे समाज में झेलती हैं जहाँ उनके श्रम को कम आंका जाता है और उनकी आवाज को दबा दिया जाता है। यह पुस्तक ऐतिहासिक और समकालीन दोनों दृष्टिकोणों को जोड़ती है कि कैसे घरेलू कामगार मान्यता और अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं। Sexual Harassment of working Women: A case of Sex Discrimination पुस्तक में लेखक Mackinnon[11] ने यौन–उत्पीड़न को लिंग भेदभाव के एक रूप में समझने की नींव रखी और उत्पीड़न को संबोधित करने वाले कानूनी ढाँचों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आँकड़ा विश्लेषण

तालिका–1. व्यक्तिगत और पारिवारिक जानकारी

आयु	20–20 वर्ष	30–39 वर्ष	40–49 वर्ष	50–59 वर्ष
	9 (14%)	25 (50%)	15 (30%)	3 (6%)
श्रेणी (समूह)	सामान्य	अन्य पिछड़ा वर्ग	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
	4 (8%)	30 (60%)	8 (16%)	8 (16%)
धर्म	हिन्दू	मुस्लिम	सिक्ख	ईसाई
	48 (96%)	1 (2%)	0 (0%)	1 (2%)
शिक्षा	निरक्षर 3 (6%)	प्रारम्भिक (कक्षा 1–8)	माध्यमिक (कक्षा 9–12)	स्नातक 2 (4%)
		32 (64%)	13 (26%)	
पारिवारिक आकार	एकाकी परिवार	संयुक्त परिवार		
	22 (44%)	28 (56%)		

तालिका–1 से स्पष्ट है कि कुल 50 घरेलू कामगार महिलाओं में से 20–29 आयु वर्ग की 7 अर्थात् 14%, 30–39 आयु वर्ग की 25 अर्थात् 50%, 40–49 आयु वर्ग की 15 अर्थात् 30% एवं 50–59 आयु वर्ग की 3 अर्थात् 6% महिलाएँ हैं। जिसमें सामान्य वर्ग की 4 अर्थात् 8%, अन्य पिछड़ा वर्ग की 30 अर्थात् 60%, अनुसूचित जाति की 8 अर्थात् 16% एवं अनुसूचित जनजाति की 8 अर्थात् 16% महिलाएँ हैं। जिसमें हिन्दू धर्म की 48 अर्थात् 96%, मुस्लिम धर्म की 1 अर्थात् 2%, सिक्ख धर्म की 0 अर्थात् 0% एवं ईसाई धर्म की कुल 1 अर्थात् 2% महिलाएँ हैं। जिनमें कुल 3 अर्थात् 6% निरक्षर, 32 अर्थात् 64% प्रारम्भिक कक्षा, 13 अर्थात् 26% माध्यमिक स्तर एवं 2 अर्थात् 4% स्नातक स्तर की महिलाएँ हैं। जिसमें एकाकी परिवार की 22 अर्थात् 44% एवं 28 अर्थात् 56% महिलाएँ संयुक्त परिवार से सम्बन्धित हैं।

तालिका–2. कार्य से सम्बन्धित जानकारी

कितने वर्षों से घरेलू कार्य कर रही हैं?	5 वर्ष के अन्तर्गत 11 (22%)	5 से 10 वर्ष के अन्तर्गत 22 (44%)	10 से 15 वर्ष के अन्तर्गत 10 (20%)	15 वर्ष से अधिक 7 (14%)
कार्य किस प्रकार का है?	सफाई–बर्तन धोना 24 (48%)	खाना बनाना 16 (32%)	बच्चों की देखभाल 7 (14%)	अन्य 3 (6%)
मसिक आय कितनी है?	2,000 रु. के अन्तर्गत अन्तर्गत 20 (40%)	3,000 रु. से 5,000 रु. के अन्तर्गत 9 (18%) 18 (36%)	5,000 रु. से 10,000 रु. के	10,000 रु. से 15,000 रु. के अन्तर्गत 3 (6%)
अपने काम के लिए इनमें से कौन–सी अतिरिक्त सुविधाएँ मिलती है?	भोजन 38 (76%)	आवास 5 (10%)	छुट्टियाँ 5 (10%)	अन्य 2 (4%)
आपके कार्य स्तर पर नियम और नीतियाँ कैसी हैं?	सख्त 9 (18%)	अत्यधिक सख्त 9 (18%)	सामान्य 31 (62%)	अन्य 1 (2%)

तालिका–2 से स्पष्ट है कि कुल 50 घरेलू कामगार महिलाओं में से 11 अर्थात् 22ः महिलाएँ ऐसी हैं जो 5 वर्ष से घरेलू कार्य कर रही हैं, 22 अर्थात् 44% महिलाएँ ऐसी हैं जो 5 वर्ष से 10 वर्ष के अन्तर्गत कार्य कर रही हैं, 10 अर्थात् 20% महिलाएँ 10 वर्ष से 15 वर्ष के अन्तर्गत कार्य में संलग्न हैं एवं 7 अर्थात् 14% महिलाएँ जो 15 से अधिक वर्षों से घरेलू कार्य में संलग्न हैं। जिसमें 24 अर्थात् 48% महिलाएँ सफाई–बर्तन धोने से, 16 अर्थात् 32% महिलाएँ खाना बनाने से, 7 अर्थात् 14% महिलाएँ बच्चों की देखभाल से एवं 3 अर्थात् 6ः महिलाएँ अन्य कार्यों से सम्बन्धित हैं।जिसमें 20 अर्थात् 40% महिलाओं की मासिक आय 2000 रु0 के अन्तर्गत, 18 अर्थात् 36% महिलाओं की मासिक आय 3000 रु0 से 5,000 रु0 के अन्तर्गत, 9 अर्थात् 18% महिलाओं की मासिक आय 5000 रु0 से 10,.000 रु0 के अन्तर्गत एवं 3 अर्थात् 6% महिलाओं की मासिक आय 10,000 रु0 से 15,000 रु0 के अन्तर्गत है। जिसमें से 38 अर्थात् 76% महिलाओं को कार्यस्थल पर भोजन, 5 अर्थात् 10% महिलाओं को आवास, 5 अर्थात् 10% महिलाओं को मनचाही छुट्टियाँ एवं 2 अर्थात् 4% महिलाओं को कुछ अन्य अतिरिक्त सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। जिसमें से अर्थात् 18% महिलाओं का मानना है कि उनके कार्यस्थल पर नियम तथा नीतियाँ सख्त है, 9 अर्थात् 18% महिलाओं का मानना है कि उनके कार्यस्थल पर नियम एवं नीतियाँ अत्यधिक सख्त है। 3 अर्थात् 62% महिलाओं का यह मानना है कि उनके कार्यस्थल पर नियम एवं नीतियाँ सामान्य स्तर की है। 1 अर्थात् 2% महिलाएँ ऐसी हैं जो नियम तथा नीतियों की स्वरूप के बारे में कुछ भी बोलने पर असमर्थ थीं।

तालिका–3. हिंसा और भेदभाव के अनुभव

अपने कार्यस्थल पर आपने इनमें से कौन–सी हिंसा का सामना किया है?	मारपीट 0 (0%)	धमकी 24 (48%)	गाली 1 (2%)	नहीं 25 (50%)
आपने इनमें से कौन–सी मानसिक हिंसा झेली है?	अपमानजनक शब्द 28 (56%)	ताने 13 (26%)	घूरना 4 (8%)	नहीं 9 (18%)
क्या आपने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (अश्लील टिप्पणी, अनुचित स्पर्श आदि)का अनुभव किया है?	हाँ 3 (6%)	नहीं 41 (82%)	कभी–कभी 6 (12%)	
यदि आपने हिंसा का सामना किया है, तो आपने इसके खिलाफ शिकायत दर्ज की है?	हाँ 0 (0%)	नहीं 50 (10%)		
क्या आपने कार्यस्थल पर किसी प्रकार का भेदभाव महसूस किया है?	हाँ 43 (86%)	नहीं 2 (4%)	कभी–कभी 5 (10%)	
आपको किस प्रकार सहायता की आवश्यकता है?	कानूनी 1 (2%)	आर्थिक 42 (84%)	सामाजिक 6 (12%)	अन्य 1 (2%)

तालिका–3 से स्पष्ट है कि कुल 50 घरेलू कामगार महिलाओं में ऐसी कोई महिला नहीं है जिसका उनके कार्यस्थल पर किसी से मारपीट हुई हो। 24 अर्थात् 48% महिलाएँ ऐसी हैं जिन्हें अपने कार्यस्थल पर धमकियाँ मिलती रहती है, 1 अर्थात् 2% महिलाएँ ऐसी हैं जिन्हें अपने कार्यस्थल पर गाली भी सुननी पड़ती है एवं 25 अर्थात् 50% महिलाएँ ऐसी हैं जिनका मानना है कि उनके कार्यस्थल पर वो किसी भी प्रकार की हिंसा का शिकार नहीं हुई हैं।

जिसमें 28 अर्थात् 56% महिलाएँ ऐसी हैं जिनको अपने कार्यस्थल पर अक्सर अपमानजनक शब्द सुनने को मिला है, 13 अर्थात् 26% महिलाओं को ताना सुनने को मिलता है। 4 अर्थात् 82% महिलाओं ने स्वीकार किया कि कार्यस्थल पर घूरा जाता है, एवं 9 अर्थात् 18% महिलाएँ ऐसी हैं जो किसी भी प्रकार की मानसिक हिंसा नहीं झेली हैं।

जिनमें 3 अर्थात् 6% महिलाएँ अपने कार्यस्थल पर अश्लील टिप्पणी, अनुचित स्पर्श आदि का शिकार हुई हैं, 41 अर्थात् 82% महिलाओं का मानना है कि उनके कार्यस्थल पर अश्लील टिप्पणी एवं अनुचित स्पर्श का सामना नहीं हुआ है, कुल 50 घरेलू कामगार महिलाओं में से कोई भी महिलाएँ ऐसी नहीं हैं जो कि हिंसा होने पर उसकी शिकायत कहीं दर्ज करायी हो, 43 अर्थात् 86% महिलाओं ने अपने कार्यस्थल पर भेदभाव का अनुभव किया हो, 2 अर्थात् 4% महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने अपने कार्यस्थल पर कभी–भी भेदभाव का अनुभव नहीं किया एवं 5 अर्थात् 10% महिलाएँ ऐसी हैं जिनका मानना है कि वो कभी–कभी अपने कार्यस्थल पर भेदभाव का अनुभव करती हैं। जिसमें 2% महिलाएँ ऐसी हैं जिनको कानूनी सहायता की आवश्यकता है, 84: महिलाएँ ऐसी हैं जिनको आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। 12% महिलाओं को सामाजिक सहायता की आवश्यकता 2% महिलाएँ ऐसी हैं जिनको अन्य प्रकार की सहायता की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

इस शोध में यह पाया गया कि 50% घरेलू कामगार महिलाएँ 30–39 आयु वर्ग की हैं। कुल न्यादर्श में सबसे ज्यादा अन्य पिछड़ा वर्ग की महिलाएँ हैं जिनका प्रतिशत 60 है। साथ ही अगर धर्म के अनुसार देखा जाए तो कुल 96 प्रतिशत घरेलू कामगार महिलाएँ हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं। घरेलू कामगार महिलाओं में सबसे ज्यादा वो महिलाएँ हैं जिन्होंने कक्षा 1 से 8वीं तक शिक्षा ग्रहण की है जिनका प्रतिशत 64 है। 4 प्रतिशत घरेलू कामगार महिलाएँ ऐसी हैं जिन्होंने स्नातक किया है।

जिनमें से 48 प्रतिशत महिलाओं का कार्य सफाई एवं बर्तन धोना है। सभी घरेलू कामगार महिलाओं में से 36 प्रतिशत महिलाएँ ऐसी है जिनकी मासिक आय 3000 रु0 से 5,000 रु0 के अन्तर्गत है एवं 6 प्रतिशत महिलाओं की मासिक आय 10,000 रु0 से 15,000 रु0 के अन्तर्गत है अर्थात् घरेलू कामगार महिलाओं का औसत मासिक आय बहुत ही कम है जिसके कारण उनकी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। 18 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उनके कार्यस्थल पर नियम एवं नीतियाँ अत्यधिक सख्त हैं। 62 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उनके कार्यस्थल पर नियम एवं नीतियाँ सामान्य स्तर की है जो यह प्रदर्शित करता है कि उनको अपने कार्यों में ज्यादा परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ता है।

48% महिलाएँ ऐसी हैं जिनको अपने कार्यस्थल पर अक्सर धमकियाँ मिलती रहती हैं। 56% महिलाओं को अपमानजनक शब्दों को सुनना पड़ता है एवं 8 प्रतिशत महिलाएँ घूरने का शिकार हैं। 82 प्रतिशत महिलाएँ ऐसी हैं जिनका मानना है कि उन्होंने कभी–भी अश्लील टिप्पणी एवं अनुचित स्पर्श का अनुभव नहीं किया है। वो महिलाएँ जिनके साथ अश्लील टिप्पणी एवं अनुचित स्पर्श हुआ है उनमें से ऐसी कोई भी महिला नहीं है जिन्होंने उसकी शिकायत दर्ज कराई हो। कुल घरेलू कामगार महिलाओं में से 84% महिलाओं को आर्थिक सहायता की आवश्यकता है।

जैसा कि तालिका नम्बर 03 से स्पष्ट है कि शोधकर्ता द्वारा प्रतिपादित प्रथम उपकल्पना की पुष्टि तो होती है क्योंकि वाराणसी जिले में घरेलू कामगार महिलाएं सामाजिक भेदभाव एवं मानसिक हिंसा की समस्या से क्रमशः 86% और 56% पीड़ित हैं परन्तु दूसरी उपकल्पना की पुष्टि नहीं होती है क्योंकि वाराणसी जिले में घरेलू कामगार महिलाओं को अपने कार्यस्थल पर लगभग 6% यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है जबकि 82% उन महिलाओं का पाया गया जो अपने कार्यस्थल पर यौन हिंसा जैसे अभिशाप को झेलने के लिए विवश नहीं हैं यह एक सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सशक्त कदम है।

सरकारी प्रयास एवं सुझाव :–

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि घरेलू कामगार महिलाएं विभिन्न प्रकार के समस्याओं से ग्रसित हैं परंतु ऐसा नहीं है कि समाज व प्रशासन द्वारा उनकी दयनीय स्थिति की तरफ ध्यान नहीं दिया जा रहा है। घरेलू कामगार महिलाओं की स्थिति को सुधारने एवं उनमें आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता लाने के लिए घरेलू कामगार कल्याण विधेयक, 2016 में पारित हुआ जिसके बाद उन्हें राज्य के श्रम विभाग के पास कामगार के रूप में अपना पंजीकरण कराने का अधिकार मिल गया है। इससे उन्हें कामगारों के अधिकार और लाभ मिल पाएंगे। घरेलू

कामगारों को अपना संघ, एसोसिएशन या संगठन बनाने का अधिकार है। उन्हें न्यूनतम मजदूरी पाने, सामाजिक सुरक्षा तक पहुँच, उत्पीड़न और हिंसा से संरक्षण का अधिकार भी मिल गया है और घरेलू कामगारों की न्यायालयों और न्यायाधिकरणों तक पहुँच सुनिश्चित हो गयी है। घरेलू सहायकों को रोजगार प्रदान करने वाली एजेंसियों के विनियमन के लिये एक तंत्र की भी स्थापना की गयी है साथ ही घरेलू कार्य के लिये विदेश जाने वाले कामगारों को शोषण से संरक्षण प्रदान करने का भी प्रावधान किया गया है। असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 असंगठित मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा और कल्याण के लिए और इससे जुड़े आकस्मिक या अन्य मामलों के लिए लागू किया गया है। उपयोगकर्ता अधिनियम के उद्देश्यों, सामाजिक सुरक्षा लाभ, निधिकरण आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध, निवारण) अधिनियम, 2013 विशेष रूप से कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया है। यह अधिनियम यौन उत्पीड़न की शिकायतों के निवारण के लिए एक तंत्र प्रदान करता है। इसके अलावा, अनुच्छेद 21 उसे जीवन का अधिकार और सम्मान के साथ जीने का अधिकार तथा कोई भी पेशा अपनाने या कोई भी व्यवसाय, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार प्रदान करता है, जिसमें यौन उत्पीड़न से मुक्त सुरक्षित वातावरण का अधिकार भी शामिल है।

ऐसे कार्यक्रमों के फलस्वरुप घरेलू कामगार महिलाओं की सामाजिक व मानसिक स्थिति में परिवर्तन तो अवश्य हो रहा है परंतु जब हम इनके साथ हो रही बर्बरता, छुआछूत, भेदभाव, यौन हिंसा इत्यादि के बारे में पढ़ते हैं, तो समानता लाने वाले सामाजिक व संवैधानिक प्रयासों पर स्वयं ही प्रश्न चिन्ह लग जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि व्यवहारिक धरातल पर ऐसे कार्यक्रम चलाए जाये जिससे घरेलू कामगार महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार होने के साथ–साथ ये कार्यक्रम इन्हें इस योग्य बना सके कि वे स्वयं को भी आत्मनिर्भर बना सके तथा अपने अंदर आत्मविश्वास पैदा कर सके। घरेलू कामगार महिलाओं को समाज के मुख्यधारा से पूरी तरह जोड़ा जाए। घरेलू कामगार महिलाओं की मुक्ति के संदर्भ में बनाए गए सारे सामाजिक एवं संवैधानिक प्रावधानों को व्यवहारिक धरातल पर पहुंचाने की आज नितांत की आवश्यकता है। बड़े पैमाने पर आज एक ऐसे वैचारिक आंदोलन की आवश्यकता है जो समाज में व्याप्त पूर्वाग्रहों को दूर कर बिना किसी भेदभाव के एक समान रूप से रहने का मार्ग प्रशस्त कर सकें ।

शोध अनुभव

प्रस्तुत शोध में घरेलू कामगार महिलाओं से यौन हिंसा के प्रति स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची के कथनों द्वारा आँकड़ा एकत्रित करते समय शोधकर्ता को यह महसूस हुआ कि कुछ घरेलू कामगार महिलाओं के साथ अतीत में यौन हिंसा हुई है क्योंकि यौन हिंसा से सम्बन्धित कथनों का उत्तर देते समय उनकी हाव–भाव में परिवर्तन देखने को मिला परन्तु उनमें से किसी भी कामगार महिला ने यह स्वीकार नहीं किया कि उनके साथ कभी–भी यौन हिंसा हुई है इसका कारण सामाजिक दबाव, काम का छूट जाना (बेरोजगारी होने का डर), हो सकता है। इसीलिए घरेलू कामगार महिलाओं ने अपने प्रति हुए यौन हिंसा को प्रत्यक्ष रूप से शोधकर्ता के सम्मुख स्वीकार न किया हो। हालांकि इनमें से कुछ महिलाओं ने यह स्वीकार किया कि उनके साथ अश्लील टिप्पणी, अनुचित स्पर्श, घूरना आदि जैसी घटनाएँ हुई हैं।

❐

सन्दर्भ –

1. *Does the POSH law protect domestic workers against sexual harassment at workplace? Retrieved from https://www.ungender.in/how-you-can-help-domestic-workers-fight-sexual-abuse/ on dated 10/11/2024.*
2. *Does the POSH law protect domestic workers against sexual harassment at workplace? Retrieved from https://www.ungender.in/how-you-can-help-domestic-workers-fight-sexual-abuse/ on dated 10/11/2024.*
3. *Kumar Raj (2023), Domestic workers: Call them maids or house helk, but neither the working conditions nor the behaviour have changed- Retrieved from https: // hindi news click.in/ Domestic Workers-call-them-maid-09-house-help-but- neither-working-conditions-nor-behaviour - changed OLDes 03 Nov, 2024.*
4. *About Women Labour, Ministry of Labour & Employment, GOI Retrieved from https://labour.gov.in/ -womenlabour on dated 23/11/2024.*
5. *रिपोर्ट ऑफ द कमिटी ऑफ एक्सपर्ट्स ऑन द एप्लीकेशन ऑफ कन्वेंशन एण्ड रिकोमेडेशन (आर्टिकल 19, 22, 35 ऑफ कांस्टीट्यूशन) : जेनरल रिपोर्ट ऑफ एण्ड आब्जरवेशन कंसर्निंग पार्टिकूलर कंट्रीज रिपोर्ट 3 (पार्ट 1 I), 91वाँ सेशन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनए2003, पृ. 463*
6. *Defining domestic work, International Labour Organization, retrieved from https://www.ilo.org/ resource/81-defining-domestic-work on dated 23/11/2024.*
7. *दीपांजलि 2023, कार्योजित महिलाओं का यौन उत्पीड़न (वाराणसी जनपद के निजी क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं पर आधारित), पृ. 13 retrieved from <https://shodhganga.inflibnet.ac.in./handle/10603/547942 on dated 25/10/2024>*
8. *मार्क्स एंगेल्स 1998, कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो, मार्टिन मालिया परिचय (न्यूयार्क : पेंगुइन ग्रुप), पृ. 35, आईसबीएन 0–451–52710–0*
9. *Baker, Carnie N. , Women, Work, and Sexual Harassment: The Untold Story, Polipoint Press Publication, Benkely, United States, 2007, ISBN- 10: 097-9076305, ISBN- 13: 978-0979076302.*
10. *Enrenreich, Barbara. & Hochschild, A. R., Global Woman: Nannies, Maids, and Sex Worker in the New Economy, Metropolitan Books Publication, New York, United States, 2003, ISBN- 10: 0805074989, ISBN- 13: 978-0805074983.*
11. *Nadasen, Premila, Behind closed Doors: Domestic Workers and Sexual Harassment, Little, Brown and company, New York, U.S., 2006, ISBN- 978-0316739654.*
12. *Mackinnon, Sexual Harassment of working Women: A case of Sex Discrimination, Yale Univer sity Press Publication, New Haven, U.S., 1979, ISBN- 978-0300022995.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 44–54

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन में अस्पृश्यता का ऐतिहासिक विश्लेषण

महेश कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविधालय, जयपुर
E-mail: maheshbhaskar1@gmail.com Mob. 9414441475

सारांश

जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता की संस्था सामाजिक संरचनाएँ हैं जो भारत के सामाजिक ढांचे को प्रभावित करती हैं। जाति सामाजिक रूप से बहिष्कार करने वाली है, जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति को चिन्हित करती है, उसे श्रम के विभाजन में रखती है, जाति व्यवस्था क्रमिक असमानता के सिद्धांत को बनाए रखती है, जिसकी विशेषता नीचे से समर्पण और ऊपर से घृणा है। अस्पृश्यता निम्न सामाजिक परत को दर्शाती है, जो सामाजिक दायरे से बाहर है, लेकिन साथ ही जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदान के रूप में शामिल है। अस्पृश्यता' की जड़ जाति व्यवस्था है, जाति व्यवस्था की जड़ वर्ण और आश्रम से जुड़ा धर्म है। और वर्णाश्रम की जड़ ब्राह्मणवादी धर्म है, और ब्राह्मणवादी धर्म की जड़ अधिनायकवाद या राजनीतिक शक्ति है। अस्पृश्यता सामाजिक बुराई का एक रूप है जो भारतीय संस्कृति में विशेष सामाजिक श्रेणियों के लोगों के शोषणकारी, अपमानजनक और भेदभावपूर्ण तरीके से शोषण को बढ़ावा देती है और बनाए रखती है। अस्पृश्यता अब तक ज्ञात मानव अधीनता का सबसे बुरा उदाहरण है, और इससे मुक्ति का मार्ग निश्चित रूप से हर जगह मानव दासता का मुकाबला करने पर व्यापक प्रभाव डालेगा। डॉ. अंबेडकर ने न केवल दलितों के लिए बल्कि असमान सामाजिक व्यवस्था और शोषित वर्ग के लिए भी मानवाधिकारों के लिए एक योद्धा के रूप में काम किया, जिसमें मजदूर, किसान और महिलाएं शामिल थीं। भारत में अछूत आंदोलन बीसवीं सदी की शुरुआत में शुरू हुए। भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में इन आंदोलन ने अछूतों को राजनीतिक और सामाजिक अधिकार दिलाये। डॉ. अंबेडकर ने संविधान में सभी भारतीय नागरिकों के लिए समान अधिकारों की वकालत की।

मुख्य शब्द– अस्पृश्यता, असमानता, अछूत आंदोलन, वर्णाश्रम, दासता, समतावादी समाज

सामान्य परिचय

अम्बेडकर एक दूरदर्शी राजनेता, रचनात्मक विचारक, एक तीक्ष्ण विश्लेषक और इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन और राजनीति के एक असाधारण छात्र, उन्होंने पूरे भारत में मानवता को सामाजिक न्याय, आर्थिक अवसरों और मानवीय गरिमा से वंचित करने के खिलाफ अथक संघर्ष किया। वह स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के सिद्धांतों पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। उन्हें समाज में हर तरफ से भारी भेदभाव का सामना करना पड़ा क्योंकि महार जाति को उच्च वर्ग द्वारा ''अछूत'' के रूप में देखा जाता था।

आधुनिक भारत और हमारी वर्तमान समस्याओं को सही ढंग से समझने के लिए, अपने आस–पास यह देखना आवश्यक है कि क्या कोई ऐसा है जो किसी के द्वारा अनुचित और अमानवीय रूप से अपमानित है। दुर्भाग्य से हिंदू समाज की कुछ जातियों को अछूत माना जाता था और यह प्रथा पूरी तरह से अधार्मिक, अमानवीय और अप्रासंगिक है और हिंदू धर्मग्रंथों द्वारा समर्थित नहीं है। यह तो हम सभी जानते हैं कि अट्ठारहवीं शताब्दी के बाद से अस्पृश्यता बर्बर तरीके से प्रचलित थी और यह आज भी कई रूपों में हमारे समाज में व्याप्त है। वर्तमान भारतीय समाज का बौद्धिक वर्ग वस्तुतः दोहरी भूमिका निभाता है। सार्वजनिक स्थानों पर इनका प्रयोग यह बताने के लिए किया जाता है कि अस्पृश्यता की अवधारणा का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है और इसे समाज से सभी रूपों में समाप्त किया जाना चाहिए। लेकिन वे अपने व्यावहारिक जीवन में अलग–अलग भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, अस्पृश्यता बाहरी भाव–भंगिमा में प्रकट होने वाली चीज नहीं है, यह भीतर छिपी हुई चीज है। उनका मानना है कि छुआछूत एक सामाजिक बुराई है और कोई भी इसका समर्थन नहीं कर सकता। अस्पृश्यता का कोई वैज्ञानिक, तर्कसंगत और संवैधानिक आधार नहीं है।[1] भारत में हम जो तथाकथित अस्पृश्यता देखते हैं वह पूर्वाग्रहों पर आधारित एक सामाजिक मुद्दा है। यदि सब कुछ व्यक्तियों की गुणवत्ता की परवाह किए बिना वर्ण व्यवस्था के अनुसार निर्धारित किया जाएगा तो यह वर्तमान समाज की सबसे बड़ी भूल होगी। भारतीय समाज के लिए इससे ज्यादा अपमानजनक की बात कुछ नहीं होगी कि लोगों के एक वर्ग को उनकी बुनियादी जरूरतों से सिर्फ इसलिए वंचित किया जा रहा है क्योंकि वे विशेष जातियों से संबंधित हैं। अस्पृश्यता की अवधारणा कोई कानूनी अवधारणा नहीं है और न ही ऐसी अवधारणा है जिसे कानूनी रूप से हल किया जा सके। यह एक सामाजिक अवधारणा है जिसे राजनीतिक रूप से हल नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत, जाति व्यवस्था की अवधारणा का राजनीतिकरण किया गया है। इस प्रकार, भारत की राजनीतिक व्यवस्था इस समस्या को हल करने के बजाय वास्तव में इसे लटकाए रखती है। ऐसा पहले भी होता था और वर्तमान में भी यही जारी है।[2]

शोध पत्र का उद्देश्य

शोध पत्र मुख्य उद्देश्य समाज में प्रचलित असमानता, अस्पृश्यता, दलित और वंचित वर्गों के खिलाफ भेदभाव को समझना है। यह समाज में अस्पृश्यता और जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए और एक समतावादी समाज बनाने के लिए अंबेडकर के प्रयास के बारे में प्रकाश डालता है। अस्पृश्यता के उन्मूलन पर अंबेडकर के विचारों का विश्लेषण करता है।

अध्ययन की अनुसंधान प्रविधि

यह अनुसंधान आलेख अंबेडकर के दर्शन से संबंधित माध्यमिक स्रोतों, संबंधित पुस्तकों, पत्रिकाओं, पत्रिकाओं, शोध लेखों, समाचार पत्रों और थीसिस पर निर्भर हैं जिनका उपयोग इस शोध पत्र को लिखने में किया गया है। इस शोध कार्य में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और व्याख्यात्मक अनुभवमूलक विधियों का उपयोग किया गया है। यह पत्र अस्पृश्यता की उत्पति पर अंबेडकर के विचारों को समझने एंव अंबेडकर के कार्यों के माध्यम से अस्पृश्यता के उन्मूलन के बारे में जानने में सहायक होगा

अस्पृश्यता की उत्पति के बारे में अंबेडकर का दृष्टिकोण

अंबेडकर अस्पृश्यता की धारणा को लेकर धर्म का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं और धर्म के अध्यात्मवादी स्वरूप की आलोचना करते हैं। इस संबंध में, उन्होंने हिंदू धर्म को खारिज कर दिया। अम्बेडकर के अनुसार जब तक हिंदू धर्म एक धर्म के रूप में रहेगा, समाज में अस्पृश्यता बनी रहेगी। अंबेडकर के विपरीत, गांधी हिंदू धर्म और हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था के भी पक्षधर हैं। जहां तक अस्पृश्यता की अवधारणा का सवाल है, गांधी अंबेडकर से सहमत नहीं थे। अब प्रश्न यह है कि अस्पृश्यता का आधार क्या है? क्या यह कुछ ऐसा है जो वैज्ञानिक औचित्य के साथ चलता है? यह आज भी समाज में क्यों कायम है? क्या यह कुछ ऐसा है जिसे वैध बनाया जा सकता है? कई अन्य प्रश्नों के साथ–साथ ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर यहां विचार करने की आवश्यकता है। वस्तुतः अस्प श्यता एक सामाजिक प्रथा है और धार्मिक मान्यता धार्मिक निर्णय के नाम से चलती है। प्रत्येक समाज में धर्म ही आधार है। हिन्दू धर्म में कुछ कठोर नियम हैं जो वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं। वास्तव में, प्राचीन भारत में प्रमाणित वर्ण व्यवस्था बाद में उस बड़े ढांचे के रूप में कार्य करने लगी जिसके भीतर जाति समाज का गठन हुआ। जाति व्यवस्था का सबसे पहला उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है, माना जाता है कि इसका विकास 1500–800 ईसा पूर्व के बीच हुआ था, जहां इसे वर्ण व्यवस्था कहा गया था। जाति व्यवस्था के अनुसार, किसी व्यक्ति का स्थान, विशे ाधिकार और जिम्मेदारियाँ उस समूह द्वारा निर्धारित की जाती हैं जिसमें वह पैदा हुआ था। इसने समाज को चार वर्णों में वर्गीकृत कियाः ऋग्वेद से प्रमाणित होता है कि मानव जाति की उत्पत्ति चार वर्ण व्यवस्थाओं का परिणाम थी। ऐसा कहा जाता है कि सृष्टि के समय, ब्राह्मण पुरुष (आदिमानव) के मुख से, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य उसकी जांघों से और शूद्र उसके पैरों से पैदा हुए थे। वास्तव में ऋग्वेद ब्राह्मणवाद का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसके माध्यम से वर्ण व्यवस्था को सामाजिक रूप से वैध बनाया गया है। इसलिए जब हम अस्पृश्यता की उत्पत्ति की खोज करते हैं तो हम पाते हैं कि यह सामान्य रूप से वेद थे और विशेष रूप से ऋग्वेद थे, जो वास्तव में वर्णों के नाम पर विभिन्न हिंदुओं के बीच असमानता की पहेलियों की वकालत करते थे।[3]

फिर भी, अस्पृश्यता की उत्पत्ति का विश्लेषण और औचित्य सिद्ध करने के लिए प्राचीन काल के धार्मिक ग्रंथों, यात्रियों के वृत्तांत आदि का परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। सृष्टि के क्रम से सबसे बाद में शूद्र का जन्म होता है। वे हिंदू व्यवस्था में सबसे निचले स्तर के थे। हालाँकि, ऋग्वेद के अनुसार अछूत वर्ण व्यवस्था के बाहर है। वेदों के अनुसार उच्चतम वर्ण व्यवस्था के धारक के रूप में ब्राह्मणों ने पुजारी और वेदों के शिक्षक का पद लेने का अधिकार

अर्जित किया, वर्ण व्यवस्था के दूसरे अनुयायी क्षत्रियों ने राजनीति के साथ–साथ सेना की जिम्मेदारी भी उठाई, वैश्य कृषकों, चरवाहों और व्यापारियों के पद पर आसीन हुए और अंततः तथाकथित शूद्र नौकरों के पद पर आसीन हुए। वैदिक प्रणालियों के अनुसार पहले तीन वर्ण आर्य समाज के नियमित सदस्य थे और द्विजाति (दो बार जन्मे) के रूप में जाने जाते थे। उन्हें ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित धार्मिक कार्यशाला में भाग लेने की अनुमति दी गई। दूसरी ओर, शूद्र, चौथी जाति होने के कारण, एकजाति के रूप में द्विजाति से अलग कर दिए गए थे। द्विजाति और एकजाति के बीच अंतर यह है कि जो लोग द्विजाति से संबंधित हैं, उन्होंने दूसरे जन्म का अधिकार अर्जित किया है – एक अपनी मां के गर्भ से और दूसरा जन्म वैदिक अध्ययन में दीक्षा समारोह था जिसे उपनयन के रूप में जाना जाता है जो उन्होंने युवा होने पर किया था। इसके विपरीत, एकजाति का जन्म उनकी माताओं से केवल एक बार हुआ था। उनके पास उपनयन करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। इन चार वर्णों या विशेषकर शूद्रों से नीचे के वर्णों को छोड़कर, निम्न वर्ग के लोगों का एक वर्ग अस्तित्व में था, जिन्हें चांडाल या अछूत कहा जाता था।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि तथाकथित वैदिक प्रणालियों ने वास्तव में प्राचीन भारत में सामाजिक भेदभाव को जन्म दिया और यह प्रवृत्ति मध्यकाल तक फैल गई और यहां तक ''कि वर्तमान समाज में भी कायम रही। किसी व्यक्ति का वर्ण या जाति जन्म से निर्धारित नहीं होती है लेकिन मनोवैज्ञानिक झुकाव और पेशे के अनुसार निर्धारित होती है। अतीत में अछूतों की पहचान शारीरिक रूप से की जाती थी क्योंकि उस समय अछूतों पर उनकी पोषाक, भोजन, कपड़े आदि के संबंध में कुछ शारीरिक प्रतिबंध लगाए गए थे।[4] समान रूप से, उच्च जाति अस्पृश्यता के पक्ष में इतनी मुखर थी। हालाँकि, जहाँ तक अस्पृश्यता का सवाल है, समय के साथ हम वहाँ एक भारी बदलाव देखते हैं। दुनिया के अन्य हिस्सों में भी ऐसा ही हुआ है. यह सभ्यता का आशीर्वाद है. इस प्रकार, अधिकांश भारतीय राज्यों में अस्पृश्यता बर्बर रूप में दिखाई नहीं देती है। किसी अछूत को बस या ट्रेन से यात्रा करने में कोई कठिनाई नहीं होती। उसे उच्च जाति के अन्य लोगों के साथ भोजन करने में कोई समस्या नहीं होगी। ये अच्छे संकेत हैं. लेकिन साथ ही जब हमें पता चलता है कि कुछ ऐसे समाज भी हैं जहां अस्पृश्यता चिंता का कारण है, तो हम दुनिया के सबसे बौद्धिक प्रतिनिधि के रूप में खुद को अपमानित महसूस करते हैं। अस्पृश्यता केवल भारत में प्रचलित चीज नहीं है। ऐतिहासिक रूप से, अस्प श्यता विश्व में अन्यत्र प्रचलित थी। अस्पृश्यता दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका, बांग्लादेश और अधिकांश देशों में है जहां धर्म व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति निर्धारित करने की कुंजी है। हालाँकि, भारत में अछूतों का भाग्य दुनिया के अन्य हिस्सों की तुलना में दयनीय था। वास्तव में, जहां तक अस्पृश्यता का सवाल है, भारत सबसे बुरी तरह प्रभावित देश था। यह कल्पना की गई है कि अछूत अपने पिछले जन्म के कर्मों के कारण अछूत ही रहेंगे। विडम्बना यह है कि हिन्दू और अछूत दोनों ही इस विश्वास में समाजीकृत हैं। ऐसा विश्वास कहां से आता है? क्या यह हिंदू धर्म में मौजूद है? या क्या यह कुछ ऐसा है जो तथाकथित प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा डाला गया है? अम्बेडकर के अनुसार हिंदू धर्म, जिससे वह संबंधित हैं, मनुष्यों के बीच असमानता को बढ़ावा देने का दोषी है। हम उचित समय पर मनुस्मृति के दृष्टिकोण की जांच करते हैं। ऐसी बहुत सी टिप्पणियाँ हैं जो वास्तव में जातियों के बीच भारी मात्रा में अविश्वास और असमानता पैदा

करेंगी। अछूतों की सामाजिक स्थिति दयनीय थी, वे मूलतः अधिकारहीन थे। एक अछूत को किसी भी अधिकार का आनंद लिए बिना कई कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है।[5]

अस्पृश्यता उपनिवेशवाद को भी पीछे छोड़ देती है। उपनिवेशवाद के दौरान इसे दूर करने के लिए एक आंदोलन बनाया गया था, लेकिन बी.आर. अम्बेडकर के आगमन से पहले अस्पृश्यता के खिलाफ कोई आंदोलन नहीं था। यह अम्बेडकर ही थे जिन्होंने वास्तव में अस्पृश्यता का विरोध और विद्रोह किया था। अस्पृश्यता की संख्या कम नहीं है, लाखों लोग अछूत माने जाते थे। सवाल यह है कि उनका विरोध क्यों नहीं किया गया? क्या यह सच है कि वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं? उन्होंने केवल इसलिए विरोध नहीं किया क्योंकि कुछ सामाजिक और धार्मिक बाधाओं के कारण उन्हें किसी न किसी तरह यह विश्वास हो गया था कि वे अछूत हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की दृष्टि से शोषण के औपनिवेशिक स्वरूप का विद्रोह किया गया तथा कोई सामाजिक एवं धार्मिक बाधाएँ नहीं थीं। लेकिन तथाकथित अछूत आर्थिक रूप से कमजोर, शैक्षिक रूप से अशिक्षित और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े थे। उन्हें कुछ भी कहने का अधिकार नहीं था। उन्हें यह मानने के लिए मजबूर किया गया कि वे अछूत हैं। इस प्रकार, अस्पृश्यता की अवधारणा कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे संसद में विधेयक पारित करके खत्म किया जा सके। एक सामाजिक और धार्मिक मुद्दे के रूप में, ऐसी समस्या को केवल हिंदू धर्म में क्रांतिकारी परिवर्तन लागू करके ही दूर किया जा सकता है। अम्बेडकर जीवन भर ऐसा करने में असफल रहे। यहां तक घ्घकि गांधी भी हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था को बदलने के लिए अंबेडकर से सहमत नहीं थे। यह तो समय ही बताएगा कि हिंदू समाज से अस्पृश्यता दूर हो सकेगी या नहीं।[6]

अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु अम्बेडकर के प्रयासः

छुआछूत और जाति व्यवस्था के खिलाफ अपना संघर्ष शुरू करने से पहले अंबेडकर ने हिंदू समाज का विश्लेषण किया। वह महाराष्ट्र के महार समुदाय (निचली जाति) से थे। बचपन से ही वह हिंदू उच्च जातियों से छुआछूत का भी शिकार रहे हैं। लेकिन वह इसके आगे नहीं झुके और अपनी शिक्षा जारी रखी। अमेरिका से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद वे 1917 में भारत वापस आये। सामाजिक जागृति के परिणामस्वरूप और उदार विचारों के प्रभाव में, उन्होंने प्रचलित अस्पृश्यता, धर्म से पैदा हुई बीमार भावनाओं, असहनीय रीति–रिवाजों की तीखी आलोचना करके समाज में एक नए युग की शुरुआत की। डॉ. अम्बेडकर तीन महापुरुषों को अपना गुरु मानते थे। पहले कबीर, दूसरे फुले और तीसरे बुद्ध थे । कबीर उन्हें भक्तिपंथ में ले गए, फुले ने उन्हें ब्राह्मणवाद विरोधी और जनता की भलाई, उनकी शिक्षा और आर्थिक उत्थान के लिए प्रयास करने के लिए प्रेरित किया और बुद्ध ने उन्हें मानसिक और आध्यात्मिक संतुष्टि और सामूहिक धर्मांतरण के रास्ते का सहारा लेकर अछूतों की मुक्ति के लिए एक सामाजिक मार्ग दिया।[7]

अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था को तर्कहीन और अत्याचारी बताया, लेकिन सबसे ऊपर उन्होंने ब्राह्मणवाद पर हमला किया। उन्होंने ब्राह्मणवाद के सिद्धांतों को इस प्रकार गिनायाः "विभिन्न वर्गों के बीच श्रेणीबद्ध असमानत, शूद्रों और अछूतों का पूर्ण निशस्त्रीकरण, शूद्रों और अछूतों की शिक्षा पर पूर्ण प्रतिबंध शूद्रों और अछूतों के सत्ता और सत्ता के स्थानों पर कब्जा करने

पर प्रतिबंध, शूद्रों और अछूतों की संपत्ति अर्जित करने पर प्रतिबंध और महिलाओं की पूर्ण अधीनता और दमन।[8]

सामाजिक सुधार आंदोलनः

हिंदू समाज से असमानता और अस्पृश्यता को दूर करने के लिए, उन्होंने समाज में जागरूकता पैदा करने के लिए सामाजिक सुधार आंदोलन शुरू किया कि सभी भगवान के बच्चे हैं और हर कोई जन्म से एक समान इंसान है। सामाजिक सुधार के अपने पहले चरण में आंदोलन के दौरान, डॉ. अम्बेकर ने सोचा कि तर्कसंगत तर्क से और उच्च जाति के हिंदू विश्वास और उच्च जाति के हिंदू मन की सामाजिक रीति–रिवाजों की मूर्खताओं को दूर करके सामान्य रूप से सामाजिक सुधारों के पक्ष में परिवर्तित किया जा सकता है। इसके पीछे तर्क सरल था. हिंदू गलत आस्था के शिकार हैं परिणामस्वरूप, वे तर्कहीन सामाजिक रीति–रिवाजों के गुलाम बन गए हैं। इन तर्कहीन सामाजिक रीति–रिवाजों में से एक है अस्प श्यता। इसे और साथ ही हिंदुओं की अन्य हानिकारक सामाजिक धारणाओं को मिटाने के लिए, उनके मन को गलत आस्था और तर्कहीन मान्यताओं के बंधन से मुक्त करना आवश्यक है। तर्कसंगत प्रवचन और तर्क–वितर्क से, उनकी अज्ञानता को मिटाया जा सकता है, जिससे वे स्वेच्छा से बंधन को त्याग देते हैं। उनका मानना घ्ध्था कि एक बार जब मंदिरों के दरवाजे अछूत जातियों के लिए खोल दिए जाएंगे, तो वर्णाश्रम धर्म और जाति व्यवस्था के तर्क की पूरी ताकत खत्म हो जाएगी।[9]

महाड़ सत्याग्रह दलित वर्ग के उत्थान के लिए एक महत्वपूर्ण आंदोलन था, जिसका उद्देश्य दलितों को समान अधिकार और जातिगत भेदभाव से मुक्ति दिलाना था। इस आंदोलन का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। (ओमवेट,1994: 88) दलित वर्गों या अछूतों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुई। यह दलितों को सार्वजनिक चवदार तालाब से पानी पीने और उपयोग करने का अधिकार दिलाने के लिए 20 मार्च 1927 को महाराष्ट्र राज्य के रायगढ़ जिले में भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में एक प्रभावी सत्याग्रह था। इस दिन को भारत में सामाजिक सशक्तिकरण दिवस के रूप में मनाया जाता है।

दलित आंदोलन के इतिहास में 1926–27 का समय बहुत महत्वपूर्ण है। यह संगठित कार्यवाही या संघर्ष का मार्ग था। बॉम्बे विधान परिषद में, "एस.के. बोले ने एक प्रस्ताव के माध्यम से अछूतों के लिए सार्वजनिक जल स्रोतों, कुओं, सरकार द्वारा निर्मित धर्मशालाओं, सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों और औषधालयों के उपयोग की मांग की। 11 सितम्बर 1923 के सरकारी आदेश के अनुसार उपरोक्त प्रस्ताव लागू कर दिया गया। हालाँकि, स्थानीय निकायों और नगर निगम बोर्डों ने इस आदेश की अवहेलना की और दलितों को नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया। उपरोक्त प्रस्ताव के संदर्भ में, 'महाड़ नगर बोर्ड' ने सभी के उपयोग के लिए महाड़ तालाब, जिसे चबदार तालाब के नाम से जाना जाता था, खोल दिया। लेकिन सवर्ण हिंदू जातियाँ इस व्यवस्था से नाराज थे। इस पर 19 और 20 मार्च, 1927 को 10,000 प्रतिनिधियों की उपस्थिति में दलित जातियों की दो दिवसीय बैठक आयोजित की गई, जिसमें डॉ. अम्बेडकर ने उनसे अपने मौलिक अधिकारों के लिए आगे आने का आह्वान किया। आत्म–सहयोग, आत्म–सम्मान और आत्म–ज्ञान से ही वे आगे बढ़ सकेंगे। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि उन्हें शिक्षित होना चाहिए और उच्च नौकरियाँ प्राप्त करनी चाहिए।[10]

इस उद्देश्य से, कुछ अवसरों पर, अम्बेडकर ने हिंदू मंदिरों में जबरन प्रवेश करने के कई प्रयास किए। सार्वजनिक गणपति उत्सव में भाग लेने का अधिकार कम से कम एक अवसर पर सुरक्षित किया गया था। अम्बेडकर और उनके अनुयायियों ने पुनर्जन्म का प्रतीक पवित्र धागा धारण किया। अमरावती में मंदिर में प्रवेश के असफल प्रयास के बाद 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में बड़े पैमाने पर सत्याग्रह हुआ। हालाँकि अम्बेडकर स्वयं मूर्ति पूजा में अविश्वास रखते थे, लेकिन मंदिर प्रवेश का कार्यक्रम धार्मिक उद्देश्यों से अधिक सामाजिक सुधार के लिए था। डॉ. अम्बेडकर के इन प्रयासों को आम तौर पर जाति के हिंदुओं, विशेषकर पुजारियों की ओर से कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। ये प्रयास विफल रहे और जाति–हिंदू दिमाग पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं डाल सके।

शैक्षिक उन्नयन के प्रयास

1930 के बाद उन्होंने इन प्रयासों को छोड़ दिया और अपना ध्यान समुदाय के शैक्षिक मानक और उनकी राजनीतिक स्थिति में सुधार पर केंद्रित किया। अंबेडकर का मानना था कि हमें अपने उद्धार के लिए अपनी पत्रिका की आवश्यकता है, जिसके माध्यम से दलितों की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने दलित आंदोलन को एक नई दिशा देने और बहिष्कृत समाज की सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक आवाज उठाने के लिए 1927 में 'बहिष्कृत भारत' पत्रिका निकाली। इंग्लैंड से लौटकर उन्होंने अपने जीवन के उद्देश्य को दलितों के लिए समपित कर यह युग परिवर्तनकारी कार्य किया। इसी सन्दर्भ में 14 मार्च, 1927 को महाड में ''कोलाबा जिला बहिष्कृत परिषद'' की स्थापना की गयी जिसके तत्वावधान में सामाजिक आन्दोलन ने अप्रैल 1927 से 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन प्रारम्भ किया।[11] इसके संपादन का दायित्व उन्होंने स्वयं संभाला। उन्होंने पूरे महाराष्ट्र (तत्कालीन बॉम्बे प्रेसीडेंसी) और महाराष्ट्र से जुड़े प्रांत में तथाकथित ब्राह्मण गौरव को चूर–चूर कर दिया। अछूत जातियों के शोषण और अत्याचारों, उनके मौलिक अधिकारों से इनकार और सामाजिक प्रतिबंधों के खिलाफ आंदोलन, 'बहिष्कृत भारत' वास्तव में लाखों मराठी भाषी दलित–अछूतों की आवाज बन गया। उन्होंने इसे लगभग दो वर्षों तक नियमित रूप से प्रकाशित करना जारी रखा। इस बीच, बॉम्बे विधान सभा के सदस्य के रूप में, उन्होंने दलितों की दयनीय स्थिति और हिंदू धर्म की कमजोरियों, अस्पृश्यता की प्रथा और जाति व्यवस्था पर हमला किया।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा के उद्देश्य

अम्बेडकर ने अछूतों के उत्थान के लिए 20 जुलाई 1924 को बॉम्बे में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इसका कार्य बम्बई तक ही सीमित था, इसके उद्देश्य थेः

1 वंचितों के लिए शिक्षा के प्रसार हेतु छात्रावासों की स्थापना करना,
2 सांस्कृतिक विकास हेतु पठन–पाठन एवं आध्यात्मिक केन्द्र प्रारम्भ करना,
3 अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए एक प्रमुख आंदोलन शुरू करना
4 अछूतों का हृदय परिवर्तन करना
5 उच्च वर्ग की बुरी परम्पराओं को दूर करना।[12]

अम्बेडकर मानव धर्म के पक्षधर थे। यह जीवन का सर्वोच्च अधिकार था कि पिछड़े और दलित वर्गों को राजनीतिक अधिकारों के साथ–साथ सामाजिक अधिकार भी मिलें। उन्हें

कमजोर वर्गों के प्रति सहानुभूति थी और वे उनके दुखों और कष्टों को दूर करने के लिए तैयार थे। उन्होंने वर्ष 1920 में दलितों के विचारों को स्पष्ट करने के लिए कोल्हापुर के महाराजा की मदद से ''मूक नाइक साप्ताहिक पत्रिका'' शुरू की। उन्होंने बॉम्बे को ''अमित्यजा संघ'' के रूप में स्थापित किया। और इसका मुख्य उद्देश्य हर तरह से वंचितों की सेवा करना था। बंबई में उन्होंने ''समता समाज संघ'' शुरू किया और इसका मुख्य कार्य अछूतों के नागरिक अधिकारों की रक्षा करना था।[13] इसके अलावा दलित वर्ग के अधिकारों का समर्थन करने के लिए अम्बेडकर ने कई पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू किया–जैसे बहिष्कृत भारत, समता, जनता, प्रबुद्ध भारत, आदि।[14]

अम्बेडकर ने वीरेश्वर पंडाल से अछूतों को संबोधित किया और कहाः "आपको अपना अधिकार स्थापित करना होगा। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आप में और मवेशियों में कोई अंतर नहीं रहेगा।" उन्होंने तालाब का पानी पिया और बंधन हटा दिए और कानूनी आधार पर अछूतों को पानी का उपयोग करने का अधिकार दिया गया और तालाब को सार्वजनिक तालाब घोषित कर दिया गया।[15]

अम्बेडकर ने अछूतों की आत्म–सहायता, आत्म–उत्थान और सम्मान के उत्थान के लिए अछूतों को संघर्ष की दिशा में प्रेरित किया, जो अछूतों के बीच सामाजिक क्रांति के लिए आवश्यक थे। उन्होंने अपने भाइयों को चेतावनी देते हुए कहा, ''खोए हुए अधिकार कभी भीख मांगने और कब्जा करने वालों के विवेक की अपील करने से नहीं मिलते, बल्कि अथक संघर्ष से मिलते हैं, बकरियों का इस्तेमाल बलि चढ़ाने और शेरों के लिए किया जाता है।''[16] अम्बेडकर के व्याख्यानों और सभाओं ने दलित वर्गों पर अमिट प्रभाव डाला और वे अपनी गुलामी के खिलाफ उठने के लिए तैयार हो गये और उन्हें बहुत प्रतिबंधो को हटा दिया।[17]

राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग

अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में दलित वर्गों का भी प्रतिनिधित्व किया, जहां उन्होंने न केवल जाति व्यवस्था बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त व्यवस्थित असमानता की भी आलोचना की और सभी के लिए सामाजिक न्याय के विचार को बरकरार रखा। उन्होंने सम्मेलन के समक्ष विधानसभाओं और सार्वजनिक सेवाओं में दलित वर्गों और आदिवासियों के विशेष प्रतिनिधित्व की मांग रखी, ताकि वे अपनी स्थिति मजबूत कर सकें। वे इन सुरक्षात्मक उपायों की आवश्यकता और सामाजिक क्षमता से भली–भांति परिचित थे और उनका मानना था कि ये उपाय देश की आजादी के बाद भी भारतीय समाज में बदलाव ला सकते हैं और सामाजिक न्याय स्थापित कर सकते हैं। उनकी मांग के आधार पर, ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने 1932 के सांप्रदायिक पुरस्कार में दलित वर्गों और अन्य अल्पसंख्यकों के लिए एक अलग निर्वाचन क्षेत्र प्रदान किया।

अंबेडकर द्वारा वंचितों के लिए अधिकारों की मांग

1. समान अधिकार
2. विभेदक व्यवहार से बचाव
3. सरकार में आरक्षण. सेवाएं
4. विधानसभा सीटों पर भी आरक्षण

5. उनके विकास का एक अलग विभाग
6. जुर्माना सामाजिक बहिष्कार की व्यवस्था
7 समाज को शोषण से बचाने पर ध्यान

अंबेडकर मनुस्मृति के बहुत आलोचक थे क्योंकि इसने जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता की नींव रखी थी। भारत में जातिगत भेदभाव के खिलाफ विरोध शुरू करने के लिए अंबेडकर और उनके हजारों अनुयायियों ने मनुस्मृति की प्रतियां जलाईं और नई आचरण संहिता की मांग की। 25 दिसंबर को 'मनुस्मृति दहन दिवस' के रूप में मनाना शुरू किया।[18] डॉ. अम्बेडकर ने अपना सारा समय और ऊर्जा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असमानता को दूर करने में समर्पित कर दिया सभी व्यक्तियों के लिए स्थिति की समानता और सभी के लिए समान अवसर बनाना, और व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखना।

संवैधानिक संरक्षण के प्रावधान

अम्बेडकर बहुत भाग्यशाली थे क्योंकि उन्हें भारतीय संविधान के वास्तुकार के रूप में काम करने का अवसर मिला। उन्होंने भारत की संविधान सभा में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, दलितों को भारतीय संविधान के तहत विशेष सुरक्षा और प्रावधान दिए गए हैं। ये सुरक्षा उनके विकास, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और आरक्षण लाभों के लिए भेदभाव के खिलाफ गारंटी देती है। उन्होंने एक ऐसा तंत्र स्थापित करने का प्रयास किया जिससे निचले वर्ग के लोगों के उत्थान में मदद मिलेगी। भारतीय संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने भारतीय समाज की गतिशीलता के लिए कई प्रावधान संविधान में डाले। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था के विनाश के बाद भारतीय समाज की असमानताओं, अपमान और अस्पृश्यता को दूर किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से अस्पृश्यता उन्मूलन से संबंधित प्रावधानों को मौलिक अधिकारों के अध्याय में रखा गया। भारतीय संविधान के समानता के अधिकार के तहत, अनुच्छेद 14 'कानूनों के समक्ष समानता और समान सुरक्षा' को बढ़ावा देता है, अनुच्छेद 15 ने जाति के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित किया गया है' अनुच्छेद 16 में 'जाति के आधार पर सार्वजनिक रोजगार में भेदभाव को वर्जित किया है' अनुच्छेद 17 में लिखा है, 'अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है और किसी भी रूप में इसका अभ्यास निषिद्ध है। अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी भी निर्योग्यता को लागू करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा। अनुच्छेद 35 भी अनुच्छेद 17 के साथ आता है और संसद को अस्पृश्यता का पालन करने के लिए दंड निर्धारित करने वाला कानून बनाने का अधिकार देता है। इसके अलावा, अनुच्छेद 46, द्वारा 'अनुसूचित जाति की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विशेष सुविधाएं प्रदान की गई हैं।' अनुच्छेद 330, 332, और 335 द्वारा 'संसद, राज्य विधानमंडल और उनके लिए सार्वजनिक नियुक्तियों में सीटों का आरक्षण सुरक्षित किया गया है।' अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना अनुच्छेद 338 द्वारा की गई है। संविधान या किसी अन्य कानून के तहत अनुसूचित जाति के लिए उल्लिखित सुरक्षा की निगरानी करना आयोग की जिम्मेदारी है। इसके अलावा, शिकायतों की जांच करने और भाग लेने के दौरान इसके पास एक सिविल कोर्ट के सभी अधिकार हैं।

अनुच्छेद 340 के अनुसार, राष्ट्रपति के पास वंचित वर्गों की स्थितियों और उनके सामने आने वाली चुनौतियों को देखने और उनकी स्थिति में सुधार करने के तरीके पेश करने के लिए एक समिति बनाने का अधिकार है।[19]

भारतीय संविधान में इन प्रावधानों को शामिल करने से यह साबित होता है कि संविधान सभा ने ऐसी कुप्रथाओं के उन्मूलन पर बहुत महत्व दिया। इस तरह, उन्होंने सभी के लिए सामाजिक न्याय और सम्मान सुरक्षित करने का प्रयास किया, जिससे भारतीय समाज का एक बड़ा वर्ग लंबे समय से वंचित था। और यह काफी हद तक समाज के दलित और वंचित वर्ग के उत्थान के लिए डॉ. अम्बेडकर के निरंतर संघर्ष के कारण संभव हुआ। भारतीय संविधान के निर्माता और दलित अधिकारों के चैंपियन के रूप में डॉ. अंबेडकर के योगदान के बारे में संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा थाः "सभापति की कुर्सी पर बैठकर और दिन–प्रतिदिन की कार्यवाही को देखते हुए, मुझे एहसास हुआ है प्रारूप समिति के सदस्य और विशेष रूप से इसके अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने अपने खराब स्वास्थ्य के बावजूद जिस उत्साह और निष्ठा से काम किया है, उतना कोई और नहीं कर सकता था। हम कभी भी कोई ऐसा निर्णय नहीं ले सके जो इतना सही था या हो सकता था जब हमने उन्हें मसौदा समिति में रखा और उन्हें इसका अध्यक्ष बनाया। उन्होंने न केवल अपने चयन को सही ठहराया है, बल्कि जो काम उन्होंने किया है, उसमें और भी चमक ला दी है।"[20]

निष्कर्ष

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार भारतीय समाज में पारंपरिक जाति व्यवस्था ने वर्ग भेदभाव, अस्पृश्यता और असमानताओं को जन्म दिया, जिसके कारण समाज लगातार पतन की ओर बढ़ता गया। जब तक समाज में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक या अन्य आधारों पर असमानता रहेगी, अंबेडकर के विचारों की प्रासंगिकता भी बनी रहेगी। उनका दृढ़ विश्वास था कि जिस समाज में सामाजिक चेतना नहीं है और जो स्वयं को समसामयिक परिवर्तनों के अनुरूप ढालने में सक्षम नहीं है, वह कभी प्रगति नहीं कर सकता। विभिन्न जाति–विरोधी सामाजिक आंदोलनों के बावजूद, हिंदू समाज में जाति व्यवस्था आज भी कायम है, क्योंकि इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि किसी भी जाति समूह के लिए इसकी मजबूत पकड़ से बच पाना आसान नहीं है। यहां तक कि अधिकांश बुद्धिजीवी जिनमें खुद को जाति व्यवस्था का दुश्मन घोषित करते हैं, अक्सर पूर्वाग्रह से पूरी तरह मुक्त नहीं होते हैं, और जानबूझकर या अनजाने में वे इस तरह से कार्य करते हैं जिससे जाति व्यवस्था को एक नया जीवन मिलता है। विरासत में मिली आदत के बल पर और किसी व्यक्ति को दिए गए प्रशिक्षण के कारण, वह जाति समूह के प्रति गहरी निष्ठा महसूस करता है। समाज से बहिष्कृत लोगों के उत्थान के लिए डॉ. अम्बेडकर के योगदान के संदर्भ में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि जाति व्यवस्था के दुष्परिणामों और भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों से उत्पन्न सामाजिक असमानताओं से संघर्ष करते हुए भी उन्होंने अपना अधिकांश समय अध्ययन और लेखन कार्य में बिताया। डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पहलों, भाषणों और लेखों के माध्यम से दलित लोगों के उत्थान के आधार पर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष किया। भारतीय समाज में सभी सामाजिक असमानताओं की जड़ें काटने के लिए उन्होंने शिक्षा को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। उनके प्रयास के तहत संविधान में मानवाधिकार, महिला अधिकार, दलित लोगों के लिए विशेष अधिकार और सामाजिक न्याय के कई प्रावधान शामिल किये गये।

❐

सन्दर्भ –

1. अंबेडकर, बी. आर. (2020), बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड 1 (12वा संस्करण), डॉक्टर अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नईदिल्ली।
2. नागर, पुरूषोतम (2013), आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन (9वा संस्करण), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ. 679
3. वर्मा, एस. आर. (2011) भरतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक सेंटर, जयपुर पृ. 516
4. वही पृ.520
5. अंबेडकर, बी. आर. (2020), बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड 9 (12वा संस्करण), डॉक्टर अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नईदिल्ली।
6. नागर, पुरूषोतम (2013), आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन (9वा संस्करण), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ. 696
7. कुबेर, डब्लू. एन. (2017), अंबेडकर ए क्रिटीकल स्टडी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली, पृ. 54
8. वही पृ. 51
9. निकम, एस.(1998),डेस्टीनी आफ अनटचेबलस इन इंडिया, दीप एंड दीप पब्लिकेशन प्रा.लि.,नईदिल्ली,पृ.43
10. अंबेडकर, बी. आर. (2020), हु वर शुद्र हाउ दे बीकम फोर्थ वर्णा इन इंडो आर्यन सोसाइटी, सम्यक प्रकाशन, नईदिल्ली, पृ. 52
11. त्यागी, रूची (2010), भारतीय राजनीतिक चिंतन (5वा संस्करण), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली।
12. कौशल्यायन, बी. ए. (2006), यदि बाबा ना होते, सम्यक प्रकाशन, नईदिल्ली, पृ 38
13. बक्शी, एस. आर. (2002), बी. आर. अंबेडकर हिज पॉलिटीकल एंड सोशल आइडियोलोजी, दीप एंड दीप पब्लिकेशन प्रा. लि., नईदिल्ली, पृ.199
14. वर्मा, एस. आर. (2011) भरतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक सेंटर, जयपुर पृ. 525
15. कौशल्यायन, बी. ए. (2006), यदि बाबा ना होते, सम्यक प्रकाशन, नईदिल्ली, पृ.45
16. कीर, धनंजय (2022), डॉक्टर बाबा साहब अंबेडकर जीवन चरित्र (दूसरा संस्करण),(गजानन सुर्वे) पॉपुलर प्रकाशन प्रा लि., मुंबई पृ., 82
17. जाटव, डी. आर. (2017), बी. आर. अंबेडकर व्यक्तित्व एंव कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर, पृ.113
18. मकवाना, के. (2020), अंबेडकर जीवन दर्शन, प्रभात प्रकाशन, नईदिल्ली, पृ. 63
19. भारत का संविधान (2021) विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली पृ. 6–9
20. संविधान सभा वाद–विवाद खंड 11 (2), 2015 लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 55–61

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

आदिवासी धर्म–संस्कृति के सरंक्षक गोंड कलाकारों की विविध लोककलाएं

डॉ. अर्चना रानी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, ड्राइंग एवं पेण्टिंग विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पीजी) कॉलिज, मेरठ
E-mail: drarchana.art@gmail.com Mob. 09410273625

सारांश

किसी भी राष्ट्र की कला उस स्थान विशेष के धर्म, सभ्यता व संस्कृति का मिला–जुला रूप होती है। ऐसी लोक कला मध्य प्रदेश के मण्डला–डिण्डौरी जनपद में विकसित हुई, जो गोंड कला कहलायी। बहुरंगी आभा से परिपूर्ण गोंड कला ने अपनी सादगीपूर्ण सुन्दर कलाकृतियों से भारतीय लोककला को विशिष्ट पहचान प्रदान की है। भारत की लोककलाओं में संस्कृति एवं परम्पराओं का विस्तृत रूप दिखाई देता है जो भारतीय कला का मूल है, उसकी आत्मा है। भारत के हर क्षेत्र में लोक कलाओं का विस्तार देखा जा सकता है। ये लोककलाएँ जन–जन के घर आंगन से उठकर विभवपटल पर भारतीयता की अमिट छाप छोड़े हुए है। ऐसी ही लोक कला मध्यप्रदेश के छोटे से गांव पाटनगढ़ में विकसित हो अपनी संस्कृति एवं मूल्यों का प्रसार देश–विदेश के विभिन्न भागों में कर रही है। वह गोंड कला किसी परिचय की मोहताज नही है। यह कला गोंड परम्पराओं, संस्कारों, रीति–रिवाज की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में उभर कर आयी है। गोंड आदिवासी समाज के संस्कारों का जीवन्त रूप हमारे समक्ष ये कलाकृतियाँ प्रस्तुत करती है। इस कला को सैंकड़ों कलाकार ने एक धरोहर के रूप में संजोया है। जिनमें जनगण सिंह श्याम, वेकैंट श्याम, रामसिंह उर्वीती एवं दुर्गाबाई का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मूल शब्द– परम्परा, सरंक्षक, गोंड, देवलोक, धर्म–संस्कृति, मान्याताएँ।

प्रस्तावना

मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसका धर्म हो, संस्कृति हो या मान्याताएँ वह उन्हें सदैव जीवित देखना चाहता है। कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें वह धर्म, संस्कृति और अपने दैनिक जीवन एवं उससे जुड़े समस्त पक्षों को सम्मिलित कर लेता है। वह कला चित्रकला के रूप में हो, मूर्तिकला के रूप में हो या अन्य किसी भी कला के रूप में हो। उसका तात्पर्य

ही कलाकार की स्वयं की भावनाओं, उसके पर्यावरण, संस्कृति अर्थात् उसके सम्पूर्ण परिवेश से जुड़ी बातों, दिन–प्रतिदिन की घटनाओं तथा उनका कलाकार के ऊपर प्रभाव है। कला, कलाकार और समाज एवं उसकी परम्पराओं के मध्य एक सूक्ष्म तारतम्य स्थापित करना इसका प्रमुख ध्येय है। दूसरे शब्दों में परम्पराएँ कलाकार की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं करती अपितु उन्हें एक उत्तेजना प्रदान करती हैं।[1]

व्यक्ति विशेष के समूह की आस्था विचार विश्वास एवं धारणा धर्म का रूप ग्रहण कर लेती है। ये धारणा एवं विश्वास उसके व्यवहार एवं जीवन का अभिन्न अंग बन जाते है जिन्हें मनुष्य जीवन के हर पक्ष के साथ जोड़कर देखता है। ये आस्था, विश्वास, परम्पराएं मानव जीवन को सन्तुष्टि प्रदान करती है, उसके हर क्षण को नियन्त्रित करती है और नैतिकता को धारण कर जीवन के संचालन का मार्ग प्रशस्त करती है। धर्म भारतीय संस्कृति के प्राण है।

धर्म–संस्कृति

प्रत्येक समाज या स्थान विशेष की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। संस्कृति शब्द अत्यन्त विस्तृत है जो अपने अन्दर अनेक रीतियों, परम्पराओं एवं संस्कारों को समाये हुए है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'कृ' धातु से मानी गयी है जिसका शब्दिक अर्थ होता है– पवित्र करना या शुद्ध करना। संस्कारों का परिमार्जन कर उनका नवीनीकरण अर्थात् ऐसी क्रिया जो व्यक्ति में पवित्रता का संचारण करें वह संस्कृति है। मानव का मन जितना बुराईयों और कुकृत्यों रहित और शुद्ध है, वह उतना ही अधिक संस्कारवान कहा जाता है।[2] संस्कृति मानवता का मेरू दण्ड है। कला संस्कृति की संरक्षक है जो सदियों से अनेक संस्कृतियों को अपने अन्दर समाये हुए है। कला और संस्कृति एक सिक्के के दो पहलू के समान है अर्थात् एक दूसरे के सहचरी है। कला और संस्कृति को भिन्न नही किया जा सकता है अपितु ये एक–दूसरे का अभिन्न अंग है।

आदिवासी धर्म एवं संस्कृति से प्रभावित गोंड कला

मध्य प्रदेश अनेक सांस्कृतिक परम्पराओं का पोषक रहा है। विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं के सरंक्षक आदिवासी लोगो ने साथ मिलकर अपनी संस्कृति, रीति–रिवाज, त्यौहार, विश्वास, अनुष्ठान एवं दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षण को विभिन्न कलाओं के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। जनजातीय समाज के प्रत्येक क्षण को उन्होंने हर्ष और उल्लास से संजोया है। जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित उत्सव जनजातीय समाज में देखे जा सकते हैं। बहुरंगी संस्कृति के नाम से विख्यात मध्यप्रदेश का महाकौशल अंचल सांस्कृतिक परम्पराओं की संरक्षण स्थली रहा है। मध्य भारत की सम्पूर्ण संस्कृति को छः भागों में विभाजित किया गया है। मालवा, बुन्देलखण्ड, निमाड, बघेलखण्ड, महाकौशल और ग्वालियर मध्यप्रदेश की रंग–बिरंगी संस्कृति एक अनोखी छठा को फैलाये हुए हैं।[2] ऐसी ही एक संस्कृति महाकौशल के अचंल में विकसित हो रही थी जब यहाँ गोंडवाना क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले मण्डला–डिण्डौरी में गोंड राजवंश ने जन्म लिया। गोंडो की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक कहानियों, किस्से और कथाएँ यहाँ प्रचलित हैं। गोंड राजाओं के सरंक्षण में मण्डला में अनेक दुर्ग एवं किलो का निर्माण हुआ। संग्रामशाह, दलपतिशाह, हृदयशाह जैसे राजाओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये

साहित्यानुरागी और अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं को विस्तार देने वाले राजा रहे। उन्होंने अनेक शिलालेख बनवाये और किलो का निर्माण कराया।[3]

मण्डला जनपद के जनजातीय समाज में एक अद्‌भुत कला का प्रादुर्भाव हुआ। जनजातीय समाज को प्रस्तुत करने में गोंड समाज का महत्व विश्वविदित है। गोंड समाज के नृत्य, गीत, संगीत, कला सभी में उनके विश्वास, आस्था, धर्म, परम्पराओं का समन्वय दिखाई देता है। गोंड समाज के प्रत्येक कलात्मक पक्ष पर इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गीत–संगीत, नृत्य, साहित्य और चित्रकला सभी पर आदिवासी परिवेश का प्रभाव दिखाई देता है। भौगोलिक विभिन्नता और प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य यहां के समाज ने कला को एक नवीनता के साथ पोषित किया जो एक अनोखे जादुयी संसार की अनुभूति कराती है।

जनजातीय चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला, नृत्य, संगीत, गीत व साहित्य का सहज सरलीकृत रूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है जो किसी बनावटीपन एवं थोथेपन से पूर्ण भिन्न दृष्टिगोचर होती है। उनका अपना निजि अस्तित्व है। कला पर आदिवासी संस्कृति परिवेश और धर्म का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों से भी कला अछूती नहीं रही हैं। यहाँ की कला विशुद्ध सौन्दर्य की प्रतीक हैं। पुरूषों और स्त्रियों में कलात्मकता कूट–कूट कर भरी हुई है जिसमें दोनो की समान सहभागिता दिखाई देती है।

केवल मिट्‌टी से निर्मित भवनों एवं उपयोगी वस्तुओं का सौन्दर्य अद्‌भुत हैं। आदिवासी कलाकारों ने घर की उपयोगी वस्तुओं जैसे– चूल्हे, अंगीठी, चक्की, हंडिया, टोकरियाँ, लकड़ी और मिट्‌टी से निर्मित रसोईघर की प्रत्येक सामग्री, सुन्दर साज के समानों का सौन्दर्यपूर्ण ढंग से निर्माण किया है। केवल मिट्‌टी, भूसा, खपरैल, घास और बांस द्वारा सुन्दर घरों का निर्माण किया है। सीमित संसाधनों में अनोखी कलात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने घरों में स्थापित अन्न संग्रहण कक्ष का निर्माण बड़े ही कलात्मक ढंग से किया है। छोटे–छोटे नमूनों एवं आकृति द्वारा उसको सजाया जाता है। जब फसल कटने के बाद नया अन्न घर पर आता है तो उसे वहां एकत्र करके रखा जाता है। इस कक्ष के बाहरी ओर सुन्दर कलाकारी का अनोखा रूप दिखाई देता है। बरंडा के समान ही कोठी की रचना की जाती है जो मुख्यतः अन्न एवं फसल के सरंक्षण हेतु बनाई जाती है। यह घर की महिलाओं द्वारा बनायी जाती है। सुन्दर–सुन्दर नमूनों द्वारा उसे सजाया जाता है। इसके अतिरिक्त मिट्‌टी के विभिन्न प्रकार के चूल्हे एवं अंगीठी तैयार की जाती हैं। जिन पर विभिन्न कलात्मक एवं परम्परागत नमूनों को बनाया जाता है। जिनका प्रयोग भोजन बनाने और ठण्ड के दिनों में अलाव को जलाने के लिए किया जाता है। मिट्‌टी की चकिया (चक्की), विभिन्न प्रकार के बर्तन और झाला इत्यादि का निर्माण भी वे स्वयं करते हैं।

स्थानीय कलाकारों द्वारा विभिन्न प्रकार की लकडियों एवं बांस के द्वारा सुन्दर वस्तुओं का निर्माण किया गया है। घर के दरवाजे, चौखट, खिड़की और मण्डप को सुन्दर नक्काशी द्वारा सजाया जाता है तथा विभिन्न प्रकार के चटख रंगों द्वारा सजाकर उनके आकर्षण को ओर अधिक बढ़ा दिया जाता है। घरेलू उपयोग और कृषि कार्य में प्रयोग होने वाले उपकरण जैसेः– लकड़ी के बर्तन, चारपाई, छोटे–छोटे आसन (मचिया), हल, जुआ, (जुवांटी), पाटा (कृषि कार्य में प्रयोग होने वाला उपकरण) आदि वस्तुओं का निर्माण हस्तकला में निपुण कलाकारों द्वारा

किया गया है। घर के दरवाजों एवं चौखटों पर किया गया अलंकरण सौन्दर्यात्मकता से किया गया है जिन्हें मुख्य रूप से ज्यामितिय रूपाकारों द्वारा सजाया जाता है। प्रतीकात्मक चिन्हों को भी उन पर उकेरा गया है। साथ ही बांस से बनी वस्तुओं का प्रयोग भी उनके द्वारा किया जाता है बांस से बने सजावट के सामान और बर्तनों जैसे–फूलदान, टोकरी, डलिया, सूपा, पूजा में प्रयोग होने वाले उपकरण, कृषि कार्य में उपयोगी वस्तुएँ, मछली पकड़ने के उपकरण, धनुष, तीर, घर की छत के लिए बांस की खपच्चियाँ, संगीत के विविध वाद्य यन्त्रों जैसे– बांसुरी, ढोलकी, थाप इत्यादि का निर्माण बांस एवं विविध प्रकार की लकड़ियों से निर्मित किया जाता है। ये विभिन्न प्रकार के पेड़ों के तनो एवं पत्तों से उपयोगी सामग्री तैयार करने में ये अत्यन्त निपुण होते हैं। पेड़ों के पत्तों से थाल, कटोरियां, बरसात से बचने के लिए खुमरी, विभिन्न प्रकार की झाड़ू इत्यादि को बनाया जाता है। सन के पौधे से विभिन्न प्रकार की रस्सियाँ हाथों से बनायी जाती हैं। घर में प्रयोग होने वाले व कृषि कार्य में सहायक उपकरणों का निर्माण किया जाता है। चारपाई और आसन की बुनाई बड़े ही कलात्मक ढंग से की जाती है जिसमें विभिन्न प्रकार के नमूने बनाये हैं। दूध मथने की रस्सी, बर्तनों को टांगने के लिए जालनुमा टोकरी सन की रस्सियों से तैयार की जाती हैं। बैलों के मुख पर बांधने के लिए जाल तैयार किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की घास से रस्सी और मालाएँ तैयार की जाती हैं जो उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति को दर्शाती हैं।

गोंड कलाकृतियों का अपना निजी आकर्षण है जो कला मर्मज्ञों को विचार करने हेतु बाध्य करता है। कलाकारों द्वारा गढ़े गये ये रूपाकार काल्पनिक रूपों, प्रतीकात्मक आकारों के माध्यम से सम्पर्क स्थापित करते हैं। गोंड कलाकारों द्वारा जिस सूक्ष्मता, गंभीरता एवं विचारवादी प्रवृत्ति से आकृतियों को उकेरा गया है वह अत्यंत ही प्रभावशाली बन पड़ा है। गोंड लोगों ने अपनी सभ्यता, संस्कृति, धार्मिक रीति–रिवाज को विभिन्न कलाओं के माध्यम से एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित किया। संगीत, गीत (लोक मल्हार), कविता और चित्रों के द्वारा अपनी आत्मानुभूतियों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति की। जो भाव उनके अन्दर प्रस्फुटित हुआ उसे रेखाओं, रंगों, रूपों एवं शब्दों के माध्यम से गढ़ने का प्रयास किया। अपनी सृजन शक्ति के द्वारा जीवन के विभिन्न पहलुओं का एक दर्पण रूपी यथार्थ प्रस्तुत किया। इन कलाकृतियों में कहीं न कहीं उन कलाकारों की भावनाएं, कल्पनाएं समाज को संदेश देती प्रतीत हुईं।

गोंड चित्रकार न केवल एक चित्र या आकृति का निर्माण करते हैं अपितु अपनी लोक एवं दन्त कथाओं का सम्पूर्ण भाग उसमें चित्रित करते हैं। इन चित्रों में प्रकृति के बडे ही भावात्मक एंव काल्पनिक स्वरूप को दर्शाया गया है जो इनके प्रकृति एवं धार्मिक आस्थाओं के साथ गहरे जुड़ाव को दिखाता है। पेड–पौधों, जीव–जन्तुओं, पक्षियों आदि प्रकृति द्वारा सृजित रूपों को अपनी मनोसृष्टि के द्वारा एक नवीन चेतना प्रदान की। इन कलाकृतियों में मुख्य रूप से नैसर्गिक सौन्दर्य को धार्मिक पुट के साथ कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। प्रकृति के सृजन, रहस्यों एवं ताकतों को तूलिका के द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया गया है। प्रकृति के साथ–साथ धार्मिक विश्वास, अनुष्ठान, देवी–देवताओं, दिपावली, करवाचौथ, अहोई अष्टमी, नाग पंचमी तथा अपने स्थानीय देवों जैसे– बादा देव, फुलवारी देवी, माराही देवी, इत्यादि और जानवरों के चित्रों को मुख्य रूप से चित्रित किया जाता रहा है। स्थानीय देवी–देवताओं को

सर्वाधिक रूप में चित्रित किया गया है जिनमें बड़ा देव (सृजनहार), पंडा–पंडिन (रोग निवारक देवता), दुल्हा–दुल्ही देव (विवाह बंधन में बांधने वाला देव), नारायण देव (सूर्य) और भीवासू देव, चन्द्रमा आदि देवों का चित्रण बहुतायत से किया जाता रहा है। अन्य स्थानीय देवों का प्रचलन भी गोंड आदिवासियों में रहा है। जिनको बडे ही सौन्दर्यपूर्ण ढंग से चित्रपटल पर उतारा गया है। देवी–देवताओं के जन्म एवं मृत्यु, पुनर्जन्म का चित्रण भी किया गया है जो गोंड शैली के चित्रों की एक महत्वपूर्ण विषेशता रही है। अच्छे और बुरे कर्मों का चित्रण भी दिखाई देता है जो शुद्धता एवं अशुद्धता की भावना को प्रकट करता है। गोंड चितेरों द्वारा निर्मित ये कलाकृतियाँ मानवीय संवेदनाओं को दिखाती प्रतीत होती हैं।

उत्सवों के अवसर पर ये आकृतियाँ गोंड कलाकारों द्वारा स्वयं निर्मित भित्ति एवं धरातल पर चित्रित की जाती थी। गोंड कला एक रेखा प्रधान कला शैली है जिसमें सपाट या समतल रंग पर रेखाओं और बिन्दुओं द्वारा सम्पूर्ण कलाकृतियों को चित्रित किया जाता है। चटख रंगों एवं रंगतों का बड़े विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग इन चित्रों में किया गया है। सहज एवं सरल रूपों का प्रयोग करके कलाकृतियों को पूर्ण किया गया है।[4] अपने मूर्त रूप में गोंड कला फर्श व दिवारों से शुरू हुई और धीरे–धीरे इसने अपना रास्ता कागज व कैनवास पर बना लिया। गोंड कलाकारों के प्रणेता जनगढ़ सिंह श्याम एवं अन्य कलाकार दुर्गाबाई, भज्जू श्याम, नर्मदा प्रसाद, वेंकट रमन सिंह श्याम आदि कलाकारों के नाम मुख्य रूप से सामने आता हैं जिन्होंने इस कला शैली को पोषित किया। इन कलाकारों का विषय–क्षेत्र धार्मिक विश्वास, मिथकों और दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों को चित्रित करना रहा है। केवल उन मिथकों को ही इनका विषय नहीं माना जाता, या केवल वही चीजें जिनका अस्तित्व है वे ही इनका विषय क्षेत्र नहीं हैं, बल्कि स्वप्न व कल्पानाएँ भी इनकी कला के विषय क्षेत्र माने जाते हैं। इस कला के अन्तर्गत प्रत्येक कलाकार का एक निश्चित तरीका या अपनी एक अलग प्रकार की शैली है। इस कला के प्रमुख नमूनों में टैटू बनाना भी विशेष है। इस प्रकार के रूपों से पूरे शरीर पर कलाकृति बनायी जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि ये कलाकृतियाँ मृत्यु तक भी व्यक्ति के शरीर पर बनी रहती हैं। ये कलाकार इस कला को दैनिक जीवन के प्रतीकों से जोडते हैं और कल्पनाओं एवं स्मृतियों से भी जोड़कर देखते हैं।[5]

गोंड आदिवासी चित्रों में आदिवासी परम्पराओं का समृद्ध स्वरूप दिखाई देता है। इन चित्रों में चित्रकारों ने अपनी परम्पराओं एवं मूल्यों को जीवन्त कर दिया है। आदिवासी समाज के इन चित्रकारों ने वृक्षों, जीव–जन्तुओं और अपने स्थानीय देवों से सम्बंधित अनेक चित्रों का निर्माण किया है जो आदिवासी संस्कृति एवं परम्पराओं का खूबसूरत चित्रण है। चित्रकार जनगण सिंह श्याम, राम सिंह उर्वीती, दुर्गाबाई, वेंकेटश्याम जैसे वरिष्ठ चित्रकारों की कृतियों में जनजातीय परम्परागत विषयों के रहस्यमय संसार के जीवन्त रूप के दर्शन होते हैं। जनगण कलम के प्रणेता श्री जनगण सिंह श्याम के चित्रों में गोंड स्थानीय देवों जैसे ठाकुरदेव, मरादेव, बघैसुरदेव, सुराही देव, मश्वासी देव, मेड़ो भाई, फुलवारी देवी, मराही देवी, जैसे स्थानीय देवों का चित्रों में सर्वाधिक वर्णन किया है।[6] गोंड आदिवासियों में देवों का बड़ा महत्व है देवों के अनुष्ठानिक स्थल को देवलोक के नाम से जाना जाता है। इनकी रहस्यमयी कथाओं, गीतों, (यभा की गीत) का चित्रण इस तुलिका प्रेमियों द्वारा किया गया हैं गोंड कला आदिवासी समाज

की लोककथाओं, गीतों मिथको विभवास का एक रंगीन लयात्मक अंकन है। आदिवासी सम्प्रदाय के आचार–विचार परम्पराएँ उनके पुरखों द्वारा संजोयी गयी विरासत हैं।[7] विभिन्न लोक नृत्य सैला, करमा, रीना द्वारा तथा विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों के माध्यम से ये अपनी परम्पराओं का निर्वाहन कर रहे हैं। प्रत्येक नृत्य किसी ना किसी त्यौहार या उत्सव से जुड़ा है। फसल बोते समय और नई फसल के घर आने पर नृत्य व गायन की अनोखी परम्परा द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति गोंड समाज के लोग करते हैं। इन विषयों से सम्बन्धित अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण गोंड चित्रकारों द्वारा किया गया है। गोंड देव लोक के देवों जैसे–गोत्र देवता, क्षेत्रीय देवता, फसलों के देव, पशु और मनुष्य की रक्षा करने वाले देव, बिमारियों से रक्षा करने वाले देव, नदियों–नालों के देवों की उत्पत्ति की अनेक कथाएँ एवं किस्से हैं। जिनमे से अधिकांश का चित्रण इन कलाकारों द्वारा किया गया है बड़ा देव के विभिन्न रूपों को सौन्दर्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। जो जनगण सिंह श्याम की कलाकृतियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।[8]

गोंड परम्परागत कला की श्रेष्ठतम चित्रकार श्रीमति दुर्गाबाई व्याम के चित्र आदिवासी संस्कृति के मौलिक रूप के दर्शन कराते हैं। बचपन से ही उन्होने आदिवासी संस्कृति का चित्रण दीवारों पर करना शुरू कर दिया था। इन्होंने अपने चित्रों में मुख्य रूप से दादी द्वारा सुनायी हुई कहानियों को सर्वाधिक चित्रित किया है। स्थानीय देवों का रेखाओं ओर चटख रंगो के उचित संयोजन द्वारा चित्रण किया गया है। इन्होनें परम्परागत चित्रों में अपनी अनुठी परम्पराओं के दर्शन कराये हैं। आड़ी–तिरछी रेखाओं द्वारा चित्र में चुम्बकीय आकर्षण उत्पन्न किया गया है जो सहज ही सभी को आकर्षित करता है। ये चित्र इनकी सूक्ष्मतावादी प्रवृत्ति को प्रस्तुत करते है।[9] गोंड कलाकारों द्वारा गढे गये ये रूपाकार उनकी सूक्ष्मता, गम्भीरता एवं विचारवादी प्रवृत्ति के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। जिनमें इनकी परम्पराओं का गहराई से चित्रण किया गया है। धार्मिक– अनुश्ठान, विभवास, देवी–देवताओं, उत्सवों, चन्द्रमा आदि के चित्रों को सौन्दर्यपूर्ण एवं रहस्यात्मक ढंग से उकेरा गया है। देवी–देवताओं के जन्म–मृत्यु, ओर पुर्नजन्म का चित्रण किया गया है जो इन चित्रों की विशेषता रही है। उत्सवो, दैनिक जीवन, पूजा–पाठ, नीति–कथाओं, आख्यानों एवं लोक कथाओं पर आधारित चित्रों का अथाह संसार इन कलाकारों की कूची द्वारा सांस्कृतिक एकता का आभास कराता है। ये चित्र सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ मांगलिक भावना, पारस्परिक प्रेम एवं सुख–समृद्धि के भाव से गढे गये हैं। ये चित्र जनजातीय समाज की स्वभाविक अभिव्यक्ति से उपजे सहज, सरल, अनगढ़ रूपाकार है जो धार्मिक प्रवृत्ति की उपज है।[10]

ईश्वरीय सत्ता एवं प्राकृतिक शक्तियों को ये धार्मिक दृष्टिकोण से जोड़कर देखते है। किसी भी प्रकार की प्राकृतिक आपदा को दूर करने के लिए धार्मिक अनुष्ठान में विभवास करते हैं। इससे सम्बन्धित परम्परागत लोक कथाएँ इन गोंड आदिवासी लोगों में प्रचलित है। जिससे सम्बंधित चित्र भी इन कलाकारों द्वारा सृजित किये गये हैं। ईश्वरीय सत्ता एवं उसका प्रभुत्व इनके जीवन का अटूट अंग है।[11] जिससे ये स्वयं को अलग नहीं कर सकते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षण हर्ष हो या दुख, ईश्वरीय पराशक्ति का वर्चस्व भी इनकी रचनाकृतियों में देखा जा सकता है। जो धर्म के प्रति इनके अथाह प्रेम को प्रकट करता है। ईश्वर द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, सरंक्षण व संहार सभी का चित्रण इनके चित्रों में दिखाई देता है। गोंड लोक गीतों में बाणा नामक वाद्य

यन्त्र बजाकर देवी–देवताओं को किस प्रकार प्रसन्न किया जाता है। उन लोक गीतो, मल्हार का चित्रण भी इन लोक चितेरो ने बड़े ही स्वभाविक एवं आत्मीय ढंग से किया है।[12]

गोंड लोगो मे देवी–देवताओं की पूजा की बड़ी मान्यता है। आरम्भिक गोंड चित्रों में चित्रकार जनगण सिंह श्याम, नर्मदा प्रसाद तेकाम, दुर्गाबाई जैसे वरिष्ठ चित्रकारों ने इन देवी–देवताओं का बहुत अधिक चित्रण किया है। धार्मिक विश्वास और पराशक्ति को बड़े ही सहज, अनगढ़, व भोलेपन के साथ चित्रित किया है। नदी, पेड–पौधों, पशु–पक्षियों का चित्रण मंगल भावना से परिपूर्ण है।

उपसंहार

आदिवासी समाज ने देवलोक के चित्रण को अत्यन्त आत्मीय भावनाओं द्वारा चित्रपटल पर उकेरा गया है। जो अद्‌भुत एवं अद्वितीय है। इन कलाकारों ने अपनी स्मृति पर आधारित कथाओं को जिस प्रकार तुलिका, रंग व रेखाओं के माध्यम से दर्शाया है। वह इनके अपने धर्म, विश्वास, आस्था, और भाव का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करता है। कलाकार ने कलाकृतियों को जिस भावना से एक एक मोती के रूप में संजोया है। वह वास्तव में दर्शकों को उस अस्तित्व का अनुभव केवल अपने रहस्यमयी चित्रों द्वारा कर देती है। गोंड सम्प्रदाय के इन चितेरों ने अपनी परम्पराओं को चित्रपटल पर उतारकर अमर कर दिया है।

❐

सन्दर्भ –

1. *रानी, डॉ. अर्चना, कला संस्कृति एवं समाज, प्रकाशक, ड्राइंग एण्ड पेंटिग्स विभाग, रघुनाथ गर्ल्स (पी.जी.) कॉलेज, मेरठ, 2016 पृ. 61, 63*
2. *चतुर्वेदी, डॉ. मंजुला, भारतीय लोक कला के अभिप्राय कला प्रकाशन न्यू साकेत कालोनी, बी.एच.यू. वाराणसी प्रथम संस्करण 2009 पृ. 18.20*
3. *पारे, डॉ. धर्मेन्द्र : गोंड देवलोक, आदिवासी लोकला एवं तुलसी साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, संस्कृति परिषद् 2008, पृ. 136, 137*
4. *गुप्ता, घनश्याम : मौजी बैगा बैगा लोककथाएँ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय भोपाल, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. XII, XIII*
5. *पाण्डेय, वन्दना : सम्पदा, मध्यप्रदेश की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा (अशोक मिक्ष सम्पादक), आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी पृ. 343–344*
6. *दास, ओरोगीता : जनगढ़ सिंह श्याम द एनचेन्टिड फोरेस्ट पेंटिग्स एण्ड ड्रांइग्स फ्रॉम द क्राइटस कलेक्शन, रोली बुक, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली, 2017, पृ. 99*
7. *पारे, डॉ. धर्मेन्द्र : गोंड देवलोक, आदिवासी लोककला एवं तुलसी साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, पृ. 79*
8. *पाण्डेय, वन्दना : सम्पदा मध्यप्रदेश की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य चर्तुथ संस्करण, 2018 पृ. 343, 344.*
9. *सिंह, डॉ. ब्रिजेश कुमार : गोंड जनजाति में सांस्कृतिक परिवर्तन, वाराणसी– भारती प्रकाशन, 2011*
10. *दास, ओरोगीता : जनगढ़ सिंह श्याम द एनचेन्टिड फोरेस्ट पेंटिग्स एण्ड ड्रांइग्स फ्रॉम द क्राइटस कलेक्शन, रोली बुक, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली 2017*
11. *पारे, डॉ. धर्मेन्द्र : गोंड देवलोक, आदिवासी लोककला एवं तुलसी साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, पृ. 111*
12. *गुप्ता, डॉ. निलिमा : भारतीय लोककला छत्तीसगढ़ के संदर्भ में, स्वाति पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ.219*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 62–71

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

ग्लास सीलिंग और निजी स्कूल की शिक्षिकाएं

डॉ. संजय कुमार
समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email id- sanjaysocio5@gmail.com M.b.8874616346
डॉ. पंकज सिंह
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email id- pankajsocio@bhu.ac.in

सारांश

यह अध्ययन निजी स्कूल कि शिक्षिकाओं के करियर विकास में आने वाली बाधाओं, विशेष रूप से ग्लास सीलिंग प्रभाव का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह शोध पत्र मूल रूप से वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध प्रारूप पर आधारित है। जो निजी स्कूल कि शिक्षिकाओं पर आधारित हैं। इसमें ग्लास सीलिंग के विभिन्न स्तरों का अध्ययन और ग्लास सीलिंग को प्रभावित करने वाले कारक का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में उपयोग किये गये आंकड़े द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। मानव पूंजी और समानता का आकर्षण सिद्धांत के माध्यम से ग्लास सीलिंग के स्तर को समझने का प्रयास किया गया हैं। ग्लास सीलिंग को प्रभावित करने वाली सामाजिक, व्यक्तिगत, संगठनात्मक, सरकारी एवं रूढ़िवादी कारक की पहचान करना और यह समझना है कि ये कारक या बाधाएं उनके पदोन्नति, नेतृत्व की भूमिकाओं तक पहुंच और समग्र करियर को कैसे प्रभावित करती हैं। ग्लास सीलिंग को प्रभावित करने वाले कारकों के माध्यम से महिलाएं पुरुषों की तुलना में वरिष्ठ नेतृत्व पदों तक पहुंचने में कम सफल होती हैं। यह लैंगिक भेदभाव के सूक्ष्म और व्यापक दोनों रूपों के कारण होता है, जो प्रतिभाशाली महिलाओं को अपने पूर्ण क्षमता तक पहुंचने से रोकता है। संगठनात्मक परिवर्तन, नीतिगत हस्तक्षेप, और सामाजिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

मुख्य शब्द –ग्लास सीलिंग, व्यक्तिगत कारक ,सामाजिक कारक ,संगठनात्मक कारक, सरकारी कारक

आधुनिक युग में भी महिलाओं को वरिष्ठ प्रबंधकीय पदों पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए संघर्ष जारी है, यद्यपि कॉर्पोरेट क्षेत्र में अनेक महिलाओं की उन्नति तथा लैंगिक

समानता के उद्देश्य से रोजगार नीतियों में संशोधन के साथ उल्लेखनीय प्रगति देखी गई है। तथापि, महिलाओं को उच्च प्रबंधकीय पदों तक पहुंचने में आने वाली बाधाएं एक व्यापक समस्या हैं। पुरुषों की तुलना में, महिलाओं को सामान्यतः निम्न–स्तरीय एवं निम्न–कैडर नेतृत्व पदों पर नियोजित किया जाता है, वरिष्ठ प्रबंधन स्तरों पर महिलाओं की पर्याप्त उपस्थिति की निश्चितता दुर्लभ है, और इस घटना को ग्लास सीलिंग के रूप में अभिव्यक्त किया गया है, "यह बाधा इतनी सूक्ष्म एवं पारदर्शी है, फिर भी इतनी दृढ़ है कि यह महिलाओं को प्रबंधन पदानुक्रम में ऊपर जाने से रोकती है।" (मॉरिसन एवं वॉन ग्लिनो, 1990)[1]

ग्लास सीलिंग एक ऐसा शब्द है जिसका उपयोग अक्सर उन अदृश्य बाधाओं को दर्शाने के लिए किया जाता है जो महिलाओं को संगठनों में उच्च पदों तक पहुंचने से रोकती हैं। यह एक पारदर्शी बाधा की तरह है जो स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती, लेकिन अपनी उपस्थिति महसूस कराती है। महिलाओं के संदर्भ में "ग्लास सीलिंग" (Glass Ceiling) शब्द का अर्थ है एक ऐसी अदृश्य बाधा जो महिलाओं को उनके करियर में आगे बढ़ने से रोकती है। यह शब्द उन चुनौतियों और बाधाओं को दर्शाता है जिनका सामना महिलाएं अपने कार्यस्थल में करती हैं, जैसे कि लिंग भेदभाव, यौन उत्पीड़न, और अन्य प्रकार के पूर्वाग्रह।

इस शब्द का पहली बार 1986 में वॉल स्ट्रीट जर्नल में उपयोग किया गया था, जब हाइमोविट्ज और शेल्लहार्ड्ट (Guldal, 2006:61)[2] ने कॉर्पोरेट जगत में महिलाओं द्वारा सामना की जा रही चुनौतियों पर एक लेख लिखा था। उन्होंने बताया कि कैसे महिलाएं, भले ही वे कितनी ही योग्य क्यों न हों, अक्सर कंपनी की परंपराओं और पूर्वाग्रहों के कारण शीर्ष पदों पर नहीं पहुंच पाती हैं।

ग्लास सीलिंग के तहत आने वाली बाधाएं स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देती हैं। ये बाधाएं लैंगिक पूर्वाग्रह, रूढ़िवादी सोच, नेटवर्किंग के सीमित अवसर, और कार्य–जीवन संतुलन जैसी चुनौतियों के रूप में हो सकती हैं।(Mescon, Bovee and Thill, 2001)[3]

अध्ययन की आवश्यकता

ग्लास सीलिंग, एक अदृश्य बाधा जो योग्य व्यक्तियों, विशेषकर शिक्षिकाओं को निजी स्कूल पदानुक्रम के उच्चतम स्तर तक पहुंचने से रोकती है, एक जटिल और बहुआयामी सामाजिक समस्या है। यह केवल एक व्यक्तिगत मुद्दा नहीं है, बल्कि यह समाज के समग्र विकास और संगठनात्मक उत्पादकता पर भी गहरा प्रभाव डालती है। इस समस्या की जटिलता को देखते हुए, एक गहन और व्यापक विश्लेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता है जो ग्लास सीलिंग के विभिन्न स्तरों और कारणों की पहचान करे।

- **सामाजिक और संगठनात्मक जटिलता**– ग्लास सीलिंग सामाजिक, सांस्कृतिक, और संगठनात्मक कारकों के जटिल अंतःक्रिया का परिणाम है। एक गहन अध्ययन इन कारकों के बीच पारस्परिक संबंधों को समझने में मदद करेगा और इस समस्या के मूल में पहुंचने में सक्षम होगा।

- **गुणात्मक आकड़ों का विश्लेषण**– गुणात्मक आकड़ा व्यक्तिगत अनुभवों और धारणाओं को समझने में मदद करेगा और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करेगा।

ऽ **कारणों का बहुआयामी विश्लेषण**– अध्ययन विभिन्न प्रकार के कारणों की पहचान करने में मदद करेगा, जैसे कि अचेतन पूर्वाग्रह, रूढ़िवादी सोच, नेतृत्व शैली, संगठनात्मक संस्कृति, नीतिगत खामियां, और सामाजिक–आर्थिक असमानताएं।

ऽ **भविष्य के लिए नीति निर्माण**– अध्ययन से प्राप्त जानकारी का उपयोग नीति निर्माताओं और संगठनों द्वारा भविष्य में ग्लास सीलिंग को तोड़ने के लिए प्रभावी नीतियों और कार्यक्रमों को विकसित करने के लिए किया जा सकता है।

साहित्य सर्वेक्षण

कौर एवं जिंदल (2009)[4] ने इस तथ्य का समर्थन किया कि संगठनों ने वरिष्ठ स्तरों पर महिला अधिकारियों को भर्ती नहीं किया क्योंकि वे डरते थे और महसूस करते थे कि महिला अधिकारी अपने काम के लिए सौ प्रतिशत देने में सक्षम नहीं हो सकती हैं, क्योंकि उन्हें लिंग के मामले में कमजोर माना जाता था और चूंकि सामाजिक और जैविक कारकों ने भी संगठन में उनके विकास में बाधा उत्पन्न की थी।

जैन एवं मुखर्जी (2010)[5] द्वारा अध्ययन में पाया कि महिलाओं के पास अपने करियर की प्रगति के लिए आवश्यक कार्यस्थल में एक अनुकूल वातावरण का अभाव था, जबकि पुरुषों ने महिलाओं को कमजोर, अनिर्णायक, चुनौती से बचने वाली, स्थानांतरित होने के लिए अनिच्छुक, शीर्ष पदों को बनाए रखने के लिए बलिदान करने के लिए अनिच्छुक और प्रबंधकीय पदों के लिए अनुपयुक्त माना।

शर्मा, शर्मा एवं कौशिक (2011)[6] ने अपने अध्ययन में बताया कि महिलाएं अक्सर निचले पदों पर अधिक प्रतिनिधित्व करती हैं और उसी पदों पर स्थिर हो जाती हैं क्योंकि वे पक्षपात, वेतन असमानता का अनुभव करती हैं और पारंपरिक पेशों का चयन करने के लिए मजबूर होती हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया कि सांस्कृतिक अपेक्षाओं ने महिलाओं की भूमिका को प्रभावित किया, जिससे उन्हें वरिष्ठ प्रबंधन पदों को अस्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

शर्मा एवं सहरावत (2014)[7] ने चुनौतीपूर्ण कार्यों, लैंगिक असमानता, प्रदर्शन मूल्यांकन में असमानता और कम पदोन्नति के संदर्भ में ग्लास सीलिंग की व्यापकता की भी पहचान की।

नंदी, भास्कर एवं घोष (2014)[8] ने मनोवैज्ञानिक, संगठनात्मक और सामाजिक इन तीन बाधाओं के कारण भारतीय कॉर्पोरेट क्षेत्र में ग्लास सीलिंग की व्यापकता की खोज की।

दर्शन एवं दुबे (2014)[9] द्वारा एक अन्य अध्ययन ने पुरुषों और महिलाओं के बीच रोजगार और आय के संबंध में भेदभाव के अस्तित्व की खोज की, जिसने बाधाओं को बढ़ा दिया और महिलाओं को वरिष्ठ प्रबंधन पदों तक पहुंचने से रोका।

अमुधा, मोथा, सेल्वाबस्कर, आलमलु एवं सुरुलिवेल (2016)[10] के अनुसार, कॉर्पोरेट क्षेत्र में महिलाएं मौजूदा कॉर्पोरेट संस्कृति और सफल करियर खोजने की संभावनाओं की कमी के कारण आघातमय होती हैं और उन्होंने संगठन के अंदर शामिल संस्कृति और महिलाओं के क्षमता–निर्माण प्रकृति को उनके करियर की प्रगति के लिए प्रमुख बाधाओं के रूप में उजागर किया।

कुमार,एस. (2016)[11] ने कहा कि हालांकि महिलाएं लगभग सभी क्षेत्रों में प्रबंधकीय पदों का प्रतिनिधित्व कर रही हैं, यह पुष्टि करना बहुत असमय होगा कि भारत में महिलाओं ने ग्लास सीलिंग को तोड़ दिया है क्योंकि भारतीय समाज में अभी भी पुरुषों का वर्चस्व है।

बिंबा एवं कलियामूर्थी (2017)[12] भारतीय समाज की पारंपरिक मूल्यों के कारण, भारतीय महिलाएं अक्सर पारिवारिक और घरेलू जिम्मेदारियों में अधिक समय व्यतीत करती हैं, जिससे उनके पेशेवर विकास में बाधाएं उत्पन्न होती हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन, उत्पीड़न, लैंगिक भेदभाव और पुरुष प्रधान समाज जैसी चुनौतियों के कारण महिलाएं अपने करियर की प्रगति की तुलना में घरेलू कार्यों पर अधिक ध्यान केंद्रित करती हैं।

अजीज एवं प्रियदर्शिनी (2018)[13] ने व्यक्तिगत बाधाओं (क्षमता, इच्छाशक्ति, आत्म–धारणा और परिवार–कार्य संतुलन), संगठनात्मक बाधाओं (संगठनात्मक नीति, संगठनात्मक संस्कृति और प्रबंधन की धारणा) और सामाजिक बाधाओं (सामाजिक विश्वास और रूढ़िवादिता) की खोज की, और उन्होंने पहचान की कि इच्छाशक्ति, कार्य–परिवार संघर्ष, संगठनात्मक नीति, सामाजिक विश्वास और रूढ़िवादिता ने महिलाओं के करियर की प्रगति को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

इसलिए, साहित्य ग्लास सीलिंग की व्यापकता का समर्थन करता है जो संगठनों में महिलाओं की प्रगति को प्रभावित करता है, और इस प्रकार, हम तर्क देते हैं कि ग्लास सीलिंग संगठनों में मौजूद हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

ग्लास सीलिंग के विभिन्न स्तरों का अध्ययन करना। ग्लास सीलिंग को प्रभावित करने वाले कारक का अध्ययन करना।

अध्ययन की पध्दति

यह शोध पत्र मूल रूप से वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है। जो निजी स्कूल कि शिक्षिकाओं पर आधारित हैं। इसमें ग्लास सीलिंग के विभिन्न स्तरों का अध्ययन और ग्लास सीलिंग को प्रभावित करने वाले कारक का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है । इस अध्ययन में उपयोग किया गया आंकड़ा द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है जो इस अध्ययन की आवश्यकता के अनुसार है।

ग्लास सीलिंग और उसके विभिन्न स्तर

शिकागो बूथ स्कूल की प्रोफेसर मैरिएन बर्टांड (2017)[14] का कहना है कि एक दुनिया में जहां प्रतिभा महिलाओं और पुरुषों के बीच समान रूप से बंटी है वही अर्थव्यवस्था महिलाओं द्वारा प्रस्तुत नेतृत्व कौशल का पूरी तरह से लाभ नहीं उठाती है, वह आवश्यक रूप से कुशल नहीं है। यह पेशे में उन्नति के लिए बाधाओं को स्वीकार करता है, विशेष रूप से शिक्षिकाओं को उनके करियर में प्रभावित करता है, जो स्पष्ट रूप से ग्लास सीलिंग के विचार से जुड़े हैं। ग्लास सीलिंग इस विचार को दर्शाता है कि लिंग–आधारित वंचन का शीर्ष पदों पर निचले स्तरों की तुलना में अधिक सामना किया जाता है और यह वंचन किसी व्यक्ति के करियर में आगे बढ़ने के साथ बदतर होता जाता है (कॉटेर एट अल., 20001)[15]। ग्लास सीलिंग का मुख्य विचार लिंग

और नस्लीय या जातीय भागीदारी के संबंध में प्रगति करके वरिष्ठ–स्तरीय पदों को विविध बनाने के लिए वर्तमान आंदोलन के साथ इसके संरेखण में निहित है (बैक्सटर और राइट, 2000)[16]। हालाँकि यह एक बहुआयामी घटना है जो कई कारकों और उनके अंतर्संबंधों के कारण होती है। कभी–कभी ये कारक संगठन में बहुत स्पष्ट होते हैं और कभी–कभी वे पूरी तरह से अदृश्य होते हैं। किसी भी स्थिति में, कई शोध अध्ययनों के परिणामों ने पुष्टि की है कि कार्यस्थल पर इस अन्यायपूर्ण भेदभाव को समाप्त करने से संगठनों को प्रतिस्पर्धात्मक लाभ मिलेगा।

ग्लास सीलिंग, जिसे नेतृत्व भूलभुलैया (नॉर्थहाउस, 2013 द्वारा गढ़ा गया शब्द)[17] भी कहा जाता है, को प्रत्यक्ष भेदभाव और यौन उत्पीड़न के साथ–साथ लिंग भेदभाव का तीसरा रूप माना जाता है (बेल एट अल., 2002)[18]। इसकी चार विशिष्ट परतें हैं, जिनमें से मुख्य परत (या पहली परत) ग्लास सीलिंग सभी के लिए स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, जबकि अन्य व्यक्तिगत मनोविज्ञान के भीतर कहीं फलने–फूलने लगते हैं। अनुक्रमिक आधार परत को मासलो की आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धांत के साथ पहचाना जा सकता है, जो पिरामिड का पता लगाता है जिसके माध्यम से मानव प्रेरणा आमतौर पर सबसे निचले स्तर–मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से उच्चतम स्तर आत्मसम्मान और फिर आत्म–साक्षात्कार तक जाती है (केनरिक,2010)[19]

प्रथम स्तर– मानव पूंजी

यह स्तर महिला शिक्षक के ज्ञान, कौशल और अनुभवों का प्रतिनिधित्व करती है। अध्ययन बताते हैं कि संगठन अक्सर पुरुष शिक्षक में प्रशिक्षण और विकास पर अधिक निवेश करते हैं (सेल्मर और लियुंग, 2003)[20]। यह असमानता कई कारकों के कारण हो सकती है, जिसमें मातृत्व अवकाश और बाल देखभाल की जिम्मेदारियां शामिल हैं, जो महिला कर्मचारियों को अनियमित रूप से काम करने के लिए बाध्य करती हैं। परिणामस्वरूप, महिलाओं के पास पुरुषों की तुलना में कम अनुभव और प्रशिक्षण का अवसर हो सकता है, जो पदोन्नति के निर्णयों में एक महत्वपूर्ण कारक है।

द्वितीय स्तर– समानता का आकर्षण सिद्धांत

यह मनोवैज्ञानिक सिद्धांत बताता है कि लोग उन लोगों के साथ सहज महसूस करते हैं जो उनके समान होते हैं। दुर्भाग्य से, कई उद्योगों में पुरुषों का वर्चस्व है, जो अनजाने में समानता के आकर्षण के प्रभाव को जन्म देता है (इंश एट अल., 2008)[21]। पदोन्नति के निर्णय लेने वालों को अक्सर उन उम्मीदवारों को चुनने के लिए प्रेरित किया जाता है जो उनके जैसे दिखते, सोचते और व्यवहार करते हैं। यह प्रवृत्ति महिलाओं को वरिष्ठ पदों तक पहुंचने में बाधा उत्पन्न करती है, खासकर उन संगठनों में जहां नेतृत्व पदों पर पुरुषों का अधिकार है। डिमोव्स्की एट अल. (2010)[22] द्वारा पुराने साथियों का नेटवर्क की अवधारणा को भी उजागर किया गया है, जो अनौपचारिक समूहों के रूप में कार्य करता है और पुरुषों को पदोन्नति में सहायता प्रदान करता है। महिलाओं के लिए इन नेटवर्क तक पहुंचना कठिन हो सकता है, जो उनकी कैरियर प्रगति को सीमित करता है।

ग्लास सीलिंग को प्रभावित करने वाले कारक

शैक्षणिक संस्थानों के भीतर विभिन्न जटिल कारकों के कारण शिक्षिकाओं को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जो उनके पुरुष सहयोगियों द्वारा समान स्तर पर अनुभव नहीं किए जाते हैं। ये बाधाएं अधिकांश संगठनों और सरकार के लिए प्रमुख चिंता का विषय हैं। ग्लास सीलिंग के निर्माण में चरों की जांच के लिए विभिन्न शोध किए गए हैं। प्रत्येक शोध ने अलग–अलग कारकों की खोज की है जो योग्य शिक्षिकाओं को अपने संगठनों में उच्चतर पदों पर आगे बढ़ने से रोकने में बाधा उत्पन्न करते हैं, जिन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में सारांशित किया गया है

सामाजिक कारक

सामाजिक बाधाएं व्यक्तिगत विकास और पेशेवर प्रगति को सीमित करने वाले सामाजिक कारक हैं। ये बाधाएं परिवार की प्राथमिकताओं, जिम्मेदारियों और कार्य–परिवार असंतुलन जैसी चुनौतियों से उत्पन्न होती हैं। सामाजिक बाधाओं का प्रभाव शिक्षिकाओं के पेशेवर जीवन पर महत्वपूर्ण होता है, जिससे उन्हें सफलतापूर्वक आगे बढ़ने में बाधाएं उत्पन्न होती हैं।

अध्ययनों से पता चलता है कि परिवार की जिम्मेदारियां शिक्षिकाओं के वरिष्ठ प्रबंधन पदों तक पहुंचने में महत्वपूर्ण बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। पारंपरिक रूप से, पुरुषों को कमाने वाले और महिलाओं को घर की देखभाल करने वाली माना जाता है। यह धारणा महिलाओं को प्रबंधकीय भूमिकाओं के लिए कम उपयुक्त मानती है। महिलाओं पर पारिवारिक जिम्मेदारियों का दबाव उनके करियर की प्रगति को सीमित करता है। विवाहित महिलाओं के लिए परिवार की प्रतिबद्धता एक महत्वपूर्ण बाधा बन गई है। इसके विपरीत, पुरुषों को पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त माना जाता है, जिससे उन्हें वरिष्ठ प्रबंधन पदों के लिए अधिक समय और संसाधन समर्पित करने की अनुमति मिलती है।

महिलाएं भी जानती हैं कि बच्चा होने से उनके करियर की प्रगति में बाधाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। कुछ महिलाएं जानबूझकर बच्चों के साथ अपने करियर को धीरे–धीरे आगे बढ़ाने का विकल्प चुनती हैं। हालांकि, अध्ययनों से पता चला है कि बच्चों का होना महिलाओं के नौकरी उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा नहीं है। परिवार महिलाओं के करियर में प्रोत्साहन का स्रोत भी हो सकता है।

महिलाओं को अपनी कामकाजी आकांक्षाओं को अपने पारिवारिक दायित्वों के साथ संतुलित करने में कठिनाई होती है। लंबे समय तक काम करना और बार–बार स्थानांतरण और पारिवारिक दायित्वों के साथ संतुलन स्थापित करना चुनौतीपूर्ण होता है।

संगठनात्मक कारक

एक अनुकूल कार्य वातावरण कर्मचारियों की दक्षता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भर्ती और पदोन्नति के अवसरों में पक्षपात यदि कार्यस्थल पर मौजूद है तो कर्मचारियों की प्रतिबद्धता, निष्ठा और दक्षता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है। शिक्षिकाओं के मामले में, यदि इस तरह का पक्षपात, जिसे ग्लास सीलिंग कहा जाता है, कार्य वातावरण में बना रहता है और शिक्षिकाओं की क्षमताओं को उनके लिंग के आधार पर कम करके आंका जाता है, तो

इससे तनाव और संगठन के प्रति कम प्रतिबद्धता उत्पन्न होती है, जिससे उनके प्रदर्शन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अल–मनासरा (2013)[23] द्वारा किए गए एक अध्ययन ने यह प्रलेखित किया कि महिलाएं कार्य वातावरण में रूढ़िवादिता का सामना कर रही हैं जो उनके करियर में उन्नति में बाधा डालती हैं। परिणामस्वरूप, संगठनों के उच्च पदों पर पुरुषों की संख्या अधिक है, जो संगठन के शीर्ष स्तरों पर अधिक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसी तरह, वैलेंटाइन (2001)[24] ने बताया कि महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक बाधाओं का सामना करती हैं, जैसे कि पुरुषों के अहंकार का सामना करना जब वे प्रबंधकों के रूप में काम करती हैं, जबकि संगठन में अच्छा प्रदर्शन करती हैं। कई संस्कृतियों में, पुरुषों के अधीनस्थों के लिए एक महिला को बॉस के रूप में स्वीकार करना कठिन होता है। इस प्रकार, ऐसी संस्कृतियों में, महिलाओं को प्रभावी ढंग से बहु–कार्य के लिए उपयुक्त नहीं माना जाता है।

व्यक्तिगत कारक

व्यक्तिगत बाधाएं शिक्षिकाओं के पेशेवर विकास में महत्वपूर्ण बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इनमें आत्मविश्वास की कमी, चुनौती से बचने की प्रवृत्ति और निराशाजनक व्यवहार शामिल हैं। ये कारक शिक्षिकाओं को मजबूत आत्मविश्वास विकसित करने से रोकते हैं, जो उनके करियर की प्रगति में सहायक होते हैं। कुछ स्थितियों में, शिक्षिकाएं चुनौती से बचने की प्रवृत्ति का सामना करती हैं, जो उन्हें अपने पेशेवर विकास के लिए आवश्यक प्रयास करने से हतोत्साहित करती हैं।

लियू एट अल. (2020)[25] के अनुसार, किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व अन्य लोगों के प्रति उसके कार्यों के साथ–साथ उसके दृष्टिकोण, लक्षणों और सोच से बना होता है। कोस्टा और मैक्रे (1992)[26] द्वारा प्रस्तुत पांच कारक मॉडल बताता है कि कैसे किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व और विभिन्न व्यवहार संबंधित हैं। व्यक्तित्व गुण नेतृत्व पद पर किसी महिला की आकांक्षाओं और आत्मविश्वास का संदर्भ देते हैं (त्रियाना एट अल., 2021)[27]

जब पुरुषों से तुलना की जाती है, जो नेतृत्व पदों पर अधिक दृढ़ और प्रभावशाली आचरण प्रदर्शित करते हैं, तो कुछ शिक्षिकाओं में महत्वाकांक्षा और आत्मविश्वास जैसे मूलभूत गुणों और क्षमताओं का अभाव पाया जाता है, जिसने शिक्षिकाओं के लिए करियर की सीढ़ी चढ़ने में बाधा उत्पन्न कर दी है। महत्वाकांक्षा की परिभाषा किसी के प्रबंधकीय पद को आगे बढ़ाने की इच्छा है।

शोध के अनुसार, पुरुषों और महिलाओं दोनों की महत्वाकांक्षा प्रबंधन पदोन्नति के विश्वसनीय भविष्यवाणीकर्ता हैं। आत्मविश्वास सामाजिक और पेशेवर अनुभवों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है, और यह किसी व्यक्ति की करियर उन्नति की इच्छा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है (दत्ता और अग्रवाल, 2017)[28]। शिक्षिकाओं का करियर प्रगति इस तथ्य से बाधित होता है कि वे पुरुषों की तुलना में कम महत्वाकांक्षी और आत्मविश्वासी होती हैं, जिससे उनके लिए सार्वजनिक प्रोफाइल कम हो गई है। जिन शिक्षिकाओं में आत्मविश्वास की कमी होती है, वे अपने स्वयं के नौकरी विकास में बाधा डालती हैं। महिलाएं पदोन्नति के

लिए आवेदन नहीं करती हैं क्योंकि उनमें आत्मविश्वास की कमी होती है और उन्हें असफल होने का डर होता है। शैक्षणिक रूप से सफल होने के बावजूद, महिलाओं को आत्मविश्वास के मुद्दे होते हैं (शर्मा और कौर, 2019)[29]। हालांकि अध्ययन में महिलाओं को प्रतिस्पर्धी, महत्वाकांक्षी और भावनात्मक रूप से प्रबंधकीय पदों के लिए उपयुक्त दिखाया गया था, एक अन्य अध्ययन ने संकेत दिया कि व्यक्तित्व गुणों ने महिलाओं के करियर विकास को शीर्ष प्रबंधन तक महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित नहीं किया।

सरकारी कारक

सरकारी स्तर पर महिलाओं के उत्थान के लिए, पर्याप्त नीतियों का अभाव है, जो महिलाओं की सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुये आवश्यक है। सरकार द्वारा पहले ही स्वीकृत नीतियों का कार्यान्वयन का अभाव है। ये नीतियां केवल कागज पर ही रहती हैं और लागू नहीं होती हैं, जिससे महिलाओं के पेशेवर विकास में बाधाँ, उत्पन्न होती हैं और इन नीतियों का उद्देश्य विफल हो जाता है।

महिलाओं के खिलाफ अपराधों से निपटने के लिये, कड़े कानून बनाए गये हैं, लेकिन इन कानूनों के कार्यान्वयन में कमी है और न्याय प्रणाली में देरी होती है। इससे महिलाओं के खिलाफ अपराधों में और वृद्धि होती है, जिससे महिलाओं की भागीदारी सीमित हो जाती है।

इन सरकारी बाधाओं को दूर करने के लिए, सरकार को प्रभावी नीतियों का निर्माण और कार्यान्वयन सुनिश्चित करना चाहिए। साथ ही, न्याय प्रणाली में सुधार आवश्यक है ताकि महिलाओं के खिलाफ अपराधों का शीघ्र निपटारा हो सके।

रुढ़वादी कारक

रुढ़वादी लैंगिक भूमिकाओं और विशेषताओं के आधार पर लोगों के बीच तुलना के कारण उत्पन्न होती हैं। ये रूढ़ियाँ महिलाओं के पेशेवर विकास में महत्वपूर्ण बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि पुरुषों को असाधारण अवसर, बहादुर और स्वायत्त के रूप में चित्रित किया जाता है, जबकि महिलाओं को उदासीन, संवेदनशील और पौराणिक के रूप में वर्णित किया गया है (स्निजेक और नील, 1992)[30]

निष्कर्ष

शिक्षिकाओं की कैरियर प्रगति को बाधित करने वाली संरचनात्मक बाधाओं के रूप में ग्लास सीलिंग की अवधारणा, लैंगिक असमानता के व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ में स्थित है। यद्यपि शिक्षिकाएं आवश्यक योग्यताएं और कौशल रखती हैं, फिर भी वे अक्सर संगठनात्मक संस्कृति में निहित रूढ़िवादी धारणाओं, सीमित नेटवर्किंग के अवसरों, और कार्य–जीवन संतुलन की चुनौतियों के कारण बाधाओं का सामना करती हैं। साहित्य में प्रस्तुत साक्ष्य स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि शिक्षिकाएं पुरुषों की तुलना में वरिष्ठ नेतृत्व पदों तक पहुंचने में कम सफल होती हैं। यह लैंगिक भेदभाव के सूक्ष्म और व्यापक दोनों रूपों के कारण होता है, जो प्रतिभाशाली शिक्षिकाओं को अपने पूर्ण क्षमता तक पहुंचने से रोकता है। संगठनात्मक परिवर्तन, नीतिगत हस्तक्षेप, और सामाजिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से ही इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। ग्लास सीलिंग को तोड़ने के लिए, कई संगठन

और सरकारें महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम और नीतियां बना रही हैं, जैसे कि महिलाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, महिलाओं के लिए नेतृत्व के अवसर, और लिंग समानता को बढ़ावा देने वाली नीतियां।

ग्लास सीलिंग के प्रभाव को दूर करने के लिये निम्नलिखित रणनीतियाँ अपना सकते हैं –
शिक्षिकाओं को आवश्यक कौशल प्रदान करना– शिक्षण, व्यवसाय प्रबंधन, टीम नेतृत्व और अंतर–व्यक्तिगत संबंधों के क्षेत्रों में कौशल विकास कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है।

सलाहकार और मार्गदर्शक उपलब्ध कराना– महिलाओं को उनके करियर पथ में मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए अनुभवी सलाहकार और मार्गदर्शक नियुक्त किए जा सकते हैं।

समान अवसर नीतियाँ लागू करना– सभी कर्मचारियों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करने वाली नीतियाँ लागू की जा सकती हैं, ताकि लिंग, जाति या अन्य पूर्वाग्रहों के आधार पर भेदभाव न हो।

शिक्षिकाओं के अनुकूल नीतियाँ विकसित करना– मात त्व अवकाश के बाद पुनः कार्य प्रवेश की सुविधाएं, लचीले कार्य समय और अन्य महिला–अनुकूल नीतियाँ विकसित की जा सकती हैं।

❒

सन्दर्भ –

1. *Morrison, A., & Von Glinow, M. (1990). Women and minorities in management. American Psy chologist, 45(2), 200–208.*
2. *Guldal, D. (2006). A Research about the Factors that Motivate and Demotivate Women Managers (Published Master's Thesis), Cukurova University Institution of Liberal Arts Department of Business.*
3. *Mescon, M. H., Courtland B. L. and Thilll. J. V. (2001). Business Today, Prentice Hall, New Jersey.*
4. *Kaur, N., & Jindal, D. (2009). Female executives and the glass ceiling in service sector. PCMA Journal of Business, 1(2), 172–187.*
5. *Jain, M., & Mukherji, S. (2010). The perception of glass ceiling in Indian organisations: An exploratory study. South Asian Journal of Management, 17(1), 23–42.*
6. *Sharma, A., Sharma, S., & Kaushik, N. (2011). An exploratory study of glass ceiling in Indian education sector. International Journal of Multidisciplinary Research, 1(8), 73–82*
7. *Sharma, S., & Sehrawat, P. (2014). Glass ceiling for women: Does it exist in modern India. Journal of Organization & Human Behaviour, 3(2–3), 9–15.*
8. *Nandy, S., Bhaskar, A., & Ghosh, S. (2014). Corporate glass ceiling: An impact on Indian women employees. International Journal of Management and International Business Studies, 4(2), 135–140.*
9. *Darshan, R., & Dubey, L. K. (2014). Existence of glass ceiling in education sector and its impact on performance appraisal. International Journal of Multidisciplinary Research in Social & Manage ment Sciences, 2(2), 68–76*
10. *Surulivel, S. (2016). Glass ceiling and glass escalator—An ultimate gender divide in urban vicinity. Indian Journal of Science and Technology, 9(27), 1–8.*
11. *Kumar, S. (2016). Glass ceiling: An invisible barrier. Imperial Journal of Interdisciplinary Re search, 2(7), 318–321*
12. *Bimba & Kaliyamoorthy. (2017). Barriers of glass ceiling on women employees in IT sector. Jnanavardhini—Online Multidisciplinary Research Journal, 1(1), 58–64*
13. *Azeez, N. P. V., & Priyadarshini, R. G. (2018). Glass ceiling factors affecting women career advancement in IT industry in India. OP Conference Series: Materials Science and Engineering, 390, 1–8.*

14. *Bertrand, M. (2017). The Glass Ceiling. Becker Friedman Institute for research in Economics Working Paper No. 2018-38.*
15. *Catter D., A., Hermsen, J., M., Seth, O. & Reeve, V. (2001). The Glass Ceiling Effect. Social Forces 80(2),655-681.*
16. *Baxter, J., &Wright, E.O. (2000). The Glass Ceiling Hypothesis: A Comparative of the United, Sweden, and Australia. Gender and Society,14(2),275-29.*
17. *Northouse, P.G. (2013). Leadership: Theory and Practice (6th ed.) Thousand Oaks, CA: Sage Publications, Inc.*
18. *Bell. M.P., McLaughlin, M.E., & Sequeira, J. M. (2002). Discrimination, Harassment and the glass ceiling: Women Executive as change agents. Journal of Business Ethics, 37, 65-76.*
19. *Kenrick, D (2010). Rebuilding Maslow Pyramid on an evolutionary Foundation. Psychology Today.*
20. *Selmer, J., & Leung, A.S.M. (2003). International adjustment of female vs male Perceived Gender Discrimination in the workplace. Organizational Studies, 13(3), 403-27.*
21. *Insch, G. S., Mcintyre, N., & Napler, N.K. (2008). The expatriate glass Ceiling: The Second layer of glass. Journal of Business Ethics,8,19-28.*
22. *Dimovski, V., Skerlavaj, M., & Mok Kim man, M. (2010) Is There a glass Ceiling for female manager in Singapore Organization? Management, 5(4).307-329.*
23. *Al-Manasra, E. A. (2013). What Are the "Glass Ceiling" Barriers Effects on Women Career Progress in Jordan? [Article]. International Journal of Business & Management, 8(6), 40-46. doi: 10.5539/ijbm.v 8n6p40*
24. *Valentine, S. (2001). Men and Women Supervisors' Job Responsibility, Job Satisfaction, and Employee Monitoring. Sex Roles, 45(3-4), 179-197. doi: 10.1023/a:1013549710711*
25. *Liu, T., Shen, H., & Gao, J. (2020). Women's career advancement in hotels: the mediating role of organizational commitment. International Journal of Contemporary Hospitality Management, 32(8), 2543–2561. https://doi.org/10.1108/ IJCHM-12-2019-1030*
26. *Costa, P. T., Jr., & McCrae, R. R. (1992). Personality in Adulthood: A Five-Factor Theory Perspective. National Institute on Aging, NIH, DHHS.*
27. *Triana, M. D. C., Gu, P., Chapa, O., Richard, O., & Colella, A. (2021). Sixty years of discrimina tion and diversity research in human resource management: A review with suggestions for future research directions. Human Resource Management, 60(1), 145–204. https://doi.org/10.1002/ hrm.22052*
28. *Datta, S., & Agarwal, U. A. (2017). Factors effecting career advancement of Indian women man agers. South Asian Journal of Business Studies, 6(3), 314–336. https://doi.org/10.1108/SAJBS-07-2016-0062*
29. *Sharma, S., & Kaur, R. (2019). Glass ceiling for women and its impact on women's career progression in the Indian service sector: the moderating role of family structure. International Journal of Indian Culture and Business Management, 18(2), 235–250. https://doi.org/10.1504/ IJICBM.2019.098025*
30. *Snizek, W.E. &Neil, C.C. (1992). Job Characteristics, Gender Stereotypes and Perceived Gender Discrimination in the Workplace. organization Studies, 13(3),403-27*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका*
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 72–84

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

जाति का उन्मूलन – अम्बेडकर से परे

मेवालाल
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी– 221005
E-mail: mevalal94@gmail.com Mob. 7753019742

सारांश

समकालीन संवैधानिक काल में संविधान जिसमें जाति के आधार पर भेदभाव और अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया है। फिर भी दलितों का शोषण जाति और अस्पृश्यता के आधार पर हो रहा है। 1991 का आर्थिक उदारीकरण भी दलितों के लिए शून्य सिद्ध हुआ। दलित दलित ही रहा। यह जाति ही है जो शोषको को अभिप्रेरित (Motivate) करती है। दूसरी ओर दलितों को अनाभिप्रेरित (Demotivate) करती है जिसके कारण आज भी दलितों में अकर्मणता तथा दास चित्तवृत्ति विद्यमान है। "जहां सार्वजनिक भावना, सार्वजनिक दानशीलता, सार्वजनिक जनमत, जिम्मेदारी, वफादारी, सदगुण, नैतिकता, सहानुभूति सब जाति तक सीमित है।"[1] जहां मानवतावाद और आपसी प्रेम जाति तक सीमित हो। जहां द्विज और दलित पहले से ही एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह पाले हुए हो और दूर दूर रह रहे हो, जहां एक समुदाय विशेष के लोग सामाजिक सामंजस्य छोड़कर विभाजन का उपदेश दे रहे हो, समाज में जहां रोटी बेटी का संबंध मौजूद है वहां भी, जहां नहीं मौजूद है उस समाज में भी जाति के आधार पर शोषण हो रहा है। निसंदेह जाति के आधार पर शोषण हो रहा है पर यह निश्चित नहीं कि शोषण का आधार मात्र जाति ही उसमे अन्य कारक उपस्थित रहते है। इन्हीं क्षेत्रों को स्पष्ट करने की जरूरत है। ताकि दोनों समुदाय करीब आ सके और सामाजिक सामंजस्य के साथ रह सके। एक दूसरे की उपस्थिति में काम कर सके। निश्चित रूप से जाति के उन्मूलन के लिए अलग और नए तरीके से सोचने की जरुरत है।

मुख्य शब्द– नस्ल, धर्म, जाति, निजी संपत्ति, संस्कृति, अस्मिता, पूँजी 'माल, हैसियत

भारत की जनसंख्या का निर्माण जिन प्रमुख नस्लों के लोगों के मिश्रण से हुआ है वह इस प्रकार है प्रोटो ऑस्ट्रेलायड, पैलियो मेडिटेरियन, कोकेशायड, नीग्रोयड और मंगोलॉयड। 'होमो सेपियंस का उद्भव अफ्रीका में हुआ जो अन्य प्राणियों से अलग था। इसने एशिया की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार कई अप्रवासियों और आद्य सेपियंस के साथ संकरण भी हुआ।

"काकेशसायड और ऑस्ट्रेलायड में अनुवांशिक साम्यता मानव जाति के साझा उद्‌भव का संकेत करती है।"[2] सभी मनुष्य एक ही जाति होमो सेपियंस के संतान है। सभी एक ही मानव जाति से संबंधित हैं तो सभी में बिना संबंध के आपस में संयोग हुआ और आगे पीढ़ियां भी चली। भूगोल के प्रोफेसर माजिद हुसैन मानव भूगोल में लिखते है "इन्हीं के समान लक्षणों के कारण रक्त का अंतर मिश्रण इस सीमा तक हो गया कि संसार के दूर दराज के और निर्जन क्षेत्रों में भी कोई शुद्ध प्रजाति नहीं बची।"[3] "रक्त के संबंध की व्यवस्थाएं निश्क्रिय है।"[4] जाति के विनाश पुस्तक में डी. आर. भंडारकर का उल्लेख करते हुए अंबेडकर लिखते हैं "भारत में ऐसी कोई वर्ग या जाति नहीं है जिसमें विजातियो के अंश ना हो।"[5] अंबेडकर पुनः आगे लिखते है कि "प्रजातियों के संकरण के संबंध में यह साक्ष्य इस बात का संकेत देता है कि मानव जाति में संकरण असीमित किंतु दीर्घकाल से होता आ रहा है।"[6] "फ्रेडरिक एंगेल्स कबीलियाई समाज को लेकर भारत के संदर्भ में लिखते है भारत के इन कबीलों में भी परिवार के प्रचलित रूप से पैदा होने वाले संबंध रक्त संबंधता की व्यवस्था के उल्टे है।"[7] "इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के विद्वान हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति के संबंध में अशोक का फूल निबंध में लिखते हैं वह अनेक आर्य और आर्यतर उपादानों का अद्‌भुत सम्मिश्रण है।... हमारे सामने समाज का जो रूप है वाह ना जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।... सब कुछ में मिलावट है सब कुछ अशुद्ध है।"[8]

स्पष्ट है कि भारत में ऐसी कोई जाति नहीं जो पूर्णता शुद्ध हो।.... जिस शुद्धता के लिए अनेक प्रावधान किए गए खानपान व अन्य संबंध वर्जित किया गया। अनेकानेक प्रकार से दंड दिए गए। जिस आधार पर सैकड़ो दलित मारे गए। वही वास्तव में शुद्ध रूप में नहीं है। प्रजातियों के संकरण का ही परिणाम लोक चेतना में अनेक मुहावरे प्रचलित है। अतः शुद्ध, श्रेष्ठ या पवित्र जाति का विचार निरर्थक है।

जाति व्यवस्था पहले से ही समाप्त हो चुकी है। "आर्यों के आगमन पर यहां के मूल निवासियों से उनका संघर्ष हुआ। आर्य विजयी हुए तथा मूल निवासी पराजित हुए। उनकी जमीन पर कब्जा हुआ तथा उनको प्रजा बनाया गया। आर्यों ने अपनी अलग पहचान और रक्त शुद्धता को बनाए रखने के लिए एक अलग सामाजिक व्यवस्था स्थापित की। जिसका आधार भौतिक था।"[9] जो आगे चलकर इस व्यवस्था ने वर्ण व्यवस्था का रूप लिया। पुनः वर्ण समय के साथ आगे बढ़ते हुए जाति में उस समय तब्दील हुआ जब निचले श्रेणी के लोगों का सामाजिक कार्य पैतृक हुए। और इसी कड़ी में आगे बढ़ते हुए जाति जन्मजात हुई। ऐसा शासन की कठोरता और प्रजा को प्रजा बनाए रखने के लिए किया गया। डॉ. भीमराव अंबेडकर जाति का उच्छेद तथा रामशरण शर्मा 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास' नामक पुस्तक में ने आर्य और अनार्य लोगों के बीच अंतर को इस प्रकार बताया है "आर्य लोग गौर वर्ण वाले तथा सीधे नाक वाले थे।"[10] तथा "मूल निवासी श्याम–काले रंग"[11] तथा चपटी नाक वाले थे। स्पष्ट है कि "दोनों में शारीरिक बनावट"[12], "रंगो का अंतर था।"[13] आर्य और अनार्य दो भिन्न समुदाय थे। चूंकि मानव की गतिशीलता में वर्ण व जाति का उल्लंघन हो रहा था। रक्त शुद्धता नष्ट हो रही थी। इसको बनाए रखने के लिए समय–समय पर अनेक कठोर प्रावधान किए गए तरह–तरह के राक्षसी वा ईश्वरीय भय दिखाए गए। वर्ण को ईश्वरीय कृत बताया गया ताकि अपने वर्चस्व का उपनिवेश

शूद्रों के सिर पर लादा जा सकें। वर्तमान समय में ऐसी बहुत कम द्विज जातियां हैं जो लंबी नाक वाली तथा गौर वर्ण वाली वह लंबी कद काठी वाली हो, दूसरी ओर दलितों में ऐसे लोगों की संख्या कम है जो काले और चपटी नाक वाले हो। ऐसा इसलिए कि दोनों का अत्यधिक आपसी विनिमय हुआ है जो वर्ण श्रम विभाजन और पेशे पर आधारित था वर्ण के बाद जाति वंशानुक्रम पर आधारित हुई, उसमें भी परिवर्तन जो हुआ वह परिवर्तन भिन्न जातियों के मिलने से हुआ। और यह परिवर्तन होने में कई पीढ़ियां लग गई। आज तथाकथित उच्च या निम्न जातियों में अलग–अलग रक्त समूह नहीं पाए जाते हैं। वास्तव में आज ना कोई द्विज है ना तो कोई शूद्र, ना कोई अछूत। अमृतलाल नागर के उपन्यास नाच्यो बहुत गोपाल में कहावत– करिया बाभन गोर चमार इसी का द्योतक है।

"ऋग्वेद में समाज के दो प्रमुख वर्गों का उल्लेख है आर्यवर्ण और दास वर्ण। इन दोनों में शारीरिक और सांस्कृतिक दोनों प्रकार के भेद थे आर्यों ने अनार्य के लिए अनेक विशेषण का प्रयोग किया है जैसे– श्णकत्व (काले रंग वाले) कृष्ण गर्भ (काले जन से उत्पन्न) तथा अनास (चपटी नाक वाले)"[14] "इतिहास के प्रोफेसर ओम प्रकाश लिखते हैं दोनों में सांस्कृतिक भिन्नता थी। ऋग्वेद में आए निम्न शब्द सांस्कृतिक अंतर को प्रकट करते हैं। मृध्रवाच, अकर्मन, अयज्वन, अदेवयू, अब्रहमन, अव्रत, देवपीयु और शिशनदेव।"[15] इसका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है– आर्यों की भाषा अनार्यो की भाषा से भिन्न थी इसलिए वे अनार्यो को अस्पष्ट भाषा भाषी कहते हैं। अनार्य वैदिक कर्मकांड तथा आचार–विचार में विश्वास नहीं रखते थे। वे आर्य देवताओं की पूजा नहीं करते थे। वे अपने नियमों का पालन करते थे। आर्य देवताओं का निरादर करते थे। लिंग योनि की पूजा प्रचलित थी।

इस प्रकार जिस सभ्यता और संस्कृति से आर्य लोग परिचित हैं, अनार्य लोग अपरिचित थे। आर्य विकसित और संपन्न थे। उनकी तुलना में अनार्य पिछड़े हुए थे। अधीनतावश आर्यों ने अपने धर्म को अनार्यों पर लागू किया। और उन्होंने उसे ग्रहण भी किया। सामाजिक सामंजस्य ही है। पर आर्यों ने पराजितजन की संस्कृति से कुछ न लिया हो ऐसा नहीं है। आज भी वह सामाजिकता दबी पड़ी है। विकास की प्रक्रिया में अलिखित पारंपरिक अभिव्यक्ति के कारण अधीनस्थ शूद्रों की संस्कृति लड़खड़ाते, गिरते, उठते, चोट खाते आज भी छिटपुट जीवित है। जैसे महिषासुर पूजा, भैरव पूजा केरल में ओणम त्योहार पर महाबली की पूजा साथ ही अनेक अज्ञात देवता जो गृह मात्र में पूजे जाते हैं। सामाजिक सामंजस्य के साथ यह उनकी अलग पहचान भी है। वर्ण व्यवस्था और समाज की श्रेणीबद्धता दोनों में द्विज सबसे ऊपर है। समाज में उनकी मात्र सांस्कृतिक भूमिका भिन्न है। मंदिरों में पूजा पाठ करना, समाज में कथा भागवत वेद पुराण सुनाना, यज्ञ–हवन करना, विवाह करवाना आदि जनेऊ धारण करना उपनयन संस्कार मशुवारा, शिखा रखना आदि इस प्रकार उनका रहन–सहन और उनका पैतृक कर्म एक अलग संस्कृति बनाता है पर इसके आधार पर किसी की श्रेष्ठता साबित नहीं हो जाती यह धर्म नहीं कर्म है। इसे कोई भी अपना सकता है। यह कार्य पैतृक होने से भारत के गणतंत्र होने पर एक प्रश्न चिन्ह है। अयोध्या में गैर द्विज भी जनेऊ धारण करते हैं। "तमिलनाडु सरकार ने 2007–08 के बीच अर्चका ट्रेनिंग सेंटर खोला था।"[16] इसमें मंदिर के पुजारी बनने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके लिए तीन वर्ष का स्नातक कोर्स भी होता है। इसमें पूजा विधि, मंत्र उच्चारण,

आरती और ध्यान का प्रशिक्षण दिया जाता है। अनैतिकता, पूजा पाठ में गड़बड़ी होने पर राज्य के द्वारा कार्यवाही भी की जाती है। वास्तव में एक स्वस्थ एवं मजबूत लोकतांत्रिक देश में सांस्कृतिक भिन्नता के आधार पर श्रेष्ठता और ऊंच–नीच का वजूद ही नहीं होना चाहिए।

जाति को चुनौती : इतना होने के बावजूद जाति हमारे बीच जिंदा है। जाति के आधार पर लोग अपने को सर्वोच्च बताते है। जो सोच की पारंपरिक प्रक्रिया के तहत वर्तमान में है। जाति एक विचार है। और यह उनकी मानसिकता है शेष अन्य कोई प्रमाण नहीं है। जातीय उच्चता और निम्नता का विचार बाह्य आरोपित तथा थोपा गया विचार है। यह हमारे स्वभाव में ही नहीं है। यह गुणसूत्र आधारित नहीं है। जाति जीवन में भी व्याप्त है। तथाकथित ऊंची जाति के लोग दलित लोगों पर अपना प्रभुत्व रखते हैं। उनको डरा के रखते हैं। उनको तंग करते हैं। घृणा करते हैं। समाज के लोग ऊंची और नीची जाति वालों के प्रति अलग–अलग तरह से व्यवहार करते हैं। अलग–अलग तरह से पेश आते हैं। यहां तक कि मानवता, मदद तथा संबंध भी जाति तक सीमित है। इस कारण भी लोगों में साथ–साथ रहने तथा साथ–साथ काम करने की भावना नहीं पाई जाती है। इस मानसिकता का उन्मूलन किया जा सकता है। संविधान को जीवन का अंग बना कर। स्त्रीवाद और पूंजीवाद को अपनाकर।

"अंबेडकर के अनुसार जाति धार्मिक विश्वासों का परिणाम है।"[17] धर्म ग्रंथ जातिवाद का पोषण करते है। संविधान ने लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता दी है पर इसका मतलब यह नहीं है कि धर्म ग्रंथ जातीय व्यवहार का उपदेश दे। संविधान में जातिवाद का निषेध भी है। शास्त्रों में आस्था तो संवैधानिक है साथ ही साथ शास्त्र द्वारा पोषित कोई व्यक्ति या संस्था जातिवाद का अभ्यास करता है या जातिवाद फैलाता है। या जातीय श्रेष्ठता का उपदेश देता है तो वह असंवैधानिक है। इस प्रकार जातिवादी धार्मिक आस्था को तोड़ना संवैधानिक है। इस समय पारंपरिक व शास्त्रीय तथा संवैधानिक संस्कृति का संघर्ष वर्तमान है। संविधान अभी लोगों के जीवन का अंग बन रहा है। जैसे–जैसे लोगों के जीवन का अंग बनता जायेगा, वैसे वैसे वह एक संस्कृति का रूप धारण करता जायेगा। यह प्रतिसंस्कृति है। शास्त्रीय संस्कृति और संवैधानिक संस्कृति दोनों एक दूसरे के आमने सामने है। संघर्ष भी कर रही है, और विनिमय भी। यह भी सामाजिक संस्कृति है। अंतर्जातीय भोजन और विवाह इस संस्कृति की अभिव्यक्ति है। आने वाले समय में शास्त्रीय संस्कृति कमजोर पड़ेगी वही पक्ष बचेगा जो मानव जीवन से समायोजन कर पाएगा। दोनों के विनिमय से एक नई संस्कृति बनेगी जिसमें मानव प्रधान होगा। जाति का सांस्कृतिक उन्मूलन हो रहा है।

जातिवाद निम्न आर्थिक क्रिया कलापों पर ज्यादा प्रभावी ढंग से काम करती है। इस से ऊपर उठकर जहां पर्याप्त पूंजी है वहां सामाजिक संस्कृति रोटी–बेटी का संबंध स्थापित है। आर्थिक विपन्नता में परनिर्भरता की स्थिति पैदा होती है सिवाय दासता के, और इस पर कोई सामाजिक संबंध स्थापित नहीं होता है। इसी परनिर्भरता में ऊंची जाति के लोग नीची जातियों का शोषण करते हैं। लेकिन समाज में हमे यह भी दिखाई देता है कि आर्थिक स्थिति बदल जाने पर विचार बदल जाते हैं।... "गरीबी रेखा से नीचे 48 प्रतिशत जनता के मुकाबले दलितों की आबादी का सत्तर प्रतिशत इस अति दरिद्रता की हालत में रहता है। देश में 16 प्रतिशत आबादी के होने के बाद भी दलितों के पास कुल खेती योग्य जमीन का केवल 1 प्रतिशत हिस्सा ही है।"[18]

"आनंद तेलतुंबडे लिखते हैं कि ग्रामीण इलाके में रहने वाले पच्चास प्रतिशत दलित भूमिहीन मजदूर है।"[19]

यही से दलितों की पर निर्भरता की शुरुवात होती है। ऐसे में सभी प्रकार के शोषण को दलितों को सहन करना पड़ता है। उनकी परनिर्भरता जाति के सामाजिक आधार को पहले मजबूत करते हैं। दूसरी तरफ उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता उनको आत्मनिर्भर बनाती है और इससे जाति का सामाजिक आधार कमजोर हो जाता है। और सामाजिक संबंध भी स्थापित होता है। जाति की सामाजिक मजबूती एक गंभीर आपदा है। इस आपदा को अवसर में बदल देना चाहिए। आवश्यकता (Need) और अध्यावश्यकता (Meta need)। में अंतर होता है पहले में रोटी, कपड़ा, मकान स्वास्थ्य आदि आता है, दूसरे अध्य आवश्यकता में आत्मसम्मान, स्वतंत्रता आदि आता है। जब तक निम्न आवश्यकता पूरी नहीं होती अध्यावश्यकता की बात नही की जा सकती। दलितों को सरकार के भरोसे नहीं बैठना चाहिए। उन्हें प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए जोखिम उठाना चाहिए ताकि शीघ्र ही अध्यावश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। आनंद तेलतुंबडे जाति और शोषण को अलग–अलग करकें देखते हैं– "जहां कहीं भी हिंदूओ से निर्भरता के संबंध में दलित बंधे नहीं हैं वहां जाहिर तौर पर जाति उत्पीड़न के प्रति आरक्षित नही। जितना उन जगहों पर जहां निर्भरता पर रिश्ता है।... भौतिक कारक जाति के मसलों पर अन्य कारक से ज्यादा प्रभावी होते हैं।"[20] इससे स्पष्ट होता है कि शोषण निर्भरता पर अधिक निर्भर करती है। अगर इससे परे शोषण होता है। तो वह अपवाद स्वरुप है। इस बात को लेकर किसी विचार, स्थापना या सिद्धांत को गलत नहीं ठहराया जा सकता है। मुक्ति के लिए आत्मनिर्भरता जरूरी है। और दलितों के श्रम, उत्पादन और उपभोग के साथ जाति के मसलों पर भौतिक कारक को स्पष्ट करने की जरूरत है। जाति को हमेशा चुनौती मिली है। मनुष्य ने अपनी गतिशीलता से जाति जैसे स्थाई विचार को गतिशील बनाया।

भारत सरकार के अस्तित्व में आने के बाद जाति को पितृसत्तात्मक बनाकर स्थिर कर दिया गया। "इससे पहले दो जातियों के मिलन से तीसरी जातियों का उद्‌भव होता आ रहा था।"[21] बुद्ध ने जाति व्यवस्था को चुनौती देते हुए समतापरक संघ समाज की स्थापना की। इसके बाद इस्लामी शासन व्यवस्था ने जातिवादी व्यवस्था को चुनौती दी। अंग्रेजी काल में भी जाति व्यवस्था को स्थाई चुनौती मिली। इसी काल में अंबेडकर जैसे दलित को उन्नति करने का अवसर मिला। वर्तमान में संविधान और पूंजीवाद से जाति व्यवस्था को चुनौती मिल रही है। आंबडेकर ने जाति का विनाश पुस्तक में जाति के उन्मूलन के लिए तीन उपाय बताए (1) "जाति को परिपुष्ट करने वाले शास्त्र की अस्वीकृति"[22] (2) "अंतर्जातीय भोजन"[23] (4) "अंतर्जातीय विवाह"[24]। धर्म ग्रंथ पर वे लिखते हैं। जिस शास्त्र से मुठभेड़ करनी है वे वह लोग नहीं जो जाति का पालन करते है बल्कि वे शास्त्र है जो जाति आधारित धर्म की शिक्षा देते है। अंतर–जातीय भोज और विवाह को मान्यता ना देने के लिए लोगों की आलोचना भी करते है. "शास्त्र की पवित्रता में विश्वास को समाप्त करना।"[25] इसका कानूनी उन्मूलन किया जा चुका है। किसी भी प्रकार का जातीय व्यवहार या अपराध को दंडनीय बना दिया गया है फिर भी शोषण हो रहा है। "अस्मिता प्रदर्शन और जाति उन्मूलन को अलग–अलग नहीं देखा जा सकता है।"[26] अस्मिता स्थापन भी जाति उन्मूलन है। अस्मिता प्रदर्शन जातीय हीनता का उन्मूलन है। यह

जाति को बनाए रखने की पहल नहीं है। यह भी जाति उन्मूलन की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। आनंद तेलतुंबडे जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन में लिखते हैं "जाति महज भेदभाव या उत्पीड़न का मामला नहीं है यह एक ऐसा वायरस है जो समूचे राष्ट्र को अपनी जकड़ में बांधे हुए है। भारत की हर बुराई और लगातार इसके पिछड़ेपन के पीछे मुख्य कारण यही वायरस है। एक क्रांति के जरिए इस शरीर की सफाई करके ही इसे निकाला जा सकता है।. जाति महज सांस्कृतिक धार्मिक मसला नहीं है बल्कि यह जीवन के हर पहलू के साथ गुथा हुआ है।"[27] मुक्त कौन पथे (1936) के लेख में अंबेडकर धर्म परिवर्तन बताते हैं। क्योंकि जाति का पालन तो तथाकथित ऊंची जाति के लोग करते है और इलाज तथाकथित निम्न जातियां प्रस्तुत करती है। अलग रहने से अलगाव और नापसंदगी पैदा होगी, बल्कि मिलकर साथ साथ रहने से लगाव पैदा होगा और जाति का विनाश भी होगा। दलित मुक्ति को शरण कुमार लिंबाले अलग तरह से देखते हैं "दलितों के प्रश्न का स्वरूप केवल आर्थिक या केवल सामाजिक दृष्टि से अलग–अलग देखने पर भी दलितों के प्रश्नों का आर्थिक पक्ष को नकारा नहीं जा सकता है... वर्ण संघर्ष और वर्ग संघर्ष दोनों की लड़ाइयां साथ–साथ ही लड़नी होगी। तथा वर्ण व्यवस्था से मुक्त हुआ दलित आर्थिक विषमता से मुक्त होगा।... उनकी अस्पृश्यता समाप्त होनी चाहिए साथ ही उनकी गरीबी भी समाप्त होनी चाहिए।"[28] स्पष्ट है कि वे दलित प्रश्न में आर्थिक पक्ष को स्वीकार करते हैं। वर्ण संघर्ष की बात तो ठीक है किंतु वे जो वर्ग संघर्ष की लड़ाई जो दलितों को दे रहे है, वह महत्वपूर्ण नहीं है। जब पूंजीवाद से जाति व्यवस्था को चुनौती मिल रही है तो दलितों को गरीबी समाप्त करने के लिए पूंजीवाद स्वीकार करने की जरूरत है न कि वर्ग संघर्ष की जरूरत है।

जातिवाद के साथ पितृसत्ता और नस्लवाद साथ–साथ चल रहे हैं। वर्तमान में स्त्रीवाद, पूंजीवाद दोनों से जाति को चुनौती मिल रही है। दलितों को इन दोनों को स्वीकार करने की जरूरत है। समाज में भले न सही पर बाजार में दलितों को यथार्थ स्वतंत्रता मिल सकती हैं। जाति का पालन करने वाले तो तथाकथित उच्च श्रेणी से है और इलाज तथाकथित निम्न श्रेणी वाले प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रकार एक दूसरे से अलग रहते है। तब कैसे संभव है कि जाति का उन्मूलन होगा। दोनों समुदायों के साथ आने से ही जाति का उन्मूलन हो सकता है। इन दोनों समुदायों को एक जरूरी वस्तु का उत्पादन या विक्रय और उपभोग जोड़ सकता है। दलितों को यही काम करना है।

कार्ल मार्क्स और अंबेडकर

कार्ल मार्क्स और अंबेडकर दोनों समकालीन समय में प्रासंगिक हैं। "दोनों का दर्शन शोषण के खिलाफ है। दोनों शोषण विहीन समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। दोनों का केंद्र बिंदु मानव है। शोषित वर्ग है। कार्ल मार्क्स और अंबेडकर दोनों जमीन के राष्ट्रीयकरण की बात करते हैं।"[29] मराठी दलित साहित्य में रावसाहेब कसबे, सदाकान्हाडे, शरण कुमार लिंबाले और आनंद तेलतुंबडे आदि दलित विचारक कार्ल मार्क्स और अंबेडकर दोनों को साथ लेकर चलने में विश्वास करते है। वर्तमान समय में अंबेडकरवाद और मार्क्सवाद को अलग–अलग देखना अपने समय की उपेक्षा करना है। वर्तमान समय में जाति विरोधी बहुत सारे संगठन एवं व्यक्ति जाति आधारित भेदभाव मिटाने का काम कर रहे हैं पर उनका काम कहीं प्रकाशित होता

नहीं दिखाई दे रहा है। जाति के आधार पर दलित मारे जा रहे हैं। नाम के पीछे सिंह जोड़ने पर धमकी मिलती है। बाइक ओवरटेक करने पर मार दिया जाता है। मूंछ रखने पर उत्पीड़न होता है। शिक्षण संस्था में पहचान प्रदर्शित करने पर उत्पीड़न होता है। कोई दलित टैंक का पानी पी ले तो टैंक को गोमूत्र से धोया जाता है। अगर कोई दलित गाय का चमड़ा उतार रहे हैं तो गौ हत्या का झूठा आरोप लगाकर पीटा जाता है।

दलितों की स्थिति को समझने के लिए तुलनात्मक अध्ययन की जरूरत है। जहां दलित का शोषण हो रहा है, और दूसरा जहां दलित का शोषण नहीं हो रहा है। दोनों की सामाजिक स्थितियों में तुलना करके मूल अंतर को स्पष्ट कर उनके शोषणहीन और शोषणयुक्त स्थिति को समझा जा सकता है और शोषण से निकाला भी जा सकता है। समकालीन दलित चिंतक बुनियादी बातों के सिवाय हवा–हवाई बातें अधिक करते दिखाई देते हैं। वे मात्र सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षिक बात करते हैं। जिससे समाज में या जीवन में परिवर्तन नहीं होता है। "परिवर्तन का मुख्य आधार पूंजी है। इससे समाज और जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन हो जाता है। अंबेडकर ने दलितों के शैक्षिक सामाजिक विकास के साथ आर्थिक विकास की बात कही है।"[30] उनके विचारों को लेकर चलने वालों में आर्थिक पक्ष नहीं दिखाई दे रहा है। "अंबेडकर लेखनी को व्यापार का साथ देने को कहते हैं। इसके कई बड़े अर्थ हो सकते हैं जिसका एक अर्थ उद्यमिता है। तथा शरीर को मजबूत बनाने तथा रुपया कमाने को भी कहते हैं।"[31] "साथ ही अस्पृश्यता की दशा में सुधार के लिए आर्थिक पुनर्निर्माण को महत्वपूर्ण मानते हैं।"[32] अंबेडकर यह भी मानते हैं कि "स्पृश्य और अस्पृश्य के बीच एकता कानून नहीं प्रेम के बल पर लाई जा सकती है।"[33] समाज की एकता के लिए प्रेम जरूरी है। यही दोनों को एकजुट कर सकती है और यही प्रेम दलितों को सृजनात्मकता तक यात्रा का अवसर दे सकती है। कार्ल मार्क्स 'पूंजी' में लिखते हैं... "समाज में उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्य के भौतिक भंडार होते हैं पहली दृष्टि से भिन्न में मूल्य एक परिणामत्मक संबंध के रूप में यानी उस अनुपात के रूप में सामने आता है जिस अनुपात में एक प्रकार से उपयोग मूल्य का, दूसरे प्रकार के उपयोग मूल्य से विनिमय होता है।"[34] इसका आशय यह है कि समाज आर्थिक संसाधनों से भरा हुआ है और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जाए तथा वस्तुओं का उत्पादन किया जाए। श्रम और प्रतिभा का उपयोग कर वस्तु का निर्माण हो। निःसंदेह उपयोग मूल्य और विनिमय मूल्य समान होते हैं। यही उत्पादन फिर उपभोग उसे विनिमय या विक्रय की अवस्था तक पहुंचाते हैं। ऐसे में उत्पादक, क्रेता और विक्रेता के बीच एक संबंध स्थापित होता है। इस सामाजिक संबंध को कोई नकार नहीं सकता क्योंकि उत्पाद में उत्पादक का श्रम निहित होता है। और उसमें आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता होती है।

इस प्रकार उत्पादक या विक्रेता की उपयोगिता वस्तु के बराबर या उससे अधिक होगी। यह आवश्यकता की तीव्रता पर अधिक प्रभावी होती है। (उपयोग मूल्य वह मूल्य होता है जो अपने गुणों से मानव आवश्यकता को पूरा करने का सामर्थ्य रखता है) यह सभी चीजों का अपना स्वाभाविक गुण होता है। "कार्ल मार्क्स के यहां रचनात्मकता की अभिव्यक्ति, अपनी रुचि और क्षमता का विकास व्यक्ति का शोषण ना होना। या किसी व्यक्ति को शोषण का अधिकार ना देना सच्ची स्वतंत्रता की पहली शर्त है। दूसरे के निर्णय के आधार पर जीविका पाना तथा व्यक्ति

का शोषण होना परतंत्रता है।"[35] प्रकृति प्रदत्त वस्तु में मनुष्य अपने श्रम या प्रतिभा से उपयोगी वस्तु बनाता है। यदि वस्तु उपयोगी है तो उसका स्वरूप सामाजिक होगा। लोगों की संतुष्टि या देश या व्यक्ति की उन्नति के लिए उत्पादन, सृजन और विक्रय जरूरी है। इस स्थापना से दलित परे नहीं है। यह दलितों के संदर्भ में भी लागू होता है। उनकी सृजन क्षमता को उत्पादन की कौशल में बदलकर उनको शोषण की स्थिति से निकाला जा सकता है। कभी–कभी उत्पादन भी मांग पैदा करता है। दलितों को बाजार में सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है। दलितों को अपने विचारों को उद्योग में बदल देना चाहिए। कार्ल मार्क्स ने दास कैपिटल के प्रथम अध्याय में लिखा है... "मालों के रूप में वस्तुओं के अस्तित्व का और श्रम से पैदा होने वाले वस्तुओं के बीच उस मूल्य के संबंध का जो इन वस्तुओं को माल बना देता है। उनके भौतिक गुणों से तथा उन गुणों से पैदा होने वाले भौतिक संबंध का कोई ताल्लुक नहीं होता है। वहां मनुष्यों के बीच सामाजिक संबंध होता है।... दुनिया में मानव मस्तिष्क से उत्पन्न कल्पनाएं स्वतंत्र और जीवित प्राणियों जैसा प्रतीत होती है जो आपस में एक दूसरे के साथ और मनुष्य जाति के साथ भी संबंध स्थापित करती रहती है। श्रम द्वारा निर्मित वस्तु की दुनिया में मनुष्य के हाथों से उत्पन्न होने वाली वस्तुएं भी यही करती हैं यही मालों की जड़ पूजा है।"[36] "जब श्रम से पैदा होने वाली वस्तुओं का विनिमय होता है। केवल तभी वे वस्तु के मूल्य में एक समरूप सामाजिक हैसियत प्राप्त करती हैं। जो उपयोगी वस्तुओं के रूप में उनके नाना प्रकार के अस्तित्व रूपों से भिन्न होती है। श्रम से पैदा होने वाली किसी वस्तु का उपयोगी वस्तु तथा मूल्य में यह विभाजन केवल उस समय व्यवहारिक महत्व प्रदान करती है जब विनिमय का इतना अधिक विस्तार हो जाता है। कि उपयोगी विनिमय करने के उद्देश्य से ही पैदा की जाती है।"[37] पहले गद्यांश से स्पष्ट है कि वस्तुओं और वस्तुओं के बीच संबंध स्थापित करने वाला वस्तु नहीं बल्कि व्यक्ति होता है क्योंकि भौतिक संसाधन में मनुष्य ही जान डालता है। मनुष्य द्वारा उत्पन्न विचार और उन विचारों की मूर्त अभिव्यक्ति या विचारों के अनुसार श्रम द्वारा निर्मित वस्तु को उपयोगी होना चाहिए। वह उपयोगी वस्तु व्यक्तियों के बीच आपसी संबंध बनाता है। जिसे कार्ल मार्क्स ने सामाजिक संबंध कहा है। उत्पादित वस्तु किसी व्यक्ति के या समूह की आवश्यकता की पूर्ति करती है। वह उसे खरीदेगा अवश्यकतापूर्ति बदले में विक्रेता को सम्मान और उपयोगिता के बदले में वस्तु का मूल्य देगा। दूसरे गद्यांश से स्पष्ट है कि श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु और उस वस्तु के वितरण या विक्रय से वस्तु और व्यक्ति जो उत्पादन कर रहा है या विक्रय कर रहा है दोनों से सामाजिक हैसियत में वृद्धि होगी। जिस प्रकार उपयोगी वस्तु को सामाजिक महत्त्व और व्यावहारिक महत्व अपनी उपयोगिता के कारण प्राप्त होता है उसी प्रकार उत्पादक को या विक्रेता को उनके श्रम, सृजन और उपयोगिता के कारण जो कि आवश्यकता पूर्ति कर रहा है' सामाजिक और व्यावहारिक महत्व प्राप्त होगा क्योंकि मनुष्य अपने श्रम से वस्तु को उपयोगी, सुलभ तथा गम्य बनाता है। वस्तु का उत्पादन का विक्रय ही उसे मूल्यवान बनाता है इसी में उसकी सामाजिक अहमियत है। इन दोनों विचारो से दलित बाहर नहीं है। यदि कोई दलित किसी वस्तु का सृजन करता है। जो मानव आवश्यकता को संतुष्ट करता है जितना वस्तु की कीमत होगी और वस्तु की कीमत उसकी उपयोगिता, श्रम और लागत तय करती है' लोगों का व्यवहार भी उसके प्रति उतना ही कीमती होगा। ऐसे में जाति का मूल्य घटेगा। दलित कार्यकर्ता चंद्रभान प्रसाद भी मानते हैं कि "दलित पूंजीवाद जाति व्यवस्था को ढहा सकता है।"[38]

दलित किसी वस्तु का सृजन भी कर सकता है, विक्रय भी कर सकता है दोनों कर सकता है। जहां तक हो सके नए वस्तु का उत्पादन करना चाहिए और जहां तक हो सके खुली आंखों से देखा जाना चाहिए कि लोगों की जरूरत क्या है? यह भी ध्यान देने योग्य बातें है कि वस्तुएं स्वयं मांग भी पैदा करती है। अतः समस्या को चिन्हित करके उसको हल करने के लिए वस्तु के निर्माण की संभावना है। इससे दलितों की आय में वृद्धि के साथ उनके जीवन स्तर और राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी। जब मालो से संबंध बनेगा ऐसे में हर वर्ग वर्ण से संबंध स्थापित होगा और तभी प्रेम स्थापित होगा और परिवारिक संबंध की संभावना बढ़ेगी। इतिहास हमें बताता है कि खान–पान, रहन–सहन, पूजा पाठ की भिन्नता होते हुए भी आवश्यकता पूर्ति करने वाले सम्मानित होते रहे हैं। अतः दलितों को खुद को अहमियत देना चाहिए तथा दास चित्तवृत्ति निकल कर फेंक देनी चाहिए। लोकतंत्र के इस युग में यदि दलितों द्वारा निर्मित वस्तु आवश्यकता को संतुष्ट करती है तो उसे लोग खरीदेंगे। तब उसे सामाजिक सम्मान प्राप्त होगा और धन भी प्राप्त होगा। ऐसे में जाति की कीमत उच्चता और निम्नता दोनों कम होगी। चित्र में वस्तु की कीमत या उपयोगिता और लोगों के व्यवहार में समानुपाती संबंध दिखाई देता है, और अन्वेषित वस्तु के मूल्य और व्यक्ति के मूल्य में अनुक्रमानुपाती संबंध दिखाया गया है तथा वस्तु और व्यक्ति की कीमत की तरह जाति की कीमत के बीच व्युत्क्रमानुपाती संबंध दिखाई देता है। इसी के आधार पर जाति का उन्मूलन का सिद्धांत आधारित है।

चित्र –1. जाति का उन्मूलन

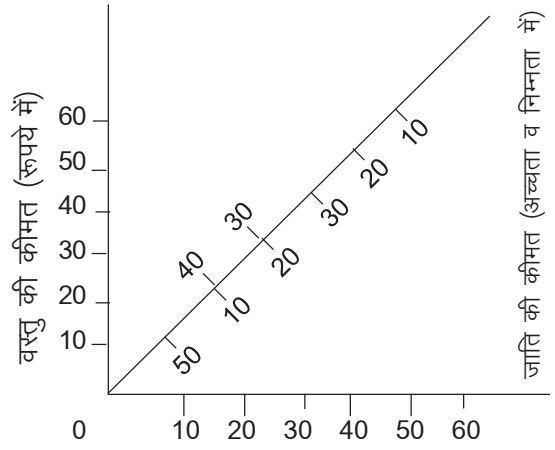

चित्र –2. जाति और मुद्रा की कीमत का ऐतिहासिक अवलोकन

गुणात्मक वृद्धि दर	0 1 2 3 4 8 16 32 64	मुद्रा की कीमत
अंकगणितीय वृद्धि दर	1 2 3 4 5 4 3 2 1	जाति की कीमत

यहां मुद्रा और जाति की कीमत को मापने का आधार अर्थशास्त्र में साख और साहित्य में विश्वास है। उपरोक्त चित्र–1. में वस्तु, व्यक्ति और जाति के कीमत की रेखा का अवलोकन कीजिए। शून्य वह बिंदु है जहां दलित अपने श्रम, रचनात्मकता और प्रतिभा का उपयोग ना करते हुए किसी वस्तु का निर्माण नहीं करता है। यहां निम्न जीवन स्तर है। यह सामाजिक हैसियत कम है या नहीं है। वहां जाति की कीमत चरम पर है। इसके विपरीत अगर कोई दलित व्यक्ति ऐसी नई चीज/वस्तु का उत्पादन या निर्माण करता है जिससे लोगों की इच्छा या आवश्यकता की पूर्ति होती है तो जितना वह वस्तु की कीमत रखता है उतना ही व्यक्ति का व्यावहारिक महत्व बढ़ता है अर्थात दलित की उपयोगिता वस्तु की उपयोगिता दोनों बराबर है। जब वह निर्माण करता है। ऐसे में जाति की कीमत घटती है। यदि कोई दलित किसी उपयोगी वस्तु का निर्माण करता है। जिसकी कीमत दस (रुपए में) तो उस वस्तु के बदले में व्यक्ति का महत्व या सम्मान भी दस अंक (सामाजिक हैसियत में) के बराबर रहेगा। मुद्रा की कीमत और व्यक्ति की हैसियत दोनों योग्यता, मूल्य और विश्वास से बनते है। मतलब शून्य बिंदु से बढ़ा हुआ है। उत्पादक या विक्रेता दलित का सम्मान इसलिए बढ़ेगा क्योंकि वह समाज की आवश्यकता की पूर्ति कर रहा है और इसलिए खरीदने वाला उत्पादक या विक्रेता का सम्मान करेगा। जैसे–जैसे वस्तु की कीमत बढ़ती जायेगी व्यक्ति की कीमत भी बढ़ती जाएगी और जाति की कीमत घटती जायेगी। यदि कोई दलित ऐसी वस्तु का निर्माण करता है जिसकी आवश्यकता की तीव्रता बहुत अधिक है और उसकी कीमत पचास रखता है तो उसका सम्मान भी पचास (हैसियत में) के कीमत के अंक के बराबर होगी। ऐसे में जाति की कीमत (उच्चता और निम्नता में) घटती हुई दस के बराबर होगी। ऐसे में आवश्यकता की तीव्रता पर दलित अनमोल रहेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां दलितों आर्थिक स्थिति शून्य है। वहां जाति की कीमत चरम पर है। जैसे–जैसे दलित वस्तु का निर्माण करता जाता और मुद्रा प्राप्त करता जाता है। वैसे–वैसे आर्थिक उन्नति बढ़ती जाती है और जाति की कीमत कम होती जाती है। दलितों को ऐसी वस्तु का उत्पादन करना चाहिए जो अनुपेक्षीय हो। जैसे दवा का निर्माण करे या दवा के कच्चा माल का उत्पादन करे। अस्पताल बनाए सड़क बनाए, घर का निर्माण करे। ऊर्जा और ट्रांसमिशन पर काम करे। समय निकाल कर दलितों को इंडिया टावर के निर्माण के बारे में सोचना चाहिए। अनिश्चित समय में भोजन, पानी, कपड़ा की उपलब्धता और संभावना पर काम करे। उत्पादन केवल भौतिक जगत में ही नहीं प्रत्यक्ष जगत में भी हो सकता है। चंद्रभान प्रसाद और मिलिंद कांबले राउंड टेबल को दिए गए अपने एक इंटरव्यू में कहते है कि "राष्ट्र को यह जानना चाहिए कि दलित ग्राही ही नहीं बल्कि दाता भी है।"[39] यह उदारवाद के दौर में सही समय है।

चित्र 2. में मुद्रा और जाति की कीमत का ऐतिहासिक मूल्यांकन है। मुद्रा की कीमत और जाति की कीमत की चाल को तुलनात्मक रूप में दिखाया गया है। मुद्रा की कीमत की वृद्धि दर गुणात्मक है तथा जाति की कीमत की वृद्धि दर अंकगणितीय है। मुद्रा की कीमत लगातार बढ़ती जा रही है जबकि जाति का मूल्य एक सीमा तक बढ़ने के बाद घट जाता है। जहां मुद्रा की कीमत शून्य है वहां जाति की कीमत एक है। जहां मुद्रा की कीमत एक है। वहां जाति की कीमत दो है। शुरुवात में जातीय का मान एक और मुद्रा का मान शून्य का मतलब यह है कि मुद्रा के उद्‌भव के पहले जाति का उद्‌भव हो चुका था। तीन बिंदु पर जाति अपने चरम पर

है। चौथे बिंदु पर आते ही मुद्रा और जाति दोनों का मूल्य समान हो जाता है। पांचवा बिंदु वर्तमान है। जहां मुद्रा का मूल्य जाति के मूल्य से अधिक है। और भविष्य में मुद्रा का मूल्य बढ़ेगा और जाति का मूल्य घटेगा। यहाँ मुद्रा की कीमत की रेखा को वस्तु की कीमत रेखा भी कहा जा सकता है। क्योंकि वस्तु की कीमत बढ़ने पर मुद्रा की कीमत घट जाता है और गरीब लोगों के लिए मुद्रा का मान बढ़ जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मुद्रा का मूल्य बढ़ रहा है। यह भी समझने की जरूरत है कि हमारे पूर्वजों के समय में जो जाति की कीमत थी वह कीमत हमारे समय में नहीं है। मतलब काम है, और आने वाले समय में यह घटेगा ही क्योंकि केंद्र में संविधान हैं जो जातिवाद का निषेध करता है दूसरी ओर मानव जीवन को जितना मुद्रा या मुद्रा की कीमत प्रभावित करता है। उतना जाति नहीं। वर्तमान में मानव जीवन में जो कुछ है या जो कुछ हो रहा है उसमें मुद्रा की भूमिका ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में है। साहित्य में जाति का उन्मूलन सौभाग्य के कोड़े प्रेमचंद द्वारा लिखी कहानी में नथुआ जब संगीतकार बन जाता है। तब वह नाथूराम कहलाने लगता है। और जब समाज में उसकी मांग या उपयोगिता बढ़ जाती है तो प्रेमचंद लिखते हैं उसकी जाति पूछने वाला कोई ना था। इसकी अभिव्यक्ति हमें जीवन में भी दिखाई देती है। एक कहावत है– लक्ष्मी तेरे तीन नाम कलुवा, कालूराम, कालूराम जी। जीवन में मुद्रा की वृद्धि से व्यक्ति के सम्मान में भी वृद्धि होती है जब कल्लूराम धनहीन है तो लोग कालुवा कहते हैं। जब थोड़ा धन बढ़ जाता है तब लोग कल्लूराम कहते हैं और जब धन की बढ़ोतरी अत्यधिक हो जाती है तो लोग कालूराम जी कहते है। यह लोक चेतना है। मुद्रा से जीवन में आत्मनिर्भरता आती है और सम्मान भी बढ़ता है। दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करने की हैसियत भी बढ़ जाती है। गोदान उपन्यास में होरी कहता है। "हम सब बिरादरी के चाकर हैं उसके बाहर नहीं जा सकते।" तब गोबर कहता है "रुपए हो तो ना तो हुक्का पानी का काम है ना जाति बिरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का पानी कोई नहीं पूछता।" यह पीढ़ी का संघर्ष है और विचारो में परिवर्तन है। पुरानी पीढ़ी का अलग और नई पीढ़ी का अलग तरह का विचार है। वर्तमान में यह संघर्ष चल रहा है और जाति बिरादरी का स्थान मुद्रा वाली हैसियत ले रहा है। जिसे होरी परिस्थिति मान रहा है, गोबर उन परिस्थितियों को जीवन जगत में प्रयोग कर रहा है। मालती का कथन है– इस नई सभ्यता का आधार धन है विद्या और सेवा और कुल और जाति सब धन के सामने हेय हैं। यही संक्रमण कालीन समाज उस समय था और आज भी है। जाति, बिरादरी, मरजाद यह सामंती समाज के तत्व है जबकि पूंजीवादी समाज में धन का महत्व है। धन के सामने सब छोटे हैं। इसको स्थापित करने की जरूरत है ताकि जीवन में बदलाव आ सकें। हमें उत्पादन की पारंपरिक प्रणाली में बदलाव करना चाहिए। होरी की दुर्दशा का यही कारण है कि वह जिस उत्पादन की पारंपरिक प्रणाली में काम कर रहा है वह शोषण कर रहा है। फिर वह उसी उत्पादन की प्रणाली में बना हुआ है। नए उत्पादन की प्रणाली से संबंध स्थापित नहीं कर रहा है। जातिवाद से मुक्ति के लिए "धर्म परिवर्तन"[40] या "क्रांति"[41] आवश्यक नहीं है। न हीं विदेश में जन्म लेने की जरूरत है, ना यह कोई आध्यात्मिक शक्ति से युक्त है। इसी जन्म में जाति का उन्मूलन हो सकता है और भविष्य का साध्य कभी साधन बन जाता है। कभी वर्तमान का साधन साध्य बन जाता है। विचारों का विकास होता है। व्यक्ति की स्थिति बदल जाने पर विचारों में

परिवर्तन भी होता है। जाति व्यवस्था को हमेशा से ठोकर लगी है। जाति स्वयं घायल है। बुद्ध धर्म से, भक्ति आंदोलन से, इस्लाम के और अंग्रेजो के शासन से और वर्तमान में संविधान और दलित कानून से जाति व्यवस्था कमजोर हुई है। व्यक्ति ने जाति व्यवस्था पर जीत दर्ज की है। वर्तमान में जाति व्यवस्था को पूंजीवाद से चुनौती मिल रही है। पूंजीवाद दलितों के लिए एक अवसर है। दलितों को पूंजीवाद स्वीकार करने की जरूरत है।

'**माल**– श्रम द्वारा निर्मित वस्तु ; '**हैसियत**– यह शब्द सामर्थ्य सूचक योग्यता के प्रदर्शन का शब्द है। यह दूसरे की भावनाओं की एक समझ और परवाह है। यह भाव वाचक संकल्पना है जो सकारात्मक रूप में हम दूसरों के साथ जैसा व्यवहार करते है और बदले में ऐसे व्यवहार की आशा करते है।

❐

सन्दर्भ –

1. *जाति का विनाश डॉ. अंबेडकर, अनु. राजकुमार, फॉरवर्ड प्रेस प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ. 76*
2. *मानव भूगोल माजिद हुसैन, रावत प्रकाशन जयपुर, चौथा संस्करण 2019, पृ. 57*
3. *उपरोक्त, पृ. 61*
4. *परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति फ्रेडरिक एंगेल्स, प्रगति प्रकाशन मास्कोए www.epustakalay.com पृ. 39*
5. *जाति का विनाश, डॉ. अंबेडकर, अनु. राजकिशोर, फॉरवर्ड प्रेस दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 60*
6. *उपरोक्त, पृ. 61*
7. *परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, फ्रेडरिक एंगेल्स, प्रगति प्रकाशन मास्को ww.epustakalay.com पृ. 38*
8. *अशोक का फूल निबंध, हजारी प्रसाद द्विवेदी www-hindisamay.com*
9. *जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, आनंद तेलतुंबडे, अनु. रुबीना सैफी आधार प्रकाशन पंचकूला, तृतीय संस्करण 2021, पृ. 47*
10. *बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर, संपूर्ण वांग्मय खंड 13, शूद्र कौन थे?, चौथा अध्याय शूद्र बनाम वर्ण, अंबेडकर प्रतिपृष्ठान प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2013, पृ. 43–45*
11. *उपरोक्त पृष्ठ 43 और शूद्रो का प्राचीन इतिहास राम शरण शर्मा, अनुवाद विजय बहादुर ठाकुर, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1979, पृ. 10*
12. *बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर, संपूर्ण वांग्मय खंड 13, शूद्र कौन थे?, चौथा अध्याय शूद्र बनाम वर्ण, अंबेडकर प्रतिष्ठान प्रकाशन, तीसरा संस्करण 2013, पृ. 45*
13. *उपरोक्त राम शरण शर्मा, पृ. 10*
14. *प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास ओम प्रकाश, न्यू एज इंटरनेशनल लिमिटेड प्रकाशन, पंचम संस्करण 2001, पृ. 135*
15. *उपरोक्त, पृ. 135*
16. *तमिल नाडु में गैर ब्राह्मणों के पुजारी बनने पर, संजय श्रीवास्तव, 21 जून 2021, Tv9hindi.com और क्या तमिलनाडु की तरह पूरे देश में गैर ब्राह्मण पुजारी बनने चाहिए. सुमित चौहान, shudra.Com 23 अगस्त 2021*
17. *जाति का विनाश, अंबेडकर फॉरवर्ड प्रेस प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2020, प . 95*
18. *आधुनिकता के आईने में दलित संपादन अभय कुमार दुबे, पृ. वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 24*
19. *जाति का उन्मूलन और जनवादी समाज आनंद तेलतुंबडे अनु. रुबीना सैफी, आधार प्रकाशन पंचकूला, तृतीय संस्करण 2021, पृ. 102*
20. *उपरोक्त, पृ. 50*
21. *gainst the Madness of Manu] Sharmila Rage] Navayana Publication New Delhi, Page 156, 157, 158, 161, 162-*
22. *जाति का विनाश, अंबेडकर फॉरवर्ड प्रेस प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2020, पृ. 96*

23. .उपरोक्त, पृ. 98
24. उपरोक्त, पृ. 99
25. उपरोक्त, पृ. 100
26. जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन आनंद तेलतुंबडे, अनु रुबीना सैफी, आधार प्रकाशन पंचकूला, तृतीय संस्करण 2021, पृ. 56
27. उपरोक्त, पृ. 60
28. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिंबाले, संस्करण 2020, पृ. 82
29. अंबेडकर व्यक्तित्व जीवन के कुछ पहलू, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, तीसरा संस्करण 2006, पृ. 39
30. भीमराव अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड 35, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय प्रकाशन नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2020, पृ. 217
31. उपरोक्त, खंड 40, अध्याय 244
32. रुपए की समस्या, खंड 12, प्रकाशन उपरोक्त, पृ. 312,
33. उपरोक्त, पृ. 222
34. पूंजी, कार्ल मार्क्स, अनु. ओम प्रकाश गगन, epustakalay.com पृ. 50.51
35. मार्क्सवाद, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, संसकरण अगस्त 1940 www.internetarchieve.Org पृ. 80–81
36. पूंजी कार्ल मार्क्स, अनु. ओम प्रकाश गगन, epustakalay-com पृ. 87
37. उपरोक्त, पृ. 87
38-Dalit Capitalism Can Turn the Caste Order] Activist Chandrabhan Prasad] bussiness standard 30 december 2018
39 Capital can Changing the Caste much faster than Any Human Beings] Shekhar Gupta, roundtableindian.co-in] 11 जून 2013
40. मुक्ति कौन पथे अंबेडकर का भाषण, www.tpsgness.com
41. जनवादी समाज और जाति का उन्मूलन, आनंद तेलतुंबडे अनु रुबीना सैफी, आधार प्रकाशन पंचकूला, तृतीय संस्करण पृ. 60–61

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 85–95

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

भारत में दिव्यांग महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु संबंधित नीतियाँ प्रभाव और समावेशन

आँचल
शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
E-mail: anchalkayat055@gmail.com Mob. 9650315396
डॉ. दिव्या रानी
सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005
E-mail: divya1@bhu.ac.in

सारांश

भारतीय समाज में दिव्यांगता आधारित भेदभाव प्रत्येक क्षेत्र में विघमान है। पुरुष हो या महिला सभी को इस भेदभाव और अनुचित व्यवहार में ही अपना जीवनयापन करना पड़ता है। भारत में अक्षमों की संख्या की चर्चा की जाए, तो यह लगभग 2.68 करोड़ है। जिसमें से 1.5 करोड़ पुरुष और 1.18 करोड़ महिलाएं शामिल है। हालांकि पुरुष और महिला दोनों ही दिव्यांगता आधारित रूढ़िवादी धारणाओं का सामना करते हैं। परंतु पुरुषों की तुलना में महिलाओं के साथ अधिक अनुचित व्यवहार,असमानताएं और सामाजिक भेदभाव होता है। क्योंकि उनका जीवन अक्षमता के साथ–साथ लिंग आधारित असमानताओं से भी प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप भारत में इसी संदर्भ में दिव्यांगों हेतु कई नीतियों का क्रियांवन किया गया। जिसमें दिव्यांग महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु विशेष प्रावधानों को निर्धारित किया गया। अतः इस पेपर में दिव्यांग महिलाओं हेतु निर्धारित सरकारी नीतियों के प्रावधानों का विवरण दिया जाएगा। साथ ही इन नीतियों का दिव्यांग महिलाओं के जीवन पर प्रभाव और सामाजिक समावेशन का मूल्यांकन किया जाएगा।

मुख्य शब्द–दिव्यांग, महिलाएं, नीतियां, समावेशन और भेदभाव

प्रस्तावना

वर्तमान में भारत देश निरंतर विकास की ओर बढ़ रहा है। विश्वभर में भारत ने स्वयं की प्रभावशाली पहचान बनाई है। देश के विकास और उसकी पहचान बनाने में देश की अर्थव्यवस्था, नीतियों और नागरिकों की अहम भूमिका होती है। अपितु प्रत्येक देश का यह कर्तव्य होता है कि वह अपने नागरिकों के मध्य बिना किसी पक्षपात के विभिन्न सुख–सुविधाओं, अधिकारों और उनके कल्याण हेतु प्रभावशाली नीतियों का निर्धारण करें। जिससे नागरिकों के साथ–साथ देश भी निरंतर विकासात्मक वृद्धि प्राप्त करता रहे। भारत देश में सामान्यतः सभी

नागरिकों हेतु विभिन्न योजनाएं एंव नीतियां बनाई गई है। लेकिन अगर चर्चा दिव्यांगों के अधिकारों और नीति–निर्माण की होती है, तो भारत वर्तमान समय में भी इस क्षेत्र में कहीं न कहीं अपूर्ण ही है। दिव्यांगों हेतु कई नियम–कानून और नीतियों को पूर्व से लेकर वर्तमान तक बनाया तो गया है। परंतु किसी भी नीति ने अपने लक्ष्यों को पूर्णतः सफलतापूर्वक प्राप्त नहीं किया है। सरकार की प्रत्येक नीति अपने प्रावधानों और समयावधि के अनुसार सफलता हासिल नहीं कर सकी। जबकि अगर यह सभी नीतियां अपने लक्ष्यों को पूर्ण करने में सफल होती तो अक्षमों का जीवन वर्तमान में देश के विकास की भांति अधिक उच्चतम स्थिति में होता लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सरकार द्वारा निर्धारित सभी नीतियों में अनेकों कमियों को देखा गया साथ ही यह असफल भी रही। जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिव्यांग लोगों और उनके जीवन पर ही पड़ा है। दूसरी ओर दिव्यांग जनसंख्या के आकड़ों पर प्रकाश डाले तो यह जनसंख्या लगभग 2.68 करोड़ के करीब है। जिसमे से 56 प्रतिशत पुरुष और 44 प्रतिशत महिलाएं किसी न किसी रूप से दिव्यांग है।[1] जोकि दिन–प्रतिदिन अनेकों बाधाओं और विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करते है। जबकि वर्तमान में भारत देश में अक्षमों की संख्या अत्यधिक होने की पूर्णतः संभावना हैं क्योंकि वर्तमान में 21 प्रकार की अक्षमताओं को कानूनी रुप से वैध माना जा चुका है। अतः अक्षमों के सटीक आकड़े तात्कालिक जनगणना के पूर्ण होने के बाद ज्ञात होंगे। इनमें महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाले, तो ज्ञात होता है कि समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुषों की तुलना में अधिक दयनीय है। क्योंकि वह जन्म से लेकर वयस्क होने तक दिव्यांगता के साथ–साथ अन्य अनेक भेदभावों और अनुचित धारणाओं का सामना करती है जैसे–जाति, लिंग, रंग–रूप और गरीबी आदि के आधार पर वह विविध प्रकार की असमानताओं से जूझती है।[2] इन सब भेदभावों से प्रभावित होकर वह जीवन के प्रत्येक पढ़ाव पर स्वयं को असफल महसूस करती हैं और उनमें स्वयं यह धारणा उत्पन्न हो जाती है कि शायद वह समाज में समानता और अधिकारों हेतु योग्य नहीं है। वह आंतरिक रूप से यह निर्णय कर लेती है कि उनका जीवन अन्य महिलाओं या व्यक्तियों जैसा सामान्य नहीं हो सकता उन्हें शिक्षा, रोजगार, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, संपत्ति और खुश रहने का कोई हक या अधिकार नहीं हैं और ऐसा निर्णय वह सदैव अपने सामाजिक अनुभव और गैर–दिव्यांग लोगों द्वारा किए गए व्यवहार के कारण ही करती हैं अतः वह स्वयं को सामाजिक परिवेश से सीमित कर लेती हैं। इसके अलावा वह जीवन–भर रूढ़िवादी और सांस्कृतिक रीति–रिवाजों जैसी प्रथाओं एंव परिस्थितियों के कारण भी एक सामान्य जीवन से पृथक हो जाती हैं। इन सभी विविधताओं और चुनौतियों के साथ–साथ समाज में व्यक्तिगत रूप से अपनी पहचान बनाना तथा समाज में अन्य सभी नागरिकों की भांति भागीदारी और समावेशन प्राप्त करना दिव्यांग महिलाओं के लिए मुश्किल और असंभव–सा प्रतीत होता है। दूसरी ओर विभिन्न प्रकार की नीतियों को दिव्यांगों के अधिकारों और सुरक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। लेकिन वर्तमान में भी दिव्यांग महिलाओं की सुरक्षा, समावेशन और अधिकार सशक्त नहीं हुए हैं।

भारतीय संदर्भ में गैर–दिव्यांग महिलाओं हेतु ही अनेकों अपराध जैसे घरेलू उत्पीड़न, रेप, लैंगिक भेदभाव आदि बड़े स्तर पर विघमान हैं। ऐसे में चर्चा अगर दिव्यांग महिलाओं की हो, तो यह स्थिति अधिक भयावह हैं। अक्सर उनके अपने घर में ही उनके साथ असमानता और

उत्पीड़न जैसी घटनाओं के कारण उनके अधिकारों का हनन होता रहता हैं। इसके अतिरिक्त इनकी इस स्थिति के मुख्य कारण समाज का नकारात्मक दृष्टिकोण, असुरक्षा, सुलभता की कमी और जागरूकता का अभाव आदि हैं।[3] इन सभी कारणों की उपस्थिति से ही अक्षम महिलाएं विभिन्न प्रकार के अधिकारों, सुविधाओं और सामान्य जीवन निर्वाह करने से वंचित रहे जाती हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक जागरूकता और सार्वजनिक पहुंच का अभाव भी उन्हें रोजगार और शिक्षा ग्रहण करने में समाज से पृथक कर देता हैं। अतः जीवन–पर्यंत आर्थिक निर्भरता, बेरोजगारी और अशिक्षित होने का अनुभव करते हुए, मृत्यु प्राप्त करने तक वह दयनीय जीवन का अनुभव करती हैं क्योंकि हमारा समाज केवल सक्षम, शिक्षित और शारीरिक योग्यता वाले व्यक्तियों को ही स्वीकार करता हैं।[4] साथ ही विशेषकर महिलाओं हेतु तो भारतीय समाज में ''सर्वगुण संपन्न'' जैसी धारणा को भी स्वीकारा जाता हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि विशेष रूप से केवल दिव्यांग महिलाओं के लिए कोई सरकारी नीतियां समाज में मौजूद नहीं है। जो केवल दिव्यांग महिलाओं के अधिकारों हेतु कार्य करे। इसके विपरीत भारतीय नारीवादी परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करे तो ज्ञात होता है कि विमल ठाकर, कमला भसीन, निवेदिता मेनन, और ऋतु मेनन आदि ने भी अपने विचारों और कार्यों में दिव्यांग महिलाओं को शामिल करना आवश्यक नहीं समझा। इन सभी ने महिलाओं के प्रति भेदभावों, सामाजिक असमानताओं, सामाजिक अधिकारों और न्याय आदि हेतु कार्यों को ही मुख्य समझा। उदाहरण–स्वरूप कमला भसीन ने महिलाओं की पैरवी करते हुए उनके सशक्तिकरण, विकास, शिक्षा और हिंसा आदि की व्यापक व्याख्या की हैं साथ ही पितृसत्तात्मक समाज का भी निरंतर विरोध किया।[5] लेकिन उन्होंने भी दिव्यांग महिलाओं की चर्चा सीधे तौर पर कहीं भी नहीं की। यह बहुत ही दुख और आश्चर्य की बात है कि भारतीय नारीवादी होने के पश्चात भी इन नारीवादियों ने अक्षम महिलाओं को ही अपने मुद्दों से बाहर रखा। जबकि अक्षम महिलाओं की स्थिति सदैव से ही अधिक निम्नतर रहती हैं। दूसरी ओर पश्चिमी नारीवादियों ने भी कुछ ऐसा ही किया। इस प्रसंग में हेलेन मिकोशा लिखती हैं कि प्रारंभ से ही दिव्यांग महिलाओं और लिंग से संबंधित अध्ययनों की कमी रही है। 1970 के पूर्व में अक्षम महिलाओं की उपस्थिति को विलिप्त देखा गया हैं। हालांकि 20वी के पश्चात से अनेकों कार्यकर्ताओं और शोधकर्ताओं ने अक्षमता के संदर्भ में नवीन तथ्यों को खोजना शुरू किया।[6] इसी प्रकार मोरिस भी अपने विचारों की प्रस्तुतीकरण देते हुए लिखती हैं कि नारीवादियों ने अपने प्रारंभिक कार्यों में महिलाओं की अक्षमता को प्रमुख मुद्दों के अंतगर्त नहीं रखा। इसलिए नारीवादी दिव्यांग महिलाओं के प्रत्यक्ष अनुभवों और समस्याओं को समझने में विफल ही रहे क्योंकि उनके मुख्य उदेश्यों में दिव्यांग महिलाएं शामिल ही नहीं थी।[7] अतः भारतीय और पश्चिमी दोनों ही परिप्रेक्ष्य में अक्षम महिलाओं के मुद्दों को कोई विशेष अहमियत नहीं मिली। कहीं ना कहीं दोनों ही परिप्रेक्ष्य में इन महिलाओं को बाहर रखा गया।

पुनः चर्चा नीतियों की करे तो कुछ मुख्य नीतियां हैं, जो समस्त दिव्यांगों के लिए भारत सरकार द्वारा वैधानिक रूप से निर्धारित की गई है। उनमें कुछ प्रावधानों को विशेष रूप से दिव्यांग महिलाओं के सशक्तिकरण और समाज में उनकी गरिमा एंव भागीदारी वृद्धि हेतु संरक्षित किया गया है। परंतु तद्पश्चात भी सामाजिक परिदृश्य में दिव्यांग माहिलाएं एक नहीं, बल्कि अनेकों बाधाओं, समस्याओं और विसंगतियों का सामना करते हुए, उम्र–भर समाज में अपनी

पहचान, समावेशन और स्थिति में सुधार के लिए संघर्ष करती रहती हैं। अतः यह लेख इन सभी मुद्दों पर आधारित है कि भारत में दिव्यांग महिलाओं हेतु किस तरह की नीतियां है, क्या यह नीतियां महिलाओं के विशेष संदर्भ में उनकी सुरक्षा एंव सशक्तिकरण के लिए हैं या नहीं। इसलिए उपरोक्त सभी प्रसंग और मुद्दों को समझने के लिए सर्वप्रथम दिव्यांगता एंव उसकी परिभाषाओं को समझना आवश्यक हैं।

दिव्यांगता की परिभाषा

सर्वप्रथम अक्षमता की परिभाषा पर नजर डाले तो यू. एन. सी. आर. पी. डी. (UNCRPD) ''दिव्यांगता को विकासात्मक अवधारणा की श्रेणी में रखा है। यह भी सुनिश्चित किया कि अक्षमता दिव्यांग व्यक्तियों, व्यवहार और पर्यावरणीय बाधाओं के मध्य बातचीत के परिणामस्वरूप होती हैं जो उनके जीवन में पूर्ण एंव प्रभावी भागीदारी को बाध्य या प्रभावित करती हैं''।[8]

इसी तरह डब्लू. एच. ओ. (WHO) दिव्यांगता को ''स्वास्थ्य संबंधी दुर्बलता जैसे–डाउन सिंड्रोम, सेरेबल पाल्सी, अवसाद से ग्रसित व्यक्तियों के मध्य परस्पर क्रियाओं के संदर्भ में संबोधित करता हैं। जिसके अंतगर्त दुर्गम परिवहन, नकारात्मक दृष्टिकोण, सार्वजनिक भवन और सामाजिक समर्थन का सीमित होना शामिल हैं''[9] इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर अक्षमता को भारत में आर. पी. डब्लू. डी. एक्ट (RPWD ACT), 2016 के अनुसार दिव्यांग व्यक्ति का अर्थ ''दीर्घकालिक अवधि से मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक या संवेदी अक्षमता, जो बाधाओं के साथ बातचीत और उनकी पूर्ण और प्रभावी सामाजिक भागीदारी में बाधा उत्पन्न करती हैं''।[10]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि विभिन्न संस्थानों, अधिनियमों और संधियों द्वारा अक्षमता को अलग–अलग अर्थों में परिभाषित किया गया हैं। जिसके कारण कभी–कभी सामान्य व्यक्तियों के लिए अक्षमता को समझना कठिन भी होता हैं। क्योंकि हर एक दस्तावेज में पृथक परिभाषा दी गई है। इसी तरह विभिन्न विचारकों ने भी अक्षमता हेतु पृथक–पृथक अवधारणाओं को प्रस्तुत किया हैं, जैसे इरविन गोफमैन ''अक्षमता'' और ''कलंक'' शब्द के बीच संबंध स्थापित करते है। ''कलंक'' शब्द से उनका आभिप्रय ऐसी धारणा से है जिसमें किसी व्यक्ति या समाज की रूढ़िवादी मनोवृति या मानसिकता के कारण अन्य किसी व्यक्ति के गुणों और क्षमता को कलंकित किया जाता हैं। इसी के आधार पर वह बताते है कि हमारा समाज दिव्यांग व्यक्तियों को उनकी अक्षमता के कारण ''कलंक'' जैसी धारणा का शीर्षक देकर उन्हें असामान्य महसूस कराता हैं।[11] जहां एक ओर गोफमैन ने दिव्यांगो हेतु सामाजिक ''कलंक'' की व्याख्या दी, वहीं दूसरी ओर अमर्त्य सेन ने ''अक्षमता'' को अपने ''क्षमता दृष्टिकोण'' से जोड़ा और बताया कि कोई भी व्यक्ति क्या कर सकता है या क्या नहीं, यह उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति के आधार पर पूर्णतः स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इसी तरह दिव्यांगता के आधार पर भी किसी व्यक्ति की क्षमता का आंकलन करना अनुचित ही हैं।[12] अतः ''क्षमता दृष्टिकोण'' और ''कलंक'' की अवधारणा दोनों के साक्ष्य हमे वर्तमान युग में भी मिलते हैं। सामाजिक परिवेश में गैर–दिव्यांग व्यक्तियों और समाज द्वारा अक्सर अक्षम लोगों के कार्य की क्षमता या श्रेणी को उनकी दिव्यांगता से मापा जाता हैं। इसी तरह दिव्यांगो और विशेषकर दिव्यांग महिलाओं को ''कलंक'' जैसी विचारधारणाओं का सामना प्रत्येक क्षेत्र

में करना पड़ता हैं। हालांकि विभिन्न सरकारों ने इन सभी भेदभावों एंव अनुचित धारणाओं की समाप्ति हेतु नवीन पहलों और नीतियों का आयोजन किया है। जिससे अक्षमों को अधिकार और समाज को जागरूकता प्राप्त हो। इसी संदर्भ में निर्मित नीतियों की व्याख्या नीचे की गई है।

भारत में दिव्यांगो हेतु नीतियां

भारत में दिव्यांगों की दयनीय स्थिति का इतिहास काफी लंबा रहा है। परंतु बदलते परिवेश में धीरे–धीरे दिव्यांगों हेतु एक सकारात्मक सोच का उदय भी हुआ। परिणामस्वरूप पूर्व से लेकर वर्तमान तक दिव्यांगों के लिए अलग–अलग उदेश्यों के साथ कई नीतियों और अधिनियमों का निर्माण हुआ। जैसे–भारतीय पुनर्वास अधिनियम, 1992, विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995, राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999, नैशनल पॉलिसी फॉर पर्सन विद डिसेबिलिटीस–2006 और विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 आदि में महत्वपूर्ण प्रावधानों के साथ दिव्यांगों के अधिकारों को वैधानिक रूप दिया गया।[13] इन समस्त कानूनों के माध्यम से अक्षमों के अधिकारों को सुरक्षित करते हुए यह स्वीकार किया गया कि समाज में सभी दिव्यांग भी सम्मानपूर्ण जीवन निर्वाह करने के कानूनी हकदार हैं। यदि किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा इन नियमों का उल्लंघन होता है या कोई इनके विरुद्ध अनुचित क्रिया करता हैं तो उसके खिलाफ उचित कार्यवाही एंव दंड का निर्णय लिया जाएगा।[14] उपरोक्त प्रत्येक अधिनियम विशेष विशेषता के साथ निर्धारित किए गए है जैसे–भारतीय पुनर्वास अधिनियम, 1992 को विशेषकर पुनर्वास, राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 को केवल चार अक्षमता (ओटीज्म, मेंटल रिटार्डेशन, बहु–विकलांगता और सेरेबल पाल्सी) हेतु बनाया गया। इसी तरह अन्य अधिनियमों की भी स्वयं में कुछ विशेषताएं रही हैं लेकिन यह निराशावादी रहा कि शुरुआती अधिनियमों में दिव्यांग महिलाओं के अधिकारों, सुरक्षा, सशक्तिकरण और समानता आदि की उपस्थिति अधिक नहीं दिखाई दी। हालांकि वर्तमान समय में इन मुद्दो को गंभीरता से लिया जा रहा है जिसका विवरण नीचे पेश किया गया हैं।

दिव्यांग महिलाओं हेतु नीतियां

यह दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि प्रारंभिक अधिकतर नीतियों में दिव्यांग महिलाओं को शामिल ही नहीं किया गया। क्योंकि नीति–निर्माण की बात हो या सामाजिक परिवेश की महिलाओं को महत्त्व देना आवश्यक नहीं समझा गया। पूर्व से ही दिव्यांग महिलाओं का समाज में कोई विशेष महत्त्व या अस्तित्व नहीं माना गया। वर्षों पश्चात नैशनल पॉलिसी फॉर पर्सन विद डिसेबिलिटीस–2006 में दिव्यांग महिलाओं के संदर्भ में लघु चर्चा को शामिल किया गया।

सर्वप्रथम इस नीति में सुनिश्चित किया गया कि, 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 93.01 लाख ऐसी महिलाएं है, जो किसी न किसी दिव्यांगता से ग्रसित है।[15] जबकि वर्तमान में यह आकड़े लगभग 1.18 करोड़ है।[16] नीति में स्वीकार किया गया कि दिव्यांग महिलाओं को भी विभिन्न प्रकार के भेदभाव और दुर्व्यवहार से सुरक्षा की अति आवश्यकता है। सरकार को महिलाओं की आवश्यकता और अधिकारों का मनन करते हुए, उनके लिए भी पुनर्वास, रोजगार और शिक्षा जैसे विशेष कार्यक्रम और योजनाएं निर्धारित करनी होंगी। उन्हें व्यवसायिक प्रशिक्षण, घर देने मे सहायता, दिव्यांग लड़कियों को गोद लेने हेतु प्रोत्साहन और कौशल

रोजगार आदि सुविधाएं उपलब्ध करने एंव पुनर्वास कार्यक्रम सरकार द्वारा आयोजित किए जाएगे।[17] साथ ही सरकार कार्यरत दिव्यांग महिला हेतु आवास सुविधा और वृद्ध दिव्यांग महिलाओं के लिए घरों की सुविधा उपलब्ध करेगी। सामान्यताः समाज में यह भी देखा गया कि दिव्यांग महिलाएं अपने बच्चों की देख–रेख करने में समर्थ नहीं होती, क्योंकि उनके पास कोई स्थाई रोजगार या अन्य सुविधाएं नहीं होती। अपितु सरकार उनकी आर्थिक सहायता के लिए एक विशेष वित्तीय सहायता कार्यक्रम प्रारंभ करेगी। ताकि सभी दिव्यांग महिलाएं अपने बच्चों की प्रारंभिक देख–रेख उचित प्रकार से करने में सक्षम हो। परंतु यह समर्थन केवल दो वर्ष और दो बच्चों तक ही सीमित होगा।[18] इस राष्ट्रीय नीति के इन सभी नियमों का मुख्य उदेश्य समस्त अक्षम महिलाओं को आत्मनिर्भर और सशक्तिकरण प्रदान करना हैं जिससे वह अपना जीवन अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वयं के निर्णयों के आधार पर अपना जीवन निर्वाह कर सके। इस राष्ट्रीय नीति के अलावा पुनः लगभग दस वर्ष पश्चात विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 में दिव्यांग महिलाओं के विषय में विशेष चिंतन किया गया तथा दिव्यांग महिलाओं के अधिकारों, सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि से संबंधित प्रावधानों को इस अधिनियम में निर्मित किया गया। इस अधिनियम में दिव्यांगों हेतु कुल 17 अध्याय और 102 धाराओं को प्रस्तुत किया गया। अधिनियम के अंतगर्त 21 प्रकार की दिव्यांगताओं को उचित परिभाषाओं के साथ परिभाषित किया गया जिनके आधार पर यह सुनिश्चित हुआ कि भारत में विविध प्रकार की अक्षमताएं विघमान है और इन सभी विभिन्न अक्षमताओं के लक्षण, प्रभाव और आवश्यकताए भी पृथक–पृथक हैं। जिनके लिए अधिनियम में विशेष प्रावधान भी पेश किए गए।[19]

महिलाओं हेतु भी अधिनियम के अध्याय–2 की धारा–4 को "महिला और दिव्यांग बच्चों" के प्रसंग में सुनिश्चित किया गया। धारा–4 (1) में लिखा गया कि सरकार ऐसे उपाए करेगी जिससे दिव्यांग महिलाएं और बच्चे समान रूप से अपने अधिकारों का आनंद प्राप्त कर सके।[20] साथ ही अध्याय–5 और अध्याय–6 की भी कुछ धाराओं को विशेष रूप से दिव्यांग महिलाओं के लिए वैधानिक रूप प्रदान किया गया। इन धाराओं में मुख्यतः यौन और प्रजनन, आजीविका, दिव्यांग महिलाओं के बच्चों हेतु पालन–पोषण और बैंचमार्क दिव्यांगता वाली महिलाओं को विशेष योजनाओं एंव कार्यक्रमों में कृषि भूमि, आवास आवटनं और सभी गरीबी उन्मूलन परियोजनाओं में 5 प्रतिशत का आरक्षण आदि उपलब्ध करने का प्रावधान दिया। हालांकि दिव्यांग महिलाओं के भारतीय आकड़ों के देखते हुए, यह सभी प्रावधान लघु प्रकृति भांति ही हैं। क्योंकि दिव्यांग महिलाओं की अवश्यकताओं और समस्याओं की प्रकृति इन प्रावधानों से कहीं अधिक हैं।[21] इसी कारण भारतीय सरकार द्वारा निरंतर सुधारात्मक प्रयासों की पहल होती रहती हैं।

दिव्यांग महिलाओं के जीवन में समावेशन और प्रभाव

हालांकि वर्तमान समय में भी दिव्यांग महिलाओं की स्थिति अधिक सशक्त नहीं हैं। कहीं न कहीं वह आज भी जाति, रंग–रूप, पारिवारिक असमर्थन और दिव्यांगता आदि के आधार पर भेदभावों का निरंतर सामना कर रही हैं परंतु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि दिव्यांग महिलाओं की स्थिति वर्षों पूर्व जैसी अधिक दयनीय ही हैं। सर्वप्रथम संविधान के भाग–3 और भाग–4 में भारतीय मूल के नागरिक होने के नाते सभी नागरिकों अर्थात सभी दिव्यांगों को भी समान

अवसर एंव समानता प्रदान की गई हैं। संविधान के अनुसार इन अवसरों और समानता हेतु किसी भी प्रकार के लिंग भेद या दिव्यांगता आधारित भेदभाव को स्वीकार नहीं किया गया हैं। सभी नागरिकों चाहे वे पुरुष, महिला या दिव्यांग आदि को पूर्णतः अधिकार प्रदान किए गए हैं। इसी के संदर्भ में दिव्यांगता हेतु भारतीय समाज में नवीन परिवर्तनों और अवधारणाओं ने भी जन्म लिया हैं। जिसके अंतगर्त दिव्यांगों और दिव्यांग महिलाओं को गैर–दिव्यांग नागरिकों के समान ही सम्मान, स्वतंत्रता और अवसर प्रदान किए जा रहे हैं।[22] महिलाओं के संदर्भ में इन विशेष प्रावधानों के आधार के रूप में सामाजिक पक्षपात, लिंगभेद, जातीय भेदभाव, अक्षमता और असमानता आदि को अनुचित माना गया क्योंकि यह स्वीकार किया गया कि महिलाएं इन सभी कारणों से अत्यंत प्रभावित और सामाजिक रूप से कमजोर होती है। अतः उनकी इस स्थिति को अनदेखा नहीं किया जा सकता। बल्कि भविष्य में अक्षम महिलाओं के संरक्षण और समावेश के लिए नवीन नीतियां क्रियांवित होनी चाहिए।[23]

जिनके आधार पर समावेशन और सशक्तिकरण में उन्नति करते हुए वह अन्य क्षेत्रों जैसे राजनीति, पंचायत, विभिन्न समितियों और निर्णय लेने वाले निकायों आदि में अपना प्रतिनिधित्व कर सके। उनके प्रतिनिधित्व हेतु सरकार को व्यापक स्तर पर जागरूकता और भौतिक पहुंच को निर्धारित करना चाहिए। क्योंकि वर्तमान में अक्षम महिलाएं शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों में तो वृद्धि हासिल कर रही है लेकिन राजनीति और अन्य क्षेत्रों में उनकी भागीदारी नाममात्र ही है जिसका मुख्य कारण आज भी जागरूकता, पहुंच और प्रावधानों के क्रियांवन मे देरी ही है।[24] हालांकि भारत सरकार द्वारा दिव्यांगों हेतु निर्धारित विशेष नीतियों, योजनाओं और अभियानों के माध्यम से भी दिव्यांग महिलाओं की सामाजिक स्थिति और समावेश में परिवर्तन आया हैं। जिसमे सबसे अहम भूमिका विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 ने निभाई। जिसके क्रियांवित होते ही इसे शीघ्रता से संपूर्ण देश में सक्रिय रूप प्रदान करने का प्रयास वर्तमान में भी प्रारंभ हैं। इस अधिनियम को कठोरता से शीघ्र प्रभाव में लाने हेतु सभी संबंधित विभागो को आदेश दिए गए कि वह यथासंभव संपूर्ण देश में इस अधिनियम को क्रियांवित करने के लिए उचित कार्यवाही करे। साथ ही सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के उच्च अधिकारियों से भी यह आग्रह किया गया कि वह अपने–अपने राज्यों में उचित कार्यवाही के साथ अक्षमों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करते हुए, इस अधिनियम को प्रत्येक स्तर पर लागू करे। दूसरी ओर सुगम्य भारत अभियान, दिव्य कला मेला, कौशल विकास योजना, छात्रवृति और दिव्यांग रोजगार सेतु आदि योजनाओं के माध्यम से भी समस्त अक्षमों के लिए विविध प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हुई हैं। जिसकी प्रत्यक्ष लाभार्थी अक्षम महिलाएं भी रही।[25] अतः इन विभिन्न सुधारात्मक प्रयासों के पश्चात सामाजिक परिवेश के प्रत्येक क्षेत्र में दिव्यांग महिलाओं की भागीदारी और समावेशन में वृद्धि हुई हैं। जिसे हम नीचे प्रस्तुत मुख्य बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते है।

1) पारिवारिक समर्थन – अक्षम महिलाओं के समावेश और सशक्तिकरण को सफल व असफल रूप देने में सर्वश्रेष्ठ भूमिका उनके परिवार की होती हैं क्योंकि दिव्यांग महिलाओं का प्रथम संघर्ष उनके स्वयं के परिवार से ही प्रारंभ होता हैं। भारतीय समाज में अधिकतर परिवार दिव्यांग बेटियों को शिक्षा, रोजगार, स्वतंत्रता और निर्णय लेने आदि हेतु सक्षम नही समझते।[26] लेकिन

बदलते सामाजिक परिवेश, कानूनों तथा सामाजिक जागरूकता के कारण वर्तमान में कुछ परिवारों ने अपनी अक्षम बेटियों को पूर्णतः समर्थन प्रदान करना आरंभ किया हैं। हालांकि अक्षम महिलाओं की संख्या के अनुसार समर्थन देने वाले परिवार समाज में कम ही है। अधिकतर परिवारों का विचार यही होता है कि उनकी बेटी को शिक्षा, रोजगार, विवाह और अन्य अधिकारों की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनका परिवार उनके लिए भोजन और रहन–सहन की सुविधा कर सकता हैं। इससे अधिक उनकी बेटी को और क्या ही चाहिए परंतु कई परिवार अब ऐसे भी है जिनके द्वारा भौतिक आवश्यकताओं, आर्थिक सहायता, स्नेह और मनौवैज्ञानिक समर्थन के फलस्वरूप उनकी बेटियाँ उच्च शिक्षा और रोजगार जैसे क्षेत्रों में सफलता की सीढ़िया चढ़ रही हैं।[27]

2) शिक्षा में समावेशन– पूर्व में अक्षम कन्याओं की शिक्षा का कोई मूल्य नहीं समझा जाता था। समाज हो या स्वयं का परिवार कोई भी इस तथ्य को कदापि स्वीकार नहीं करता था कि उनकी बेटी की शिक्षा, उसकी दिव्यांगता से कही अधिक आवश्यक हैं लेकिन अनेकों सरकारी नीतियों, योजनाओं एंव प्रयासों जैसे समावेशी शिक्षा, समग्र शिक्षा, सर्व–शिक्षा, बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओ और शिक्षा का अधिकार आदि के परिणामस्वरूप दिव्यांग कन्याओं की शिक्षा के परिप्रेक्ष्य ने नवीन दिशा की ओर अग्रसर किया। साथ ही प्रतिमाह 200 रुपए के वजीफे की सुविधा भी प्रदान की जाती हैं। अतः विद्यालयों में व्यापक संख्या में अक्षम छात्राएं शिक्षा ग्रहण कर रही हैं साथ ही सरकार और विद्यालयों के माध्यम से उन्हें उचित सहयोग भी प्राप्त हो रहा हैं।[28]

3) रोजगार में समावेशन– अधिनियम, 2016 के अध्याय–4 के अनुरूप अक्षम महिलाएं भी रोजगार के अवसरो हेतु वैधानिक अधिकारी हैं। अधिनियम के पश्चात से अक्षम महिलाओं की रोजगार से संबंधित स्थिति में लघु सुधार हुआ हैं। तत्काल अवधि में अक्षम महिलाएं भी किसी न किसी रूप में कार्य कर रही हैं। हालांकि यह आकड़े बहुत अधिक दिखाई नहीं देते जैसा–कि जनगणना 2011 के आकड़े दर्शाते हैं कि केवल 23 प्रतिशत दिव्यांग महिलाएं किसी ना किसी रूप में कार्यरत हैं जबकि अक्षम पुरुषों की संख्या 47 प्रतिशत हैं।[29] परंतु फिर भी पूर्व की परिस्थितियों की तुलना में वर्तमान समय में दिव्यांग महिलाओं का रोजगार व स्व–व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश होना प्रारंभ हुआ हैं और दिव्य कला मेला जैसे कार्यक्रमों द्वारा अक्षम महिलाओ और अन्य सभी अक्षमों को रोजगार के साथ–साथ आंतरिक मनोबल में भी वृद्धि हासिल हुई हैं।

4) वित्तीय स्वतंत्रता– आज के आधुनिक युग में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जीने के लिए आर्थिक रूप से सशक्त होना अति आवश्यक हैं। परंतु दिव्यांग महिलाएं आर्थिक रूप से काफी दुर्बल स्थिति में रहती हैं। ऐसे में सरकार द्वारा स्व–व्यवसाय, रोजगार हेतु ऋण और पेंशन योजना जैसी सुविधाएं अक्षम महिलाओं के लिए किसी वरदान से कम नहीं हैं।[30] इस सब से पृथक रैलवे टिकट में रियायत एंव व्यवसाय प्रशिक्षण के दौरान छात्रवृति–जैसी कुछ लघु वित्तीय सहायता भी अक्षमों के जीवन को सरल बनाने और उनके अधिक व्यय को कम करने में अहम भूमिका निभा रही है। इनके माध्यम से अक्षम महिलाएं व्यक्तिगत और वित्तीय रूप से स्वतंत्र हुई हैं। भले ही इनके जीवन निर्वाह करने का क्षेत्र लघु ही हो परंतु आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने से वह अधिक सक्षम हुई हैं।

5) सामाजिक समावेशन– सरकार द्वारा अधिनियम 2016 के क्रियांवित होने के पश्चात से सामाजिक सुगमता में वृद्धि हुई हैं क्योंकि अधिनियम के अध्याय–8 की धारा–40, 41 और 42 सार्वजनिक पहुंच, यातायात में सुगमता और सभी दिव्यांगो की विभिन्न प्रकार के संचार में भागीदारी सुनिश्चित करती हैं।[31] साथ ही सुगम्य भारत अभियान–जैसी योजनाओं ने सामाजिक परिवेश को अधिक सुगम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। अभियान में यह माना गया कि एक उचित सामाजिक समावेशन वही होगा जिस व्यवस्था में समाज का प्रत्येक व्यक्ति दिव्यांग, बच्चे, महिलाएं और वृद्ध व्यक्ति आत्मनिर्भर, स्वतंत्र और सम्मानपूर्वक विधि द्वारा समाज और राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सके। इस समग्र समावेशन को प्राप्त करने के लिए अभियान को सुगम वातावरण, सुविधाओं और सार्वजनिक स्थानों आदि को अधिक से अधिक सुगम्य बनाने के आधार पर निर्धारित किया गया। जिससे अब सभी दिव्यांग चाहे वह महिला हो या पुरुष को सामाजिक गतिविधियों में भागीदारी और अपने दैनिक कार्यों हेतु अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं।[32]

6) वैधानिक और व्यक्तिगत अधिकारों का संरक्षण– अक्षमों हेतु निर्धारित विभिन्न अधिनियमों और कानूनों जैसे–भारतीय पुनर्वास अधिनियम, 1992, राष्ट्रीय न्याय अधिनियम, 1999, राष्ट्रीय पॉलिसी फॉर पर्सन विद डिसेबिलीटी–2006 आदि के द्वारा समाज में उन्हें कानूनी रूप से सामान्य जीवन निर्वाह करने का अधिकार प्राप्त हुआ हैं। हालांकि इनमें से कुछ अधिनियमों में विशेषकर अक्षम महिलाओं की चर्चा अधिक नहीं हुई हैं फिर भी इन कानूनों द्वारा दिव्यांग महिलाओं को भी स्वंय के लिए वैधानिक अधिकार तो मिले ही हैं। जिनके माध्यम से वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सशक्त पहचान निर्धारित करने में वर्तमान में भी कार्यरत हैं।[33] इन विभिन्न नियमों के परिणामस्वरूप ही अक्षम महिलाएं समाज और परिवार मे सम्मानपूर्वक जीवन निर्वाह कर रही हैं। वर्तमान में दिव्यांग महिलाएं इन वैधानिक अधिकारों के आधार पर अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाने में सक्षम हुई हैं। समाज में अब दिव्यांग महिलाओं का अस्तित्व भी सशक्त होकर सामने आया है। मौलिक अधिकारों से लेकर संपत्ति के अधिकारों तक उनकी पहुंच मुमकिन हो पाई है। साथ ही अन्य नागरिकों की भांति वह भी प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ोतरी की ओर बढ़ रही हैं।

निष्कर्ष

आधुनिक युग में भारत देश प्रत्येक क्षेत्र जैसे–राजनीतिक, आर्थिक, सांकृतिक और रोजगार आदि में उन्नति कर रहा है साथ ही अपने नागरिकों के विकास हेतु भी समय–समय पर नवीन नीतियों और कानूनों का निर्धारण कर रहा है। इसी संदर्भ में भारतीय नागरिक होने के आधार पर दिव्यांगो के लिए भी भारतीय सरकार उत्तरदायी हैं। परंतु अपने दिव्यांग नागरिकों के प्रति भारतीय सरकार की दृष्टि काफी लंबी अवधि के पश्चात पड़ी। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 45 वर्षों की दीर्घकालिक समयावधि के पश्चात भारत सरकार ने विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 को अक्षमों के अधिकारों हेतु निर्धारित किया। लेकिन इस अधिनियम में अनेकों त्रुटियों के साथ–साथ अक्षम महिलाओं के विशेष अधिकारों को भी नजरअंदाज किया गया क्योंकि अक्षम महिलाएं सदैव से विभिन्न प्रकार से जाति, धर्म, लिंग और आर्थिक परिस्थियों आदि के आधार पर अनेकों पक्षपातों का सामना करती हैं अपितु उनके संरक्षण के लिए विशेष प्रावधानों की आवश्यकता सदैव से महसूस

हुई हैं। इन्हीं आधारो और अनेकों आंदोलनों की मदद से बाद के वर्षों में कई अधिनियमों व नीतियों का निर्धारण हुआ। जिनमे सबसे प्रचलित विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 रहा जिसमे विशेषकर अक्षम महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक सहायता, रोजगार, और पहुंच आदि–जैसे अधिकारों का विवरण प्रस्तुत किया गया। अतः इन सभी प्रयासों के माध्यम से वर्तमान में अक्षम महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार आया हैं। शिक्षित अक्षम महिलाएं अब रोजगार, स्व–व्यवसाय और सामाजिक भागीदारी में अपना योगदान दे रही है। परंतु यह स्थिति अभी व्यापक स्तर तक दिखाई नहीं देती हैं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में तो आज भी परिस्थितियां दुर्लभ हैं। भारतीय सरकार को अक्षम महिलाओं के समावेशन को अधिक बढ़ावा देने हेतु अधिक योजनाओं और व्यापक जागरूकता फैलानी होगी साथ ही कुछ नीतियों को केवल अक्षम महिलाओं हेतु निर्धारित करने की अति आवश्यकता हैं।

❒

सन्दर्भ –

1) *ऑफिस ऑफ द चीफ कमिशनर फॉर पर्सन विद डिसएबिलिटीज. (08 08 2021). डिसेबिलिटी इन इंडिया. ऑफिस ऑफ द चीफ कमिशनर फॉर पर्सन विद डिसएबिलिटीजः http://www-ccdisabilities-nic-in/resources/disability &india population-से पुनर्प्राप्त*
2) *जोगदन, डॉ. अ. म., एवं मेजर डॉ एच. ज. न. (2022), इन्क्लूसन ऑफ वूमेन विद डिसेबिलिटी इन इंडिया, द इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी, 10 (01), पृ. 1072–1078.*
3) *शर्मा, म. दास, न. (2021), इनवीसीबल विकटम्स ऑफ वाइलेन्सः ए जेन्डर एंड डिसेबिलीटी पर्सपेक्टिव ऑफ क्रोनावाइरस इन इंडिया. इकनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 56 (16), पृ. 02–10.*
4) *लालरिंगहलुई, एच. (2023). चेलेंजीस फेस बाइ वूमेन विद डिसेबिलीटीस इन इंडिया. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉटस, 11 (07), पृ. 413–417.*
5) *भसीन, क. (2006). वूमेन एमपावरमेंट इन द इंडियन कांटेक्स्ट. न्यू दिल्लीः योजना.*
6) *मीकोशा, ह. (2010). द काम्प्लेक्स बैलेंसिंग एक्ट ऑफ चॉइस, ऑटोनोमी, वैल्यूड लाइफ, एंड राइट्सः ब्रिंगिंग ए फेमिनिस्ट डिसेबिलिटी पर्सपेक्टिव टू बाओटिक्स. द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फेमिनिस्ट अप्रोचेस टू बायोटिक्स, 03(02), पृ. 1–8.*
7) *मॉरिस, ज. (1993). फेमिनिज्म एंड डिसेबिलिटी. सेज पब्लिकेशन, पृ. 57–70.*
8) *संयुक्त राष्ट्र. (2007). कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑफ पर्सन्स विद डिसेबिलिटीज. न्यू यॉर्कः संयुक्त राष्ट्र.*
9) *विश्व स्वास्थ्य संगठन, (09 फरवरी 2024), डिसेबिलीटी, डब्लू.एच.ओः https://www-who-int/health&topics/disability#tab¾tab_1 से पुनर्प्राप्त*
10) *दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग, (2016). राइट्स ऑफ पर्सन विद डिसेबिलिटी एक्ट, 2016, न्यू दिल्लीः दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग*
11) *गोफमैन, इ. (1963). स्टिग्माः नोट्स ऑन द मेनेजमेंट ऑफ स्पॉइलड आइडेंटिटी. न्यू यॉर्कः साइमन और शूस्टर.*
12) *सेन, अ. (1985). कमोडिटीज एंड कैपेबिलिटीज. न्यू यॉर्कः एल्सेवियर साइंस.*
13) *अद्लखा, र., एवं मंडल, स. (2009), डिसेबिलीटी लॉ इन इंडियाः पेरादिगंम शिफ्ट फॉर एवोलविंग डिस्कोर्स, इकनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 44, पृ. 62–68.*
14) *सिंह, अ., एवं लक्षलता, प. (2021). ए क्रिटिकल एनलिसिस ऑफ राइट्स ऑफ पर्सन विद डिसेबिलीटी इन इंडिया एंड इट्स कम्पेरिसन विद यूएसए एंड यूके डिसेबिलीटी लॉ. ग्रदिवा रिव्यू जर्नल, 07 (09), पृ. 16–29.*
15) *सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, (2006), नैशनल पॉलिसी फॉर पर्सन विद डिसेबिलिटीस, न्यू दिल्लीः सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री.*
16) *मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इमपलीमेंटेशन्, (2017), डिसेब्लड पर्सन्स इन इंडिया ए स्टेटिस्टिकल प्रोफाइल 2016, न्यू दिल्लीः मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इमपलीमेंटेशन्.*

17) लेखा, श्र. क. (2021), रिव्यू ऑफ नैशनल पॉलिसी फॉर पर्सन विद डिसेबिलीटी, 2006, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीपीलीनरी एजुकेशनल रिसर्च, 10 (3(02)), पृ. 54–56.
18) सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, (2006), नैशनल पॉलिसी फॉर पर्सन विद डिसेबिलिटीस, न्यू दिल्लीः सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री.
19) नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेरस (2020), स्टेटस ऑफ डिसेबिलीटी इन इंडिया, न्यू दिल्लीः नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेरस.
20) दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग, (2016). राइट्स ऑफ पर्सन विद डिसेबिलिटी एक्ट, 2016, न्यू दिल्लीः दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग.
21) दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग, (2016). राइट्स ऑफ पर्सन विद डिसेबिलिटी एक्ट, 2016, न्यू दिल्लीः दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग.
22) सोसाइटी फॉर डिसेबिलिटी एंड रिहेबिलीटेशन स्टडीस, (2001), इम्प्लॉइमेंट राइट्स ऑफ डिसेबल्ड वुमेन इन इंडिया, न्यू दिल्लीः सोसाइटी फॉर डिसेबिलिटी एंड रिहेबिलीटेशन स्टडीस.
23) नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेरस (2020), स्टेटस ऑफ डिसेबिलीटी इन इंडिया, न्यू दिल्लीः नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेरस.
24) नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेरस (2020), स्टेटस ऑफ डिसेबिलीटी इन इंडिया, न्यू दिल्लीः नैशनल इंस्टिट्यूट ऑफ अर्बन अफेरस.
25) भारत सरकार, (2024), फर्म अवेर्नेस टू एक्शनः इंडियस कमिट्मेंट टू डिसेबिलीटी राइट्स, न्यू दिल्लीः प्रेस इनफार्मेशन ब्योरों.
26) चहल, स. (2021), वूमेन विद डिसेबिलीटी इन इंडिया, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रेसर्च थॉटस, पृ. 1936–1943.
27) मिश्रा, डॉ. स. (2024). डिसेब्लड वूमेन एंड फॅमिलि सपोर्टः ए सोसिलाजिकल स्टडी ऑफ लखनऊ डिस्ट्रिक, एजुकेशनल एडमिनीस्ट्रेशन थ्योरी एंड प्रेक्टिस, पृ. 3838–3841.
28) यूनिसेफ, (2021), डिसेबिलीटी–इन्क्लूसिव एजुकेशन प्रेक्टीसीस इन इंडिया, साउथ एशियाः यूनिसेफ.
29) मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इमपलीमेंटेशन्, (2017), डिसेब्लड पर्सन्स इन इंडिया ए स्टेटिस्टिकल प्रोफाइल 2016, न्यू दिल्लीः मिनिस्ट्री ऑफ स्टेटिस्टिक्स एंड प्रोग्राम इमपलीमेंटेशन्.
30) दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग, (07–11–2024), नैशनल दिव्यांगजन फाइनैन्स एंड डेवलोपमेंट कॉर्परेशन, दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभागः https://depwd-gov-in/national&handicapped&finance&and& development & corporation से पुनर्प्राप्त
31) दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग, (2016). राइट्स ऑफ पर्सन विद डिसेबिलिटी एक्ट, 2016, न्यू दिल्लीः दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग.
32) विसाखा, स. घोष, द., एवं मुरुगशेन, न. (2022), जेन्डर एंड डिसेबिलीटी इन्क्लूशन इन अर्बन डेवलोपमेंट. कर्नाटकाः विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी.
33) गुप्ता, भ., एवं अरोड़ा, र. (2020), राइट्स एंड इन्टाइटलमेंटस ऑफ पर्सन विद डिसेबिलीटीस इन इंडियाः एन ईवैल्यूऐशन, जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स लॉ एंड प्रेक्टिस, 03 (01), पृ. 21–33.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121 अप्रेल–जून, 2025 पृ. 96–109

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

किसान पहचान की राजनीति में राजनीतिक दलों की बदलती हुई भूमिका का विश्लेषण, 1980–2022 उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ में

सौम्या राय

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

Email id- saumya58@bhu.ac.in Mob. 6306319582

डॉ. दिव्या रानी

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

E-mail: divya1@bhu.ac.in

सारांश

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक विकास संबंधी नीतियों के तहत कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का प्रयास किया गया। यह परिवर्तन सरकार द्वारा किया गया जो कि किसी न किसी राजनीतिक दल की महत्वाकांक्षा का परिणाम था। चूंकि भारत की आधी से अधिक आबादी कृषि एवं कृषि संबंधी गतिविधियों से जुड़ी हुई है इसलिए भारत में राजनीतिक दलों के एजेंडे में हमेशा से ही कृषि एवं किसान संबंधी मुद्दे रहे हैं। इसके साथ ही साथ कृषि अर्थव्यवस्था में किसानों के हितों के प्रतिकूल परिवर्तनों ने किसान आंदोलनों को जन्म दिया है। किसान आंदोलनों में राजनीतिक दलों एवं नेताओं की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका रही है तथा राजनीतिक दलों ने किसान आंदोलनों की मजबूत स्थिति को देखते हुए किसानों को जाति, धर्म, क्षेत्र और संस्कृति आदि के आधार पर मुखर करने का कार्य किया है। यह पेपर उत्तर प्रदेश में किसान मुद्दों और किसान पहचान का अध्ययन करता है तथा इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि राजनीतिक दलों ने किस स्तर तक किसानों को जाति, धर्म, क्षेत्र और संस्कृति आदि के आधार पर विभाजित किया है और क्या यह विभाजन किसानों को पहचान की राजनीति के लिए प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द–राजनीतिक दल, उत्तर प्रदेश, किसान पहचान, पहचान की राजनीति

भूमिका

समकालीन समय में पहचान अत्यंत लोकप्रिय तथा व्यापक धारणा हो गई है। यह व्यक्ति के विविध पक्षों से संबंधित है अर्थात व्यक्ति की पहचान को उसके राष्ट्रीय, लैंगिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, वर्ग, व्यवसाय, आदि के संदर्भ में देखा जा सकता है या उस संदर्भ में उसकी पहचान को परिभाषित किया जा सकता है। इसी संदर्भ में अमर्त्य सेन ने लिखा है कि वर्तमान समय में ऐसा देखा जाता है कि पहचान की व्याख्या या तो धर्म या सम्प्रदाय या संस्कृति के संदर्भ

में की जाने लगी है तथा इसके अन्य पहलुओं की उपेक्षा कर दी जाती है लेकिन पहचान की सबसे संतुलित तथा उत्तम व्याख्या यही है कि विविध पहचान की धारणा को अपनाया जाए।[1] इसलिए पहचान के संदर्भ में यह पूरी तरह से व्यक्ति पर निर्भर करता है कि विभिन्न परिस्थितियों या भूमिकाओं के निर्वाह में वह अपनी कौन सी पहचान को वरीयता प्रदान करता है तथा कौन सी पहचान के संदर्भ में व्यवहार करता है।

अगर भारत में देखा जाए तो पहचान या पहचान की राजनीति की धारणा को नए सामाजिक आंदोलन के तहत चिह्नित किया जा सकता है, जिसके अन्तर्गत समाज के विभिन्न पक्षों ने अपनी पहचान के आधार पर अपने मुद्दों को मुखर करने का कार्य किया। इसी पहचान के संदर्भ में जब हम किसानों की पहचान की या किसान पहचान की राजनीति की बात करते हैं तो यह नए किसान आंदोलन के रूप में परिलक्षित होता है। भारत में 1980 के दशक में जितने भी किसान आंदोलन शुरू हुए, उन्हें नए किसान आंदोलनों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें नई मांगों तथा नए मुद्दों को प्रधानता दी गई। नव किसान आंदोलन के संदर्भ में अगर किसान पहचान को देखा जाए या किसान पहचान की राजनीति की बात की जाए तो ज्यादातर किसान पहचान उनकी एकजुट या सामूहिक पहचान के रूप में दिखाई पड़ती है, परंतु अस्सी–नब्बे के दशक में किसान आंदोलन में जाति, धर्म, क्षेत्र, संस्कृति आदि मुद्दे प्रभावी होने लगे तथा इस आधार पर आंदोलन में विभाजन की स्थिति उत्पन्न होने लगी। नए किसान आंदोलन की एक विशेषता यह रही है कि इसमें किसानों का स्वरूप भी बदला है अर्थात जैसा कि बायर्स ने लिखा है कि नव किसान आंदोलन में पीजेंट के बजाय फार्मर्स का महत्व बढ़ गया तथा पर्यावरण एवं महिलाओं के मुद्दों पर बल दिया जाने लगा। जैसा कि देखा जा सकता है कि महाराष्ट्र और कर्नाटक के किसान आंदोलनों में महिलाओं के मुद्दों पर बल देकर एक नए बहस को जन्म देने का प्रयास किया गया।[2] लेकिन उत्तर प्रदेश में देखा जा सकता है कि महिलाओं के मुद्दों के प्रति भारतीय किसान यूनियन ने परंपरागत रूप से पितृसत्तात्मक सोच के आधार पर कार्य किया।[3] जब 1978 में भारतीय किसान यूनियन अर्थात बीकेयू का निर्माण हुआ तो उसने किसानों को एकजुट करने का प्रयास किया, ताकि सभी बड़े एवं छोटे किसानों तथा सभी जातियों एवं धर्मों को एकजुट कर किसान पहचान के अंतर्गत लाया जा सके।[4] लेकिन उसके बाद के किसान आंदोलन जाति, धर्म, क्षेत्र, संस्कृति, आदि के आधार पर विभाजित होने लगे। इसमें राजनीतिक दलों की भूमिका को विशेष रूप से देखा जा सकता है, क्योंकि उस कालावधि में ऐसे दलों का उदय हुआ जो जातिगत एवं सांप्रदायिक राजनीति से प्रभावित थे तथा उसको बढ़ावा देते थे। अस्सी–नब्बे के दशक में मंडल, मंदिर, मार्केट(बाजार) जैसे मुद्दों का जोर था और किसान पहचान की राजनीति उससे प्रभावित थी। लेकिन पहचान के संदर्भ में जब वर्तमान किसान आंदोलन अर्थात 2020–21 के किसान आंदोलन की बात की जाती है तो किसान पहचान की राजनीति किसानों की आम पहचान या सामूहिक पहचान के रूप में संदर्भित होती है।

यह पेपर उत्तर प्रदेश में किसान पहचान की राजनीति को पहचान के सिद्धांत के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास करता है। इसमें किसानों तथा भारत में राजनीतिक दलों के परस्पर संबंधों पर प्रकाश डालते हुए, किसान पहचान की राजनीति में राजनीतिक दलों की बदलती हुई भूमिका का मूल्यांकन किया गया है।

किसान एवं राजनीतिक दल

भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था एक जीवंत प्रक्रिया के रूप में विकसित हुई है जिसकी सफलता में निश्चित रूप से राजनीतिक दलों की निर्णायक भूमिका रही है।[5] आजादी के बाद राजनीतिक दलों ने अपनी नीतियों तथा मुद्दों के रूप में किसान, गांव एवं कृषि को आवश्यक रूप से शामिल किया, क्योंकि भारत में शहरों की अपेक्षा गांवों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग निवास करता है। सरकारी आंकड़ों की बात की जाए तो 2011 की जनगणना के अनुसार, यहां की 68.8 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है।[6] तथा यहां के कुल कार्यबल का 54. 6 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों से जुड़ी हुई है।[7] इसलिए राजनीतिक दल किसानों या कृषि को अनदेखा नहीं कर सकते अतएव राजनीतिक दलों ने अपने वोट बैंक के लिए सदैव ही कृषि तथा किसान संबंधी मुद्दों को लक्षित किया है। ऐसा नहीं है कि किसानों संबंधी मुद्दे राजनीतिक दलों के घोषणाओं या कार्यक्रमों में आजादी के बाद से मुखर होने लगे अपितु किसान और किसान संबंधी मुद्दे स्वाधीनता पूर्व भी उतने ही महत्वपूर्ण थे जितने कि आज हैं। जैसा कि जैफ्रेलॉट ने बताया कि स्वाधीनता पूर्व कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने अपने स्थापना(1934) सम्मेलन में किसान संघों के गठन तथा जमींदारी प्रथा के उन्मूलन एवं भूमि के पुनर्वितरण की बात की।[8]

इस संदर्भ में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को देखा जाए तो आर्थिक विकास के संदर्भ में सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम, भूमि सुधार, सहकारी खेती, राष्ट्रीय विस्तार योजना आदि नीतियां अपनाई परंतु कृषि की अपेक्षा सरकार ने उद्योग में अधिक लाभ अर्जित किया, क्योंकि उद्योगों के विकास पर अधिक ध्यान दिया गया।[9] इसलिए कृषि क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने एवं खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता के लिए के लिए सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी ने हरित क्रांति का रास्ता अपनाया जिसमें निःसंदेह सफलता मिली, जिसके संदर्भ में पाई ने लिखा है कि हरित क्रांति के द्वारा सरकार द्वारा तकनीकी सुधार पर बल दिया गया, जिससे कुछ किसानों को लाभ मिला तथा अमीर या पूंजीवादी किसानों का एक नया वर्ग उभरा तथा उस समय किसानों के जो भी आंदोलन हुए वे अमीर किसानों के आंदोलन थे।[10] किसान एवं किसान आंदोलनों की स्थिति ऐसी थी कि कोई भी राजनीतिक दल इसे अनदेखा नहीं कर सकता था। अस्सी के दशक में किसान आंदोलन के प्रभाव के बारे में हसन ने तर्क दिया है कि उस समय राजनीतिक दलों के नेता किसान आंदोलनों से जुड़ने एवं उसे प्रभावित करने का प्रयास करते थे। कांग्रेस तथा लोकदल ने भारतीय किसान यूनियन के साथ आंदोलन से जुड़ने का प्रयास किया।[11] इसी प्रकार किसान नेता के रूप में प्रसिद्ध, दो बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे चौधरी चरण सिंह सीमित समय के लिए प्रधानमंत्री बने, जिससे कृषि एवं किसान संबंधी मुद्दे केंद्रीय राजनीति में आ गए। उन्होंने किसानों की पहचान को राष्ट्रीय स्तर तक अभिव्यक्त किया तथा वे उद्योगों की अपेक्षा कृषि एवं किसानों की प्रमुखता पर बल देते थे।[12] चौधरी चरण सिंह के बाद भारतीय किसान यूनियन(बीकेयू) के नेता महेंद्र सिंह टिकैत ने किसान पहचान का मजबूत आधार प्रस्तुत किया तथा अस्सी के दशक में कई बड़े सफल किसान आंदोलनों का नेतृत्व किया तथा सरकार को झुकने पर भी मजबूर किया। किसान नेताओं का राजनीतिक दलों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंध रहा है। किसान आंदोलनों ने सत्ता के परिवर्तन या उसके

निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है जैसा कि लिंडबर्ग ने तर्क दिया है कि 1989 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस सरकार(राजीव गांधी) के हार में किसान आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।[13] 1982 में कर्नाटक और आंध्र प्रदेश विधानसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार में किसान नेताओं का प्रभाव था। इसके अलावा 1984 के संसदीय चुनावों में कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवारों के जीत के अंतर को कम करने में महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन की महत्वपूर्ण भूमिका थी।[14] अस्सी के दशक में जो भी किसान आंदोलन हुए उन्हें नए किसान आंदोलन के रूप में परिभाषित किया जाता है। लिंडबर्ग, ओमवेट और ब्रास ने अस्सी के दशक के किसान आंदोलन को नए सामाजिक आंदोलन का ही भाग माना है।[15] इसे इस रूप में भी समझा जा सकता है कि पूर्व के किसान आंदोलनों में किसानों तथा कृषि संबंधी मुद्दे राजनीतिक दलों द्वारा उठाए जाते थे परंतु नए किसान आंदोलनों में किसान संबंधी नए मुद्दे किसानों द्वारा या किसान संगठनों द्वारा उठाए गए।[16]

किसानों और राजनीतिक दलों के बीच कई मुद्दों पर संघर्ष तथा कई मुद्दों पर सहयोग भी देखा गया है। कभी–कभी केन्द्र सरकार की नीतियों के प्रति किसान संगठनों के दृष्टिकोण में भिन्नता भी परिलक्षित हुई है। जैसा कि ब्रास ने कहा है कि किसान आंदोलनों में क्षेत्रीय, आर्थिक और सांस्कृतिक आधार पर भिन्नता पायी गयी जिसके कारण किसान आंदोलनों के दृष्टिकोण में भी अंतर मौजूद था। जैसा कि जब नब्बे के दशक में कांग्रेस पार्टी द्वारा आर्थिक उदारीकरण किया गया तो महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन ने इसका समर्थन किया तो उत्तर प्रदेश में भारतीय किसान यूनियन तथा कर्नाटक के कर्नाटक राज्य रायथा संघ द्वारा इसका विरोध किया गया।[17] पाई ने मत व्यक्त किया कि वैश्वीकरण ने बड़े एवं छोटे किसानों के बीच वर्ग विभाजन को जन्म दिया है। इसलिए अब पूर्व की तरह संयुक्त रूप से किसानों का आंदोलन संचालित नहीं किया जा सकता।[18] परंतु 2020–21 का किसान आंदोलन इस धारणा के विपरीत है क्योंकि इसमें किसानों ने भारतीय जनता पार्टी सरकार द्वारा निर्मित तीन कृषि कानूनों का विरोध संयुक्त एवं व्यापक रूप से किया। जैसा कि राजालक्ष्मी ने कहा है कि 2020–21 के किसान आंदोलन ने विभिन्न जातियों एवं समुदायों के बीच एकजुटता की भावना को उत्पन्न किया है।[19] इस एकजुटता की भावना ने किसानों को कृषि मुद्दों के संदर्भ में इक्कीसवीं सदी में जाति, धर्म, क्षेत्र एवं संस्कृति जैसी भावनात्मक या व्यक्तिनिष्ठ पहचान से ऊपर उठा कर वस्तुनिष्ठ या सामूहिक पहचान के लिए मुखर किया।

किसान पहचान की राजनीति तथा उत्तर प्रदेश में राजनीतिक दलों की भूमिका

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ये राज्य और जनता के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करते हैं। इसमें एक महत्वपूर्ण परिघटना क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का उदय है जो कि ज्यादातर क्षेत्रीय, धार्मिक, जातिगत, भाषाई पहचान से जुड़े रहे हैं। भारत में राजनीतिक दलों की भूमिका कभी सकारात्मक तो कभी नकारात्मक रही है। इन क्षेत्रीय दलों ने क्षेत्रीय मुद्दों के आधार पर किसान पहचान की राजनीति में भी बड़ी भूमिका का निर्वाह किया है।

इस पेपर में उत्तर प्रदेश में किसान पहचान की राजनीति के संबंध में राजनीतिक दलों की भूमिका मूल्यांकन किया गया है जिसमें ज्यादातर अस्सी के दशक के बाद से किसान पहचान

के पहलुओं पर ध्यान दिया गया है। आजादी के पूर्व उत्तर प्रदेश संयुक्त प्रांत के नाम से जाना जाता था। स्वाधीनता के बाद 24 जनवरी 1950 को उत्तर प्रदेश राज्य अस्तित्व में आया।[20] चूंकि एक कृषि प्रधान राज्य होने के नाते विभिन्न राजनीतिक दलों के एजेंडे में यहां के किसान और कृषि संबंधी मुद्दे रहे हैं और यहां विभिन्न जाति, उपजाति, धर्म, और संस्कृति के लोग एक साथ निवास करते हैं जिसने किसान पहचान की राजनीति के मुद्दे को भी मुखर करने का कार्य किया है। चन्द्र और अन्य ने उत्तर प्रदेश में किसानों की एकजुट पहचान के संबंध में बताया है कि आजादी के पूर्व उत्तर प्रदेश में 17 अक्तूबर 1920 को 'अवध किसान सभा' की स्थापना हुई। इसके द्वारा जो भी किसान आंदोलन संचालित हुए उसमें ऊँची एवं नीची जाति, दोनों के ही किसान शामिल थे।[21] इससे स्पष्ट होता है कि किसानों की किसान के रूप में एकजुट पहचान स्वाधीनता से पूर्व ही किसानों के बीच मौजूद थी। उत्तर प्रदेश में किसान पहचान की राजनीति को प्रभावित करने में भारतीय जनता पार्टी के साथ समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाजवादी पार्टी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। क्योंकि इन दलों के उदय में जातिगत एवं साम्प्रदायिक राजनीति की भूमिका रही। इसके पूर्व चौधरी चरण सिंह ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री (1967 और 1970) के रूप में कृषि संबंधी कई नीतियां बनाई तथा सिंचाई तथा कृषि आगत पर सब्सिडी की भी व्यवस्था की।[22] इसके साथ ही साथ किसानों की एकजुट पहचान पर बल देते हुए कृषि एवं किसानों के मुद्दों को केंद्रीय राजनीति में लाने का प्रयास किया। परंतु उनकी मृत्यु के पश्चात किसानों की राजनीति में एक रिक्तता प्रतीत होने लगी तथा किसान पहचान की राजनीति में एक संकट दृष्टिगत होने लगा, जिसके बाद किसान आंदोलन में किसानों के एक महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में भारतीय किसान यूनियन की स्थापना हुई जिसने अपने बैनर तले कई किसान आंदोलनों का सफलतापूर्वक संचालन किया तथा किसानों को एक किसान पहचान रूप में संगठित मंच प्रदान किया। हसन ने अपने अध्ययन में बताया है कि उत्तर प्रदेश में भारतीय किसान यूनियन ने 1989 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की अपेक्षा राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को समर्थन दिया, जिसने कांग्रेस पर जीत को सुनिश्चित किया तथा इसके साथ–साथ अस्सी के दशक में हिंदुत्व की राजनीति पर उत्तर प्रदेश में किसानों का मुद्दा हावी रहा।[23] परंतु राजनीतिक दलों की सांप्रदायिक तथा जातिगत राजनीति से प्रभावित होकर किसान आंदोलन भी जाति, धर्म, क्षेत्र, एवं संस्कृति आदि पर विभाजित होने लगा या किसान अपनी जाति, धर्म, क्षेत्र, संस्कृति की पहचान के आधार पर संगठित होने लगे। सतेंद्र कुमार ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी की सांप्रदायिक राजनीति ने उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी की सांप्रदायिक राजनीति के लिए अनुकुल परिस्थितियां प्रदान की हैं।[24]

इन दलों की जाति आधारित एवं धर्म आधारित राजनीति ने किसान की एकजुट पहचान या सामूहिक पहचान को खतरा उत्पन्न किया। 2020–21 के किसान आंदोलन के द्वारा किसानों की एकीकृत पहचान की राजनीति की जीत हुई क्योंकि उसी समय उत्तर प्रदेश सहित पांच राज्यों के चुनाव थे जिसके कारण सत्ताधारी दल भारतीय जनता पार्टी को कृषि कानूनों को वापिस लेना पड़ा। इसके साथ–साथ खाद पर सब्सिडी में वृद्धि की, गन्ने के भाव में वृद्धि आदि नीतियां बनाई गई। इसका लाभ बीजेपी को उत्तर प्रदेश के चुनावों में जीत के साथ हुआ।

समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, तथा भारतीय जनता पार्टी

उत्तर प्रदेश में किसान पहचान की राजनीति तथा राजनीतिक दलों के संबंधों को समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी तथा भारतीय जनता पार्टी के आधार पर समझा जा सकता है, क्योंकि इन दलों ने किसानों को जाति, धर्म, क्षेत्र आदि के आधार पर मुखर करने का काम किया है तथा किसान पहचान की राजनीति को प्रभावित करने का कार्य किया है।

उत्तर प्रदेश में समाजवादी विचारधारा पर आधारित समाजवादी पार्टी का गठन मुलायम सिंह यादव द्वारा अक्तूबर 1992 में किया गया। मुलायम सिंह यादव ने राम मनोहर लोहिया को अपना राजनीतिक गुरु मानते हुए समाजवादी परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य किया। मुलायम का उत्तर प्रदेश विधानसभा में प्रवेश संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर 1967 में हुआ तथा 1968 में लोहिया की मृत्यु के बाद उन्होंने भारतीय क्रांति दल (बीकेडी) की सदस्यता ली। बीकेडी किसानों के हितों की पक्षधर मानी जाती थी। लेकिन इससे यूपी के पश्चिम (समृद्ध जाट किसान) और पूर्व (गरीब किसान) के बीच की दूरी को कम नहीं किया जा सका। जब मंडल राजनीति की शुरुआत हुई तो भारतीय लोक दल (बीएलडी) और लोक दल (एलडी) की स्थिति यूपी में स्थायी नहीं रह सकी। इसके बाद एलडी (ए) से राष्ट्रीय लोक दल (आरएलडी) तथा एलडी (बी) से समाजवादी पार्टी का उदय हुआ। इस तरह आरएलडी पश्चिम के समृद्ध जाट किसानों के प्रतिनिधित्व का दावा प्रस्तुत करती है, जबकि सपा पूर्व के निचले और मध्यम किसानों के प्रतिनिधित्व का दावा प्रस्तुत करती है।[25] इसी प्रकार यदि बहुजन समाज पार्टी के गठन के संबंध में देखा जाए तो कांशी राम ने सन् 1984 में इसकी अर्थात बीएसपी की स्थापना की, जो अछूतों की आकांक्षाओं पर आधारित थी। कांशी राम ने अपना पूरा ध्यान पार्टी के संगठन और विकास पर लगाया। बहुजन समाज पार्टी ने उत्तर प्रदेश में 1985 में औपचारिक शुरूआत की जिसके तहत बिजनौर की लोकसभा सीट के उपचुनाव में मायावती को उम्मीदवार के रूप में उतारा गया।[26] वास्तव में बीएसपी के संदर्भ में कहा जाता है कि 1978 में बामसेफ (बैकवर्ड एंड माईनॉरिटी कम्यूनिटीज एम्प्लॉयीज फेडरेशन) की स्थापना हुई, जिसकी शाखा (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) ने आगे बढ़कर बीएसपी जैसे राजनीतिक दल की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।[27] भारतीय जनता पार्टी की स्थापना के संबंध में देखा जाए तो डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने 1951 में भारतीय जनसंघ की स्थापना की, जो 1977 में अन्य राजनीतिक दलों के साथ विलय के द्वारा जनता पार्टी में मिल गई। लेकिन आगे जनता पार्टी में आंतरिक अवरोध आने के कारण वह टूट गई तथा 6 अप्रैल, 1980 को अंततः अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी अस्तित्व में आई।[28] तीनों ही राजनीतिक दलों को देखने से प्रतीत होता है कि किसी दल ने किसानों को जाति के आधार पर विभाजित करने का कार्य किया है तो किसी ने धर्म के आधार किसान समुदाय को विभाजित करने का कार्य किया है।

उत्तर प्रदेश में साठ के दशक में चौधरी चरण सिंह प्रमुख नेता थे जिन्होंने किसान जातियों को एकजुट करके कांग्रेस की सत्ता के सम्मुख महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत की थी।[29] उन्होंने ऐसी स्थिति उत्पन्न की जिससे साठ से अस्सी के दशक तक कृषि मुद्दे केन्द्रीय हो गए। इसके लिए उन्होंने पश्चिमी यूपी के गुज्जरों, जाटों, अहीरों, मुसलमानों और राजपूतों (मजगर) को एकजुट करने का कार्य किया।[30] जब 1987 में चौधरी चरण सिंह (लोक दल) की मृत्यु हुई तो नेतृत्व

संकट उत्पन्न हुआ तथा उनके बेटे अजीत सिंह ने यह जगह लेने की कोशिश की लेकिन मुलायम की स्थिति उस समय मजबूत थी और 1985 के चुनावों के बाद मुलायम यूपी विधानसभा में लोकदल के नेता के रूप में उभरे तथा 1989 के चुनावों के बाद उन्हें मुख्यमंत्री का पद भी मिला। इसके बाद अजीत सिंह ने गुटबाजी की एवं 1993 के राज्य विधानसभा चुनाव के बाद कांग्रेस में शामिल हो गए तथा उन्हें जंपिंग जाट कहा जाने लगा। मुलायम सिंह ने भी इस गुटबाजी का सामना करते हुए जनता दल, उसके बाद समाजवादी जनता दल तथा उसके पश्चात अंततः समाजवादी पार्टी का गठन किया।[31] चरण सिंह की मृत्यु के बाद किसान आंदोलन में एक नया मोड़ महेन्द्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में 1978 में गठित भारतीय किसान यूनियन है, जिसने राजनीतिक शून्यता को भरने का कार्य किया तथा जाटों का समर्थन हासिल करने में सफल रहा क्योंकि सपा और बसपा की स्थापना पिछड़ी और दलित जातियों के समर्थन के आधार पर हुई थी। ऐसी स्थिति में जाटों के समर्थन के लिए नए संगठन की आवश्यकता थी।[32] इसी तरह देखा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी का उदय ग्रामीण क्षेत्र में गतिशीलता तथा किसान आंदोलन में एक नए स्वरूप का उदय था।[33] 1985 में बीएसपी के गठन के साथ दलित अपनी सामाजिक स्थिति को लेकर सचेत हो गए तथा ग्रामीण इलाकों में उच्च मजदूरी की मांग करने लगे, जिससे जाटों को दलितों से चुनौती मिलने लगी।[34] इस संबंध में एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में देखा जा सकता है कि महेंद्र सिंह टिकैत ने प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग नहीं लिया और न ही किसी दल का गठन किया लेकिन उनका समर्थन मुफ्ती मुहम्मद सईद (जनता दल) को था जिससे वे जीत कर लोकसभा में स्थान प्राप्त किए। इन आंदोलनों की सफलता से आश्चर्य होकर राजनीतिक दलों ने इसे तोड़ने की तकनीक का प्रयोग किया तथा मायावती(बहुजन समाज पार्टी) ने महेंद्र सिंह टिकैत पर उत्पीड़न का मामला दर्ज कराया तथा मुलायम सिंह यादव ने 1990 में उनकी गिरफ्तारी कराई जिसके फलस्वरूप 67 विधायकों ने इस्तीफा दे दिया।[35]

नब्बे के दशक में देखा जा सकता है कि मुलायम अपने मुख्यमंत्री के काल में कहीं न कहीं लोहियावादी परंपरा को आगे बढ़ाना चाहते थे। दलित समुदायों, मुसलमानों को एकजुट करते हुए पिछड़ें वर्गों की सामूहिक पहचान पर जोर देते हुए जाटों (पश्चिम के किसान) को इससे बाहर रखते हुए दिखाई पड़ते हैं।[36] 1990 में जब वी. पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल कमीशन की रिपोर्ट लागू की गई तो इसका लाभ अन्य पिछड़ी जातियों को मिला, लेकिन जाटों को इसमें शामिल नहीं किया गया। इसलिए इस आरक्षण व्यवस्था का महेन्द्र सिंह टिकैत द्वारा विरोध किया गया तथा इसके विरोध में उन्होंने आंदोलन चलाया, जिसमें राजपूत शामिल थे लेकिन गुज्जर और अहीर शामिल नहीं थे क्योंकि आरक्षण का लाभ इनको मिला था।[37] एक मुख्यमंत्री के रूप में, इन आंदोलनकारियों के विरूद्ध जो मुलायम द्वारा कार्रवाई की गई उससे उनकी काफी आलोचना भी की गई। मंडल रिपोर्ट ने पिछड़ी जातियों को एकजुट करने का कार्य तो किया लेकिन यादव और जाटों के बीच दरार भी पैदा हो गई।[38] मुसलमान किसानों के संबंध में देखा जा सकता है कि बाबरी मस्जिद विध्वंस और अयोध्या आंदोलन के बाद मुसलमान भाजपा से दूर होने लगे तथा सपा का समर्थन करने लगे, क्योंकि सपा मुस्लिम समर्थक पार्टी के रूप में भी उभर रही थी। जैसे–जैसे किसान राजनीति, पहचान की राजनीति पर आधारित

होने लगी या पहचान के मुद्दे बढ़ने लगे, वैसे–वैसे बीएलडी (भारतीय लोक दल) जैसे दलों का प्रभाव भी कम होने लगा। जिसके परिणामस्वरूप जाट और मध्यम जातियों ने 1991 में भारतीय जनता पार्टी का अधिक समर्थन किया बजाय कि जनता दल के समर्थन करने के।[39] इस संबंध में भारतीय किसान यूनियन (बीकेयू) को देखा जा सकता है, जिसके समर्थन का आधार जाट किसान हैं। इसके नेता महेन्द्र सिंह टिकैत ने बीकेयू को 1980 के दशक के अंत तक सांप्रदायिक राजनीति से दूर रखने का कार्य किया तथा हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल देते थे। उनकी रैलियों में हिंदू–मुस्लिम प्रतीकों से संबंधित नारे लगाए जाते थे।[40] लेकिन अस्सी के दशक के अंत तक बीकेयू का पश्चिमी यूपी में समर्थन कम होने लगा जिसका एक कारण था कि दलितों ने इसका विरोध किया, जो इसे केवल जाट संगठन के रूप में देखते थे।[41] लेकिन वास्तविक कारण था कि बीकेयू ने अन्य किसान संगठनों के साथ काम करने की बजाय 1991 में भारतीय जनता पार्टी (जिसे हिंदू राष्ट्रवादी पार्टी के रूप में देखा जाता है) के साथ संबंध स्थापित करने पर अधिक ध्यान दिया। इससे बीकेयू और मुस्लिम किसानों के संबंधों में दरार पड़ गई और बीकेयू की विश्वसनीयता समाप्त होने लगी क्योंकि बीकेयू के भाजपा के साथ गठबंधन 1992 की बाबरी मस्जिद विध्वंस के पहले देखा जा सकता है।[42] 2007 में यूपी में मायावती की जीत अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि मायावती ने बिना किसी राजनीतिक पृष्ठभूमि के सत्ता के गलियारे से मुख्यमंत्री के पद तक का सफर तय किया। उनकी जीत में जातिगत गठबंधन ने समर्थन किया अर्थात दलित और ब्राह्मण के गठबंधन के साथ–साथ उनको मुसलमानों का पूरा समर्थन प्राप्त हुआ।[43] उन्होंने उसी वर्ष बहुत सी सामाजिक नीतियों को लाया तथा जुलाई महीने में किसानों की दैनिक मजदूरी जो कि पूर्व में 58 रुपया थी, उसको बढ़ाकर 100 रुपया किया, जिसका लाभ निःसंदेह दलितों को हुआ क्योंकि ज्यादातर दलित कृषि मजदूर के रूप में कार्य करते थे।[44] इस तरह बीएसपी ने दलित राजनीति पर बल देते हुए दलित किसानों के हितों और मुद्दों पर बल दिया जो ज्यादातर कृषि मजदूरी के कार्य में संलिप्त थे।

इसी प्रकार देखा जा सकता है कि 2009 के लोकसभा चुनावों में अजीत सिंह (राष्ट्रीय लोक दल) ने भाजपा के साथ गठबंधन कर लिया जिससे भाजपा के लिए जाटों के बीच समर्थन का आधार तैयार हो गया, जो अब तक भाजपा को एक उच्च जाति की पार्टी के रूप में देखते थे।[45] हसन के अनुसार, आरक्षण के मुद्दे अर्थात मंडल आयोग की सिफारिशों ने उत्तर प्रदेश में जातिगत हिंसा को बढ़ावा दिया। इस आरक्षण की प्रक्रिया से जाटों को बाहर रखा गया था इसलिए भारतीय किसान यूनियन ने इसका विरोध किया।[46] इस तरह आरक्षण के मुद्दे पर किसानों को जाति के आधार पर बांटने की प्रवृत्ति राजनीतिक दलों द्वारा अपनाई गई। 1991 में भारतीय जनता पार्टी ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में राम मंदिर के निर्माण को अपनी सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक माना।[47] बीजेपी के लगभग हर चुनाव अभियान में राम मंदिर तथा बाबरी मस्जिद का मुद्दा रहा है। इसके आधार पर किसानों को धर्म के आधार पर मुखर करने की कोशिश की गई है। ब्रास ने तर्क दिया है कि भाजपा या हिन्दुत्व की उपस्थिति ने किसान आंदोलन में आर्थिक संघर्ष को सांस्कृतिक संघर्ष द्वारा विस्थापित किया है।[48] भाजपा ने जाट क्षेत्रों में अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए संजीव बलियान जैसे जाट नेता को प्रमुखता दी। बलियान के नेतृत्व की लोकप्रियता इस बात में देखी

जा सकती है कि 5 फरवरी 2013 को उन्होंने नितिन गडकरी तथा राजनाथ सिंह (भाजपा के तात्कालिन राष्ट्रीय अध्यक्ष) को अपने गांव की किसान रैली में शामिल होने के लिए राजी किया। 2013 के मुजफ्फरनगर दंगों के बाद उन्होंने हिन्दू पहचान जैसे मुद्दे के आधार पर राजनीतिक कार्य किया जिसका लाभ उन्हें 2014 के लोकसभा चुनावों में बीएसपी के कादिर राणा के खिलाफ जीत के रूप में मिला।[49] कुमार ने तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी ने उन युवाओं को प्रभावित किया है जो मुस्लिम समाज को खतरा मानते थे, परंतु कृषि संकट, बिजली के बिल में वृद्धि, डीजल के दामों में वृद्धि आदि मुद्दों ने हिंदू और मुस्लिम को एक करने का काम किया है।[50] इस तरह समाजवादी पार्टी ने जाति और धर्म के आधार पर राजनीति का प्रयास किया तथा निरंतर अपने भाषणों में किसानों, पिछड़ी जातियों और मुस्लिम समुदाय जैसे मुद्दों को उठाने का कार्य किया। अक्तूबर 2013 में आजमगढ़ में एक रैली को संबोधित करते हुए मुलायम सिंह ने सच्चर समिति की सिफारिशों को लागू करने की बात की तथा कहा कि केवल किसानों और मुसलमानों के द्वारा ही देश को विकास के पथ पर आगे ले जाया जा सकता है। इसी प्रकार तात्कालिन मुख्यमंत्री अखिलेश यादव ने कहा कि केवल समाजवादी पार्टी ही गरीबों, पिछड़ों और किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ है।[51]

एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में 2020–21 के किसान आंदोलन को देखा जा सकता है, जिसमें सितम्बर 2020 में भारतीय संसद ने तीन कृषि कानूनों को पास किया तथा राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद ये विधेयक कानून बन गए। इसके बाद किसानों ने व्यापक स्तर पर प्रदर्शन किया। इस आंदोलन को लगभग दो दर्जन विपक्षी दलों तथा कई किसान संगठनों द्वारा समर्थन किया गया।[52] आंदोलन का समर्थन करते हुए बीएसपी सुप्रीमो मायावती ने नवंबर 2021 में बीएसपी सांसदों और विधायकों को अपने एक माह का वेतन किसानों को देने के लिए कहा ताकि किसान अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें।[53] बीच में जब आंदोलन शिथिल पड़ने लगा तो उत्तर प्रदेश में भारतीय किसान यूनियन के नेता राकेश टिकैत के भावपूर्ण भाषण ने किसान आंदोलन में जान डाल दी तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के किसान गाजीपुर, टिकरी, सिंघू की सीमाओं पर आने लगे। इसके बाद कई किसान पंचायतों का आयोजन किया गया तथा आंदोलन और कृषि कानूनों के संबंध में समझ विकसित की गई।[54] अंततः भाजपा सरकार द्वारा नवंबर 2021 में गुरु पर्व के अवसर पर तीन कृषि कानूनों को समाप्त करने की घोषणा की। इस तरह चौदह महीने से किसानों द्वारा संचालित यह आंदोलन अपनी समाप्ति की ओर बढ़ गया।[55]

किसान पहचान और राजनीतिक दलों के संबंधों का सैद्धांतिक विवेचन

पहचान व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं का सम्मिलित रूप है। इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि "व्यक्ति की दो पहचान होती है, पहला, व्यक्ति स्वयं को किस रूप में देखता है तथा दूसरा, दूसरे उसे किस रूप में देखते हैं जिसे बिलग्रामी ने व्यक्तिनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ पहचान कहा है"।[56] जब किसानों को पहचान के संदर्भ में विश्लेषित किया जाता है तो किसानों की भी दो तरह की पहचान परिलक्षित होती है, पहला, किसानों की जाति, धर्म, क्षेत्र, संस्कृति आदि के आधार पर विखंडित पहचान होती है तथा दूसरी, किसानों की किसान के रूप में एकजुट या सामूहिक पहचान होती है। जब किसान आंदोलन के संदर्भ में किसान पहचान की बात होती है तो इससे

परिलक्षित होता है कि किसान जब आंदोलन में सक्रिय होता है तो कहीं न कहीं वह अपनी आम किसान पहचान को प्रदर्शित करता है परंतु आंदोलन के पश्चात जब किसान ग्रामीण समाज में प्रवेश करता है, तो वह जाति, धर्म, क्षेत्र एवं अपनी संस्कृति आदि से प्रभावित हो जाता है तथा उसके आधार पर मतदान करता है। किसान उस समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपनी जाति, धर्म, क्षेत्र आदि संबंधी पहचान को प्रदर्शित करता है। इस तरह किसान पहचान की राजनीति कहीं न कहीं किसानों के चयन पर आधारित होती है क्योंकि किसान किसी व्यापक किसान आंदोलन में राज्य की नीतियों के विरोध में अपनी सामूहिक या आम किसान पहचान को चुनता है वहीं किसान जाति एवं धर्म आदि मुद्दों से प्रभावित होकर अपनी व्यक्तिनिष्ठ पहचान को चुनता है।

जोया हसन के अनुसार, उत्तर प्रदेश में 1990 के दशक में राजनीतिक दलों की सांप्रदायिक राजनीति ने किसान आंदोलन को कमजोर करने की कोशिश की।[57] दूसरे शब्दों में, किसान आंदोलन को पहचान की राजनीति के कारण कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। भाजपा ने अयोध्या आंदोलन के द्वारा सांप्रदायिक राजनीति को मुखर करने का कार्य किया तथा किसानों को धार्मिक आधार पर बांटने का कार्य किया। नब्बे के दशक में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद उत्तर प्रदेश की राजनीति में नया बदलाव आया और पहचान की राजनीति धर्म से जाति आधारित होने लगी क्योंकि जाति आधारित दलों अर्थात सपा और बसपा का महत्व बढ़ने लगा, जिनको मुस्लिम समुदाय के द्वारा भी समर्थन किया जा रहा था।[58] इस तरह से देखा जा सकता है कि विभिन्न राजनीतिक दलों अर्थात मुख्यतः सपा, बसपा तथा भारतीय जनता पार्टी का किसान आंदोलनों में एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सपा ने जहां किसानों को यादवों और मुसलमानों के आधार पर मुखर करने का कार्य किया वहीं बसपा ने दलित के आधार पर राजनीति की। भाजपा ने हिन्दू–मुस्लिम के आधार पर वोटों का ध्रुवीकरण करने का कार्य किया। चौधरी चरण सिंह के काल से उत्तर प्रदेश की राजनीति में किसान मुद्दे हमेशा प्रभावी रहे, लेकिन जहां उन्होंने विभिन्न समुदायों को मिलाकर किसान मुद्दों को ऊपर किया वहीं राजनीतिक दलों ने इसे बांटने का कार्य किया। जिसके बाद उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। लेकिन हमेशा से ही किसान आंदोलन तथा किसान नेतृत्व में परिवर्तन ने इसके स्वरूप में परिवर्तन लाया है। इस संबंध में भारतीय किसान यूनियन को देखा जा सकता है, जिसके नेतृत्व में 2020 में संयुक्त किसान मोर्चा का गठन किया गया, जिसने किसानों को जाति, धर्म एवं क्षेत्र से ऊपर उठाया तथा एक व्यापक आंदोलन का संचालन किया ताकि सरकार के कृषि कानूनों को निरस्त कराया जा सके। इस आंदोलन में किसान सफल भी रहे।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि राजनीतिक दलों ने किसान पहचान की राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। परंतु विद्वानों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि हमेशा राजनीतिक दल किसानों को बांटने में सफल नहीं रहे हैं तथा भारतीय किसान यूनियन जैसे किसान संगठनों ने विभिन्न धर्मों, जाति, संस्कृति के किसानों को एकजुट करके एक साझा मंच प्रदान किया है, जैसा कि समकालीन परिदृश्य में 2020–21 के किसान आंदोलन की सफलता में देखा जा सकता है। परंतु किसान पहचान की राजनीति पर राजनीति दलों का प्रभाव विद्यमान है क्योंकि 2020–21 के कृषि कानूनों के व्यापक विरोध के बावजूद उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव (2022) में भारतीय जनता पार्टी को सफलता मिली। इसका एक कारण

था कि सरकार ने कृषि कानूनों को वापिस लिया तथा किसानों को छोटी–छोटी रियायतें प्रदान की गई।

निष्कर्ष

किसान आंदोलनों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में विभिन्न राजनीतिक दलों ने किसानों को मुख्यतः जाति, संप्रदाय और संस्कृति आदि के आधार पर मुखर करने का काम किया है जिसने किसान पहचान की राजनीति के विमर्श को जन्म दिया है। किसान पहचान की राजनीति के संदर्भ में कहा जा सकता है कि किसान सदैव किसान के रूप में नहीं जाना जाता अर्थात किसान के रूप में वह अपनी जाति, वर्ग, क्षेत्र, संस्कृति से भी जुड़ा रहता है। पहचान की राजनीति की स्थिति ऐसी है कि जितना हम आंतरिक कारणों पर बल देते हैं उतना अधिक व्यक्तिनिष्ठ पहचान(जाति, धर्म, क्षेत्र, संस्कृति आदि पर आधारित पहचान) उभरती है, जैसा कि किसान आंदोलनों में राजनीतिक दलों ने किया है। उन्होंने विभिन्न सामाजिक मुद्दों के आधार किसानों को बांटने का प्रयास किया है या इसे इस रूप में देखा जा सकता है कि किसान अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप इन मुद्दों से प्रभावित हो गए क्योंकि जब भी पहचान के संदर्भ में स्व को देखा जाता है तो व्यक्ति अपने धर्म, जाति, क्षेत्र जैसी पहचान से प्रभावित हो जाता है जैसा कि किसानों के संदर्भ में देखा जा सकता है कि कैसे उनके स्व से संबंधित मुद्दों पर राजनीतिक दलों ने प्रभाव डाला। लेकिन जब बात आर्थिक मुद्दों की आती है तो व्यक्ति आम पहचान का चयन करता है अर्थात किसानों ने भी आर्थिक पहचान के आधार पर अपनी एकीकृत पहचान पर बल दिया है।

इस तरह निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है कि 1980 के दशक से ही राजनीतिक दलों ने किसान आंदोलनों को प्रभावित करने का प्रयास किया। चूंकि एक कृषि प्रधान राज्य होने के नाते कृषि मुद्दों से संबंधित किसान आंदोलन उत्तर प्रदेश में होते रहे हैं और अस्सी का दशक इस संबंध में अपने शिखर पर था, लेकिन देश और राज्य की ऐसी परिस्थितियां एवं घटनाएं थीं जिन्होंने निःसंदेह किसान आंदोलनों को प्रभावित किया तथा उन्हें उनके पहचान संबंधी मुद्दों के लिए अभिप्रेरित किया। इस पूरे कालखण्ड में देखा जा सकता है कि किसानों की इस पहचान संबंधी अभिप्रेरणा में उनके सामाजिक मुद्दों के साथ–साथ आर्थिक मुद्दे भी सक्रिय रहे हैं तथा किसानों ने अपनी महत्वकांक्षाओं के अनुरूप इन पहचानों का चयन किया है।

❐

सन्दर्भ –

1 *सेन, अ. (2022). हिंसा और अस्मिता का संकट. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्ज.*

2 *बायर्स, ट.ज. (1995). प्रीफेस. ट.ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ.1–2). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.*

3 *ब्रास, ट. (1995). इंट्रोडक्शनः दी न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया (पृ. 3–26). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.*

4 *कुमार, स. (2021). क्लास, कास्ट एंड एग्रेरियन चेंजः द मेकिंग ऑफ फार्मर्स प्रोटेस्ट्स. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 48(7), 1371–1379.*

5 *हसन, ज. (2010). पॉलिटिकल पार्टीज. न.ग. जयल, एवं प.भ. मेहता (एडिटेड) में, पॉलिटिक्स इन इंडिया (पृ. 241–253). नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.*

6 गवर्मेन्ट ऑफ इंडिया. (2011, जुलाई 15). रूरल अर्बन डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ पॉपुलेशन. सेन्सस ऑफ इंडियाः https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/42617से पुनर्प्राप्त
7 भारत सरकार. (2022). वार्षिक–रिपोर्ट 2021–22. दिल्लीः भारत सरकार.
8 जैफ्रेलॉट, क. (2003). इंडियाज साइलेंट रीवोल्यूशन. दिल्लीः परमानेंट ब्लैक.
9 फ्रेंकल, फ. आ. (2006). इंडियाज पॉलिटिकल इकोनॉमी. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
10 पाई, स. (2010). फार्मर्स मूवमेन्ट. न.ग. जयल,एवं प. भ. मेहता (एडिटेड) में, पॉलिटिक्स इन इंडिया (पृ.391–408). दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
11 हसन, ज. (1995). शिफ्टिंग ग्राउंडः हिंदुत्वा पॉलिटिक्स एंड दी फार्मर्स मूवमेंट इन उत्तर प्रदेश. ट.ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 165–194). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
12 ब्रास, प. आ. (1993). चौधरी चरण सिंहः एन इंडियन पॉलिटिकल लाईफ. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 28(39), 2087–2090.
13 लिंडबर्ग, स. (1995). न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया एज स्ट्रकचरल रीसपॉन्स एंड कलेक्टिव आइडेंटिटी फॉर्मेशनः दी केस ऑफ दी शेतकारी संगठन एंड दी बीकेयू. ट.ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 95–125). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
14 हसन, ज. (1995). शिफ्टिंग ग्राउंडः हिंदुत्वा पॉलिटिक्स एंड दी फार्मर्स मूवमेंट इन उत्तर प्रदेश. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 165–194). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
15 ब्रास, ट.(1995). इंट्रोडक्शनः दी न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया. ट.ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया (पृ. 3–26). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
16 बायर्स, ट.ज. (1995). प्रीफेस. ट.ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 1–2). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
17 ब्रास, ट. (1995). इंट्रोडक्शनः दी न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया (पृ. 3–26). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
18 पाई, स. (2010). फार्मर्स मूवमेन्ट. न. ग. जयल,एवं प. भ. मेहता (एडिटेड) में, पॉलिटिक्स इन इंडिया (पृ.391–408). दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
19 राजालक्ष्मी, ट.क. (2021, मार्च 26). द फार्मर्स प्रोटेस्ट कमप्लीट्स ए हंड्रेड डेज एंड फोर्ज्स न्यू सॉलिडरिटिज एक्रॉस कास्ट्स एंड कम्यूनीटिज. फ्रंटलाईनः https://frontline.thehindu.com/the-nation/agriculture/the-farmers protest-against-farm-laws-2020-completes-a-hundred-days-and-forges-new-solidarities-across-castes-and-communities/article34006827.eceसे पुनर्प्राप्त
20 उत्तर प्रदेश शासन. (2018, जनवरी 24). उत्तर प्रदेश दिवस. प्रवासी भारतीय विभाग, उत्तर प्रदेश शासनः https://nri.up.gov.in/hi/article/up-pravasi-
21 चंद्र , ब., मुखर्जी, म., मुखर्जी, आ., पाणिकर, क., –महाजन, स. (1990). भारत का स्वतंत्रता संघर्ष. दिल्लीः हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय.
22 कुमार, स. (2021). क्लास, कास्ट एंड एग्रेरियन चेंजः द मेकिंग ऑफ फार्मर्स प्रोटेस्ट्स. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 48(7), 1371–1379.
23 हसन, ज. (1995). शिफ्टिंग ग्राउंडः हिंदुत्वा पॉलिटिक्स एंड दी फार्मर्स मूवमेंट इन उत्तर प्रदेश. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 165–194). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
24 कुमार, स. (2021). क्लास, कास्ट एंड एग्रेरियन चेंजः द मेकिंग ऑफ फार्मर्स प्रोटेस्ट्स. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 48(7), 1371–1379.
25 वर्मा, ए. क. (2004). समाजवादी पार्टी इन उत्तर प्रदेश. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 39(1415), 1509–1514.
26 हाफिज, म. (2007). पॉलिटिकल स्ट्रगल ऑफ द अनटचेबल्स एंड द राईज ऑफ बहुजन समाज पार्टी. स्ट्रेटेजिक स्टडीज, 27(3), 30–49.
27 कुमार, प. (1999). दलित्स एंड द बीएसपी इन उत्तर प्रदेश इश्यूज एंड चौलेंजेस. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 34(14), 822–826.
28 रावत, स. स. (2023, अप्रैल 06). बीजेपी पार्टी फाउंडेशन डेः हिस्ट्री एंड द राईज ऑफ वर्ल्ड्स लार्जेस्ट पार्टी. जनवरी 09, 2025, बिजनेस स्टेंडर्डसः https://www.business-standard.com/india-news/bjp-party-foundation-day-history-and-the-rise-of-world-s-largest-party-123040600385_1.htmlसे पुनर्प्राप्त
29 गुप्ता, द. (2005). कास्ट एंड पॉलिटिक्सः आईडेंटिटी ओवर सिस्टम. एनुअल रिव्यू ऑफ एन्थ्रोपॉलजी, 34(2005), 409–427.

30 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
31 डंकन, इ. (1997). एग्रीकल्चरल इनोवेशन एंड पॉलिटिकल चेंज इन नॉर्थ इंडियाः द लोक दल इन उत्तर प्रदेश. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 24(4), 246–268.
32 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
33 डंकन, इ. (1997). एग्रीकल्चरल इनोवेशन एंड पॉलिटिकल चेंज इन नॉर्थ इंडियाः द लोक दल इन उत्तर प्रदेश. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 24(4), 246–268.
34 पाई, स. (2002). दलित असर्सन एंड दी अनफिनिश्ड डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन. न्यू दिल्लीः सेज.
35 रावी, स. (2020, सितंबर 23). किसान आंदोलन की उर्वर भूमि रहे भारत में किसान किनारे क्यों. बीबीसी न्यूज़ः https://www.bbc.com/hindi/india-54253664 से पुनर्प्राप्त
36 डंकन, इ. (1997). एग्रीकल्चरल इनोवेशन एंड पॉलिटिकल चेंज इन नॉर्थ इंडियाः द लोक दल इन उत्तर प्रदेश. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 24(4), 246–268.
37 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
38 डंकन, इ. (1997). एग्रीकल्चरल इनोवेशन एंड पॉलिटिकल चेंज इन नॉर्थ इंडियाः द लोक दल इन उत्तर प्रदेश. द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, 24(4), 246–268.
39 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
40 बेंटाल, ज., और कारब्रिज, स. (1996). अर्बन–रूरल रिलेशन्स, डिमांड पॉलिटिक्स एंड द न्यू एग्रेरियनिज्म इन नॉर्थवेस्ट इंडियाः द भारतीय किसान यूनियन. ट्रांजेक्शन्स ऑफ द इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रिटिश जियोग्राफर्स, 21(1), 27–48.
41 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
42 बेंटाल, ज., और कारब्रिज, स. (1996). अर्बन–रूरल रिलेशन्स, डिमांड पॉलिटिक्स एंड द न्यू एग्रेरियनिज्म इन नॉर्थवेस्ट इंडियाः द भारतीय किसान यूनियन. ट्रांजेक्शन्स ऑफ द इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रिटिश जियोग्राफर्स, 21(1), 27–48.
43 हाफिज, म. (2007). पॉलिटिकल स्ट्रगल ऑफ द अनटचेबल्स एंड द राईज ऑफ बहुजन समाज पार्टी. स्ट्रेटेजिक स्टडीज, 27(3), 30–49.
44 जैफ्रेलॉट, क. (2010). कास्ट एंड पॉलिटिक्स. इंडिया इनटरनेशनल सेंटर क्वार्टर्ली, 37(2), 94–116.
45 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
46 हसन, ज. (1995). शिफ्टिंग ग्राउंडः हिंदुत्वा पॉलिटिक्स एंड दी फार्मर्स मूवमेंट इन उत्तर प्रदेश. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 165–194). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
47 भारतीय जनता पार्टी. (1991). बीजेपी इलेक्शन मैनिफेस्टो 1991. दिल्लीः भारतीय जनता पार्टी. https://library.bjp.org/jspui/handle/123456789/239 से पुनर्प्राप्त
48 ब्रास, ट. (1995). इंट्रोडक्शनः दी न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेन्ट्स इन इंडिया (पृ. 3–26). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.
49 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्म : रॉयट्स इन कंटेम्परारी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
50 कुमार, स. (2021, फरवरी 13). अमिड फॉल्ट लाईन्स, अ रीवाईवल ऑफ दी फार्मर्स आइडेंटिटी. द हिन्दूः https://www.thehindu.com/opinion/lead/amid-fault-lines-a-revival-of-the-farmers-identity/article33824817.ece से पुनर्प्राप्त
51 दी इकोनॉमिक टाईम्स. (2013, अक्टूबर 30). ओनली फार्मर्स एंड मुस्लिम्स कैन एनस्योर कन्ट्रीज ग्रोथः मुलायम सिंह यादव. जनवरी 22, 2025, दी इकोनॉमिक टाईम्सः https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/only-farmers-and-muslims-can-ensure-countrys-growth-mulayam-singh-yadav/articleshow/24901662.cms?from=mdr से पुनर्प्राप्त
52 कोन्नूर, म. (2020, दिसंबर 12). किसान आंदोलन से जुड़ी आठ बातें जिन्हें जानना जरूरी है. जनवरी 30, 2025, बीबीसी हिन्दीः https://www.bbc.com/hindi/india-55286866 से पुनर्प्राप्त

53 खान, अ. (2021, नवंबर 16). बीएसपी लेजिस्लेटर्स टू पे रीलिफ टू यू.पी. फार्मर्स. जनवरी 11, 2025, द हिन्दू: https://www.thehindu.com/news/national/other-states/BSP-legislators-to-pay-relief-to-U.P.-farmers/article60171390.eceसे पुनर्प्राप्त

54 रंजन, स. (2021). फार्मर्स प्रोटेस्टः अ रोडमैप फार द अपोजिशन. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (इंगेज), 56(18), 2349–8846.

55 जनसत्ता. (2021, नवंबर 19). किसान आंदोलन के 14 महीने के बाद केंद्र सरकार ने वापस लिया कानून, पीएम ने खुद की घोषणा. जनवरी 30, 2025, जनसत्ताः https://www.jansatta.com/national/prime-minister-narendra-modi-addressed-the-nation-and-announce-that-the-new-farm-laws-will-be-repealed/1924952/से पुनर्प्राप्त

56 बलग्रामी, अ. (2006). नोट्स टूवार्ड दी डेफिनिशन ऑफ आइडेंटिटी डेडलस, 135(4), 5–14.

57 हसन, ज. (1995). शिफ्टिंग ग्राउंडः हिंदुत्वा पॉलिटिक्स एंड दी फार्मर्स मूवमेंट इन उत्तर प्रदेश. ट. ब्रास (एडिटेड) में, न्यू फार्मर्स मूवमेंट इन इंडिया (पृ. 165–194). न्यूबरी पार्क इलफोर्डः फ्रेंक केस.

58 पाई, स., और कुमार, स. (2018). एवरीडे कम्यूनलिज्मः रॉयट्स इन कंटेम्पररी उत्तर प्रदेश. न्यू दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121, अप्रेल–जून, 2025 पृ. 110–120

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Healthcare Practices and Beliefs among Tribes in Baran District, Rajasthan

Alok Chauhan
Astt. Professor, Geography, School of Humanities & Social Sciences,
Vardhman Mahaveer Open University, Kota (Raj.) - 324010
Email: achauhan@vmou.ac.in

Rahul Singh
Research Scholar, Geography,
Vardhman Mahaveer Open University, Kota (Raj.) - 324010
Email: rahul.geography@vmou.ac.in

Abstract

Tribal people's health is in extremely poor shape. There is insufficient information accessible on the health state of the tribes throughout the nation, despite the fact that numerous studies have shown the terrible health conditions of the tribes throughout the length and breadth of the country. The poor health of the tribes in India has a wide range of root causes and contributing variables. The low health situation of the nation's tribes is largely due to a lack of trained medical workers, access to care, and inadequate infrastructure. It is even more challenging to approach them and handle their health issues due to their geographic settlement patterns and tremendously diverse geographies. Poverty, illiteracy, a lack of knowledge about diseases, poor sanitation, outdated traditional methods of treating illnesses, and irrational belief systems all serve to exacerbate and deepen this agony. Meena and Sahariya are the largest tribal community in Rajasthan's Baran district. The Sahariya are Rajasthan's fourth most numerous tribes. The present paper tries to anlayse the healthcare practices and beliefs among tribes (Meena and Shariya) in Baran district (Rajasthan). The study found that still tribes are highly dependent on their traditional health care measures.

Keywords: Shariya, Baran, Health Care, Healthcare Practices and traditional method.

Introduction

It is widely established that tribal people's cultural background influences both their health and illness. Regardless of their locations or beliefs, tribal people all over India adhere to a set of customary norms around their health and illness. One of the crucial stages of tribal development, tribal health has long been neglected and misused. Without giving their beliefs and traditions in healthcare the appropriate

consideration, tribal development cannot be realised in its purest form. India's tribal population makes up 8.6 percent of the nation's overall population, according to the Census of India 2011. In addition to ADIMJATI, VANVASI, ADIVASI, PAHARI, and ANUSUCHIT JANJATI, the tribe is also known by these names. Constitutionally speaking, they are referred to and called ANUSUCHIT JANJATI. There are currently 705 Schedule Tribal groups recognised and notified in India. Tribes as a whole show off their distinctive and varied way of life, culture, and sense of self in the age of globalisation. They continue to be the nation's most vulnerable and disenfranchised group of people. Even though the Indian government has implemented numerous development and welfare initiatives and programmes for their advancement and mainstreaming, these groups continue to be vulnerable in terms of their economic and social standing.

Tribal people's health is in extremely poor shape. There is insufficient information accessible on the health state of the tribes throughout the nation, despite the fact that numerous studies have shown the terrible health conditions of the tribes throughout the length and breadth of the country. The poor health of the tribes in India has a wide range of root causes and contributing variables. The low health situation of the nation's tribes is largely due to a lack of trained medical workers, access to care, and inadequate infrastructure. It is even more challenging to approach them and handle their health issues due to their geographic settlement patterns and tremendously diverse geographies. Poverty, illiteracy, a lack of knowledge about diseases, poor sanitation, outdated traditional methods of treating illnesses, and irrational belief systems all serve to exacerbate and deepen thisagony.

Health Care Practices and Beliefs every society has its unique set of beliefs, customs, and knowledge around health and disease. The health care system used by tribal people is based on their own beliefs. The indigenous people have a robust traditional medical system. Yet, current empirical data shows that tribal indigenous health practices are heading in the wrong direction. The majority of the tribe adheres to a magico-religious healthcare system. (Negi and Singh,2018)

The tribal communities in India vary from one another in a number of ways, including the languages they use, their cultural customs and practices, and their socioeconomic status. They frequently remain isolated and undisturbed by civilization and are mostly unaffected by the developmental processes that take place around them because the bulk of them reside in distant locations like forests and steep terrains. In general, tribal communities believe in four different kinds of supernatural powers: (1) protective spirits who constantly watch over them; (2) benevolent spirits who are worshipped on a regular basis at the communal and familial levels; (3) malevolent spirits—the evil spirits in charge of smallpox, fever, abortion, etc.; and (4) ancestral spirits, the spirits of the ancestors who constantly watch over them (Islary,2014).

Tribal, Adivasi, Vanvasi, and Girijan communities are unique to India and are recognised as Scheduled Tribes under Article 342 of the Indian Constitution. 12

tribes, including the Bhil, Damor, Dhanka, Garasia, Kathodi, Kokna, Koli, Meena, Nayaka, Patelia, Bhilala, and Sahariya, are among the more than 705 tribes in India that have currently been notified under Article 342 of the Constitution. These tribes are all located in the state of Rajasthan. Rajasthan is home to 7 percent of the nation's tribal population. Under the category of particularly vulnerable tribal groups (PVTGs), there are 75 different groups. They are economically marginalized, socially and geographically isolated, and have limited access to resources in addition to a low literacy rate. A few of the groups are in danger of going extinct. At the federal and state levels, they are not given much consideration. Only the Sahariya are Particularly Vulnerable Tribal Group (PVTG) that is marginalized more than Rajasthan's ST population. The Sahariya tribal community has been residing in Baran District's isolated woodland track. Most dropouts in this tribe have led negative lives in the community, which has a significant impact on their educational, social, and cultural well-being. They deal with several structural injustices as well, with access to healthcare being among the worst. The criteria used to designate a group as a scheduled tribe include signs of primitivism, a distinctive culture, geographic isolation, and reluctance to interact with the majority of civilization, reliance on natural resources for survival, and backwardness. Studies on the preservation of traditional knowledge, beliefs, and practises pertaining to the indigenous peoples' traditional healthcare system are required.

For many indigenous populations, health is not just the absence of disease but also a condition of harmony and well-being on the spiritual, community, and ecological levels. The indigenous people have formed well-established traditional medical systems, using tried-and-true treatments created by their predecessors, thanks to a symbiotic relationship with the forest. Tribal people's traditional medical practises and beliefs are distinct from those of contemporary science and stem from their existence in medicinally abundant forests. Tribal people's healthcare practises, health-seeking behaviours, and choices are strongly influenced by this worldview and healing system.

Meena and Sahariya are the largest tribal community in Rajasthan's Baran district. The Sahariya are Rajasthan's fourth most numerous tribes. Outside the main villages, or Saharana, is where the Sahariya people live. Often, there are several residences nearby. It is composed of a few stone boulders, and the roofing is made of stone slabs, which are known as Patore locally. Mud structures are also built in some villages. They typically reside in joint families. The majority of Sahariyas are farmers who also serve as bonded labourers in farm houses and businesses run by money lenders. Sahariya is the only PVTG who lives in Rajasthan's Baran district. The largest and most primitive tribe living in this region's forest is this one. They live in the rural communities beyond the Parbati River's eastern bank, in the mountainous and steep regions covered in dense forest. There are 449 settlements in this area, 312 of which are populated, and 137 of which are deserted. 97 percent of this PVTG resides in the Baran District's Kishanganj and Shahbad tehsil. It is

also crucial to remember that the majority of Sahariya in Rajasthan lack land and a stable source of income. They occasionally demand land so they can raise crops there to support their way of life. The Sahariya PVTG community in Rajasthan is mired in a generational cycle of poverty, malnutrition, illiteracy, lack of optimism, and famine. (Thamminaina, Kanungo and Mohanty, 2020).

Database and Methodology

The present paper is purely based on the primary data collected through Intensive field work from September 2023 to February, 2024. The primary data have been collected through sample survey of 400 respondents selected from sixteen villages (Two villages from each tehsil) and two urban centres of Baran district. The villages under study (possessing at least 20 households) have been selected according to their distance from Primary Health Centers (PHCs).

Result and Discussion

Healthcare Beliefs among Tribes of Baran District

The tribes that have been displaced, the bulk of health problems are handled in a conventional manner. For instance, many families are not aware of the seriousness and effects of malaria, pneumonia, or any other complications related to childbirth. They see any disease as the result of the evil eye and seek treatment from a traditional healer because they trust them and can easily access them. The custom of seeking extra medical care in the hospital if a traditional healer is unable to assist is particularly widespread among indigenous people. Some tribal cultures have extensive knowledge in using common medicinal herbs. Nevertheless, they no longer have access to the forest as a result of being evacuated, so they are unable to use traditional remedies when they are ill. A lack of competent medical consultation also makes the sickness worse. In times of disease in the family, it was evident that tribal members would consult traditional healers before visiting a medical doctor.

Table 1: Dependency on Traditional Treatment.

Variables	Percent	Number
Visiting traditional healer		
Yes	74.19	46
No	25.81	17
Type of tradition medicines used		
Jhadphuk	40.32	25
Medicinal Plants	30.65	19
Animals	12.90	8
Other	16.13	10
Total	**100.00**	**62**

Source-*Personal Survey, 2023-24.*

According to the analysis, traditional healers are the primary source of care for the majority of tribal households. Members of the research community hold the views that social, natural, and supernatural factors all contribute to the development of disease. When a kid or pregnant lady is ill, the family will seek treatment from traditional healers first(Table1). For instance, a family may take a feverish infant to a traditional healer because they think the youngster may have received the evil eye. To treat the child, the traditional healers would perform "Jhadphuk" on him or her.

The socio-cultural beliefs are important to the tribal cultures. As a result, despite the patient's critical state, many relatives choose not to visit the hospital. The indigenous women who participated in the in-depth interviews indicated mistrust for the medical centre and its staff. The relocated women were unaware of the dangers of yellow fever, malaria, or anaemia during pregnancy. Even though there have been multiple infant fatalities and difficulties after home deliveries, the indigenous families are unaware of the severity of the condition. The fact that they rely more on socio-cultural ideas and practises may be the root of their phobia of going to hospitals and taking contemporary medications.

Meena Tribe's Dependency on Traditional Medicine

Traditional use of Plants by Meena Tribe

The WHO Defines traditional medicine as the health practises, approaches, knowledge and beliefs incorporating plant, animal and mineral based medicines, spiritual therapies, manual techniques and exercises, applied singularly or in combination to treat, diagnose and prevent illnesses or maintain well-being.

According to the research, the tribal members who had institutional deliveries and were just moderately literate depended on both contemporary and traditional remedies. The Meena tribe uses herbs for medicine like:

- Kher (Acacia catechu) is used forAbortifacient , toothache and gonorrhoea,
- Babul (Acacia nilotica) used for burning sensations, in the eyes and asthma.
- Morpankhi (Actiniopterisdichotoma) Use to control typhoid and fever.
- Tita (Ampelocissuslatifolia) is used to cure bone fractures, dyspepsia, indi gestion and tuberculosis orally.
- Panvada(Cassia tora Linn.) is used in night blindness & skin diseases,
- Ker leaf (Acacia ferruginea) is used for ear disorders and otorrhaea.
- Babul (Acacia nilotica) is used for burning sensations, in the eyes and asthma.
- Aandhijhara(Achyranthes aspera) is used to cure Pneumonia, headache and earache.
- Gawarpata (Aloe barbadensis) is used in indigestion, burns, Rheumatism, liver diseases and wounds.
- Mahua (Madhucalongifolia) is used for pneumonia and stomach ache.(Meena and Rao, 2010)

Traditional use of Animals by Meena Tribe

Human perceptions and uses of nature have long been impacted by religious activities and beliefs. Particularly animals have a significant influence on magico-religious activities and add historical and cultural complexity to these connections. Fundamental to the cause of effective wildlife conservation is frequently an un-

derstanding of human-faunal relationships. This study looks into the domestic and wild plants and animals that the tribal people of the Baran district use for spiritual and religious purposes.

- Spotted owlet (Athene brama) it is believed that these drive evil spirits away.
- Common lizard(Hemidactylusfrenatus) Tail tied in waist and it is believed that this kept disease away.
- Jackal (Canis aureus), Charms are made out of bones, and it is believed that these drive evil spirits away.
- Seepi (Bivalves,Mactra sp.) Ash of shell is taken for weakness.
- Kachhua (Hardshelled Turtle) is used for healing of internal injuries, prurities and cough.
- Honey bee(Apis indica) Honey is used for cough and could and asthma. (Kushwah, Sisodia and Bhatnagar, 2017)

Sehariya Tribe's Dependency on Traditional Medicine

Traditional Use of Plants by Saharia Tribe

Despite having little access to advanced technology, the Sahariya people have long preserved ecological balance with their surroundings. Sahariya people currently reside in places with poor infrastructure, are isolated, and lack good access to bridges and roads. Tribe relies on these herbs for medicine:

- Kachnar (Bauhinia Variegeta) Buds and Root, It is used to cure asthma and ulcers. The buds and roots are good for digestive problems and skin diseases.
- Puanr (Cassia Tora) Fresh leaves are pounded into a paste and are applied in case of ringworm.
- Haldi (Curcuma Angustifolia) The paste of the rhizome with few neem leaf pastes is applied on eczema.
- Bat(FicusBengaalensis) Bark powder is used externally to cure scabies.
- Calihari (Gloriosa Superba) Root and Tuber, Extract of whole plants is spasmolytic useful in leprosy.
- Bhoomdi (Lantana Whitiana) The leaf is ground with Cipadessabaccifera root, leaf and bark & applied topically to treat Psoriasis skin diseases.(Sahoo and Pradhan, 2021)

Traditional Use of Animals by Saharia Tribe

The current study details traditional knowledge of the Saharia tribe's use of various animals and items produced from animals as medicines in the Shahabad and Kishanganj Panchayat Samiti's of the Baran district of Rajasthan, India.

- Crab (Cancer pararus) Ash of crab is used in lung diseases as cough, asthma, T. B. etc.
- Goat (Capra indicus) Bones of Legs, Soup of leg's bone used to cure weak ness.
- Hardshelled Turtle (Kachuga tentoria) Ash of carapace mix with coconut oil and use for skin burns.
- Honey bee (Apis indica) Honey, Used as eye drops to cure eye disease.

- Indian Peacock (Pavo cristatus) Peacock's leg is rubbed with water and this essenced water is used in ear infections.(Mahawar and Jaroli, 2007)

Utilization of Healthcare Facility by Tribes of Baran District

First Visit in Case of Illness.

Out of 62 respondents in the study region, 20(52.63) sehariya tribe and 14(58.33) Meena tribe respondents turned to traditional healer as their first line of treatment(Table2). While 9 (23.68%) respondents in Sehariya tribe and 4 (16.67%) respondents in Meena tribe went to CHCs for the treatment. Poor transportation, distance and poor economic condition are the main reason for the low use of public HCF (Fig. 1).

Table 2: Tribe's First Visit in Case of Illness

Facility Centre	Sehariya		Meena	
	No.	percent	No.	Percent
DH	3	7.90	3	12.5
CHC	9	23.68	4	16.67
PHC	6	15.79	3	12.5
Traditional	20	52.63	14	58.33
Total	38	100.00	24	100.00

Source-Personal Survey, 2023-24.

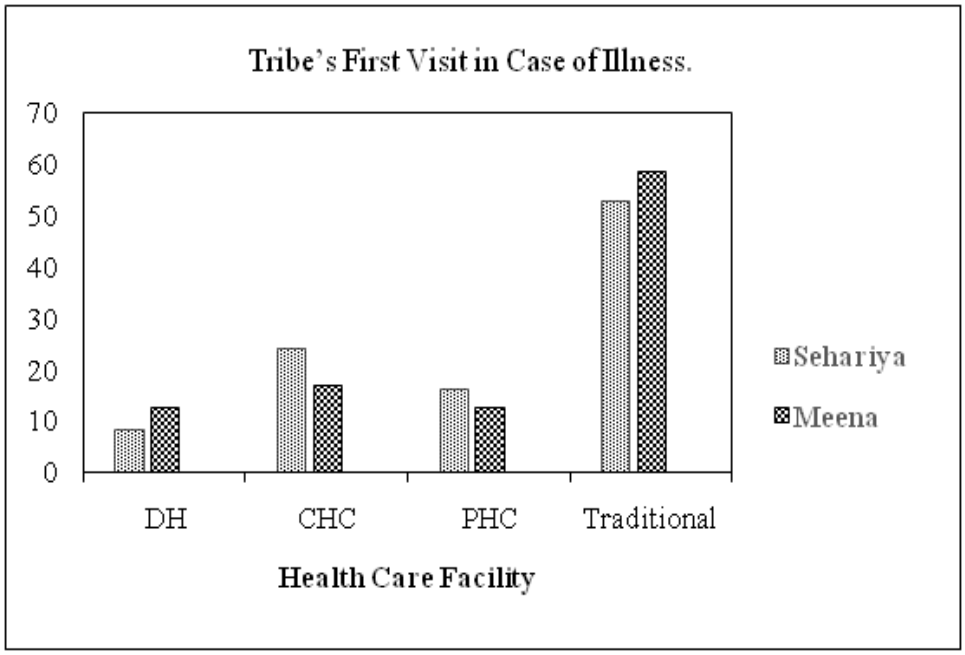

Fig. 1

Change in Healthcare Facility during Treatment

According to tribal respondents, changes in healthcare facilities during illness are a sign of both the users' acceptability of these facilities as well as the efficiency of the healthcare delivery services and amenities at different healthcare institutions. Major factors affecting the standard of healthcare services and facilities offered by healthcare institutions include the knowledge, demeanour, and behaviour of the medical and paramedical staff as well as the accessibility and effectiveness of medical equipment.

According to the survey, higher number of respondents of Sehariya tribe 17(44.74%) respondents and Meena tribe 9(37.50%) switched from govt. to private healthcare facilities during illness. (Table 3) shows that due to a lack of facilty and inadequate equipment, respondents change their institution. There are also few respondents who change their institutions multi times. First, they go to private institutions and again come back to govt. Health care institutions. This happens just because of high cost of treatment (Fig.2).

Table 3: Change in Healthcare Facility during Treatment.

Healthcare Facility	Sehariya		Meena	
	No.	Percent	No.	Percent
Govt. to Private	17	44.74	9	37.50
Private to Govt.	8	21.05	8	33.33
Multiple Change	10	26.31	6	25.00
No Change	3	7.90	1	4.17
Total	38	100.00	24	100.00

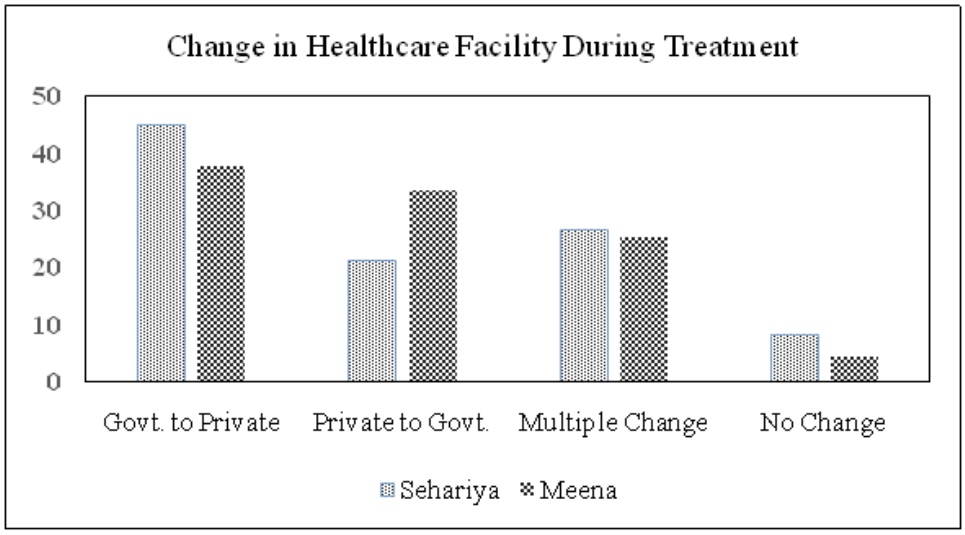

Fig. 2

A small proportion of Sehariya tribe 3(7.90%) and Meena tribe 1(4.17%) who doesn'tswitched from facility during illness.

Place of Child birth

There is less institutional delivery in the study locations. Despite numerous government initiatives, around 30 percent of births happen at home. Only 10.52 percent and 8.33percent, respectively, of deliveries in Sehariya and Meena tribe are carried out in CHC. According to Table 4. There are no private institutional deliveries happen in tribe because of high cost and transportation fare. Affordability is the main reason for place of child birth (Fig. 3).

Table 4: Place of Child birth

Birth Place	Sehariya		Meena	
	Number	Percent	Number	Percent
CHC	4	10.52	2	8.33
PHC	10	26.32	8	33.33
Private	-	-	-	-
At Home	10	26.32	8	33.33
By neighbours	14	36.84	6	25.00
Total	38	100.00	24	100.00

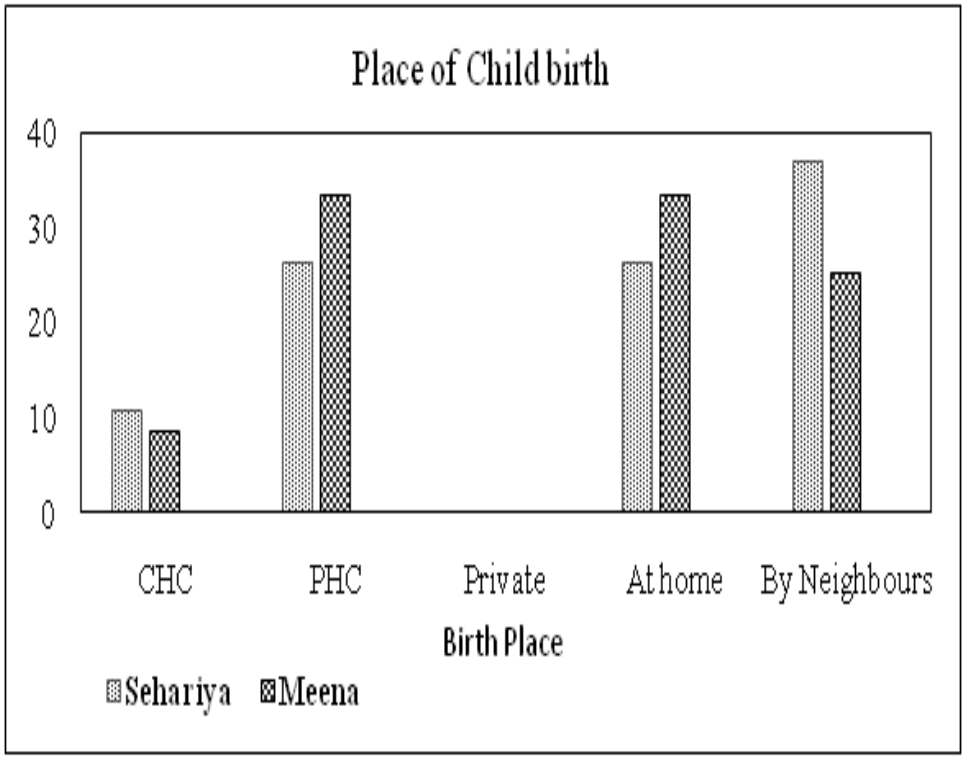

Fig. 3

Institutional Distribution of Free Medicine

At healthcare institutions in the research area, there has been a discrepancy in Institutional distribution of free medicine. Higher percentage of Sehariya 18(47.36%) and Meena 12(50.00%) respondents received free medication from CHS/SHS (Central Health Scheme/ State Health Scheme). Only 21.05percent and 16.67 percent of respondents did not receive free medicine in Sehariya and Meena tribe respectively (Table 5 and Fig 4).

Table 5: Institutional Distribution of Free Medicine

	Sehariya		Meena	
	Number	Percent	Number	Percent
Yes	18	47.36	12	50.00
No	8	21.05	4	16.67
Can't say	12	31.59	8	33.33
Total	38	100.00	24	100.00

Source-Personal Survey, 2023-24.

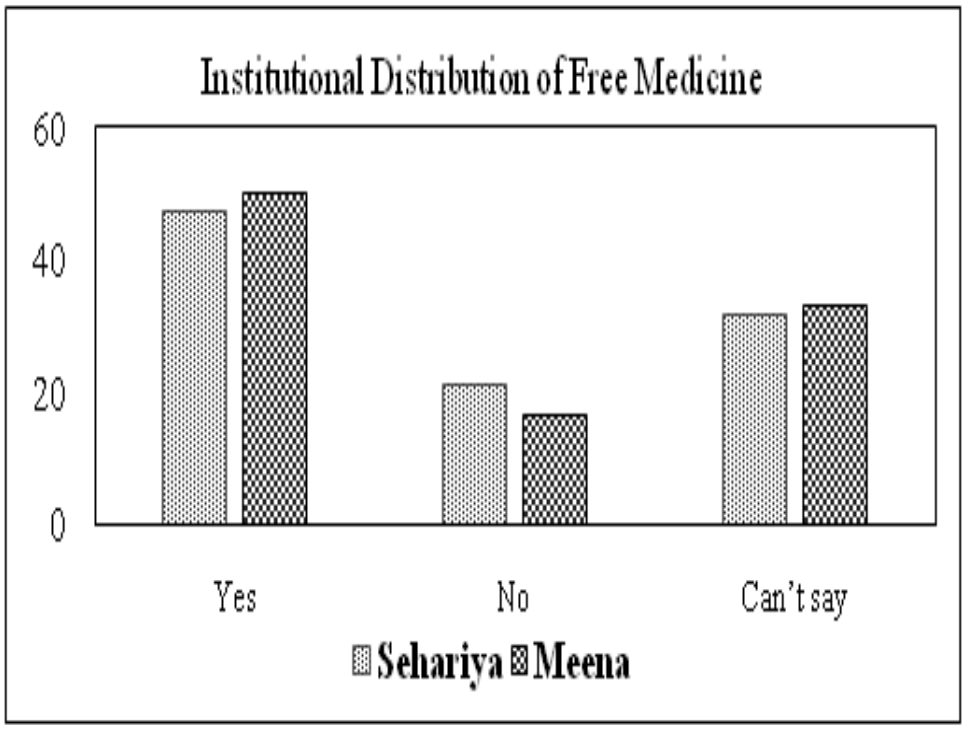

Fig. 4

Health Workers Visit Households

As shown in table 6, some households indicated that no healthcare providers had ever visited. While maximum numbers of respondents have knowledge about visits of health workers (Fig. 5).

Table- 6 Health Workers Visit Households

	Sehariya		Meena	
	Number	Percent	Number	Percent
Yes	18	47.37	10	41.66
No	9	23.68	5	20.84
Can't say	11	28.95	9	37.50
Total	38	100.00	24	100.00

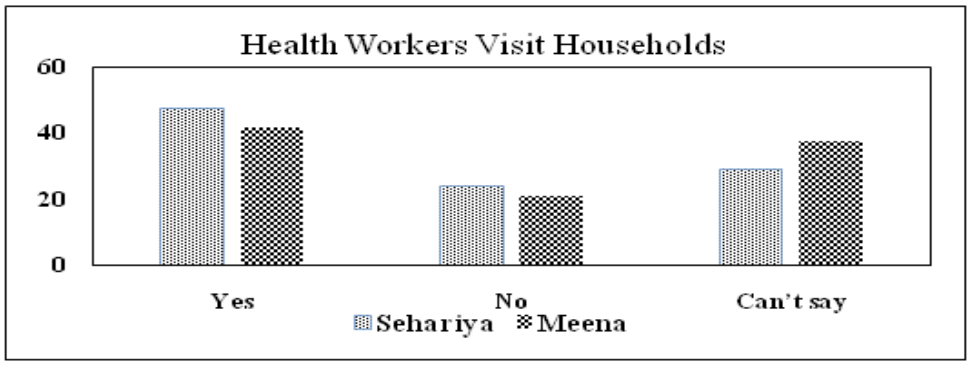

Conclusion

Study reveals that Traditional healers are the primary source of care for the majority of tribal households. It was observed that most respondents performed religious rites in a situation, when they consider that a person has fallen sick due to supernatural forces. 30 percent of respondents depends on jhadphuk and 43 percent depends on medicinal plants and animals. Both tribes visit traditional way in first visit. From the analysis, it can be argued that health belief is one of the most important predisposing factors to seek health services.

❒

References :

1. *Islary, J. (2014). Health and Health Seeking Behaviour among Tribal Communities in India: A Socio-Cultural Perspective. Journal of Tribal Intellectual Collective India, 1-16.*
2. *Kushwah, V. S., Sisodia, R., and Bhatnagar, C. (2017). Magico-Religious and Social Belief of Tribals of District Udaipur, Rajasthan. Journal of Ethnobiology and Ethnomedicine, 13, 1-7.*
3. *Mahawar, M. M., and Jaroli, D. P. (2007). Traditional Knowledge on Zootherapeutic Uses by the Saharia Tribe of Rajasthan, India. Journal of Ethnobiology and Ethnomedicine, 3, 25.*
4. *Meena, A. K., and Rao, M. M. (2010). Folk Herbal Medicines Used by the Meena Community in Rajasthan. Asian Journal of Traditional Medicines, 5(1), 19-31.*
5. *Negi, D. P., and Singh, M. M. (2018). Tribal Health and Health Care Beliefs in India: A Systematic. International Journal of Research in Social Sciences, 8(5), 1.*
6. *Sahoo, M., and Pradhan, J. (2021). Reproductive Healthcare Beliefs and Behaviours Among Dis placed Tribal Communities in Odisha and Chhattisgarh: An Analysis Using Health Belief Model. Journal of the Anthropological Survey of India, 70(1), 87-102.*
7. *Thamminaina, A., Kanungo, P., and Mohanty, S. (2020). Barriers, Opportunities, and Enablers to Educate Girls from Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs): A Systematic Review of Literature. Children and Youth Services Review, 118, 105350.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121, अप्रेल–जून, 2025 पृ. 121–1131

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Revisiting Gandhian Thought for Holistic Development in Emerging India Addressing Contemporary Challenges and Opportunities

Mr. Lav Kumar
PhD Scholar, Centre for Diaspora Studies, Central University of Gujarat,
E-mail: lav3103@gmail.com
Ms. Ankita Pandey
PhD Scholar, Department of Gandhian Thought and Peace Studies, Central University of Gujarat,
E-mail: ankitapandey898@gmail.com

Abstract

In the 21st century, India is positioned as a rapidly growing economy with aspirations to reach high middle-income status by 2047. The nation's developmental model seeks to balance modern economic growth with sustainable and inclusive progress. The global challenges in the form of resource scarcity, economic inequality, and environmental degradation, along with the impact of the COVID-19 pandemic, have exposed gaps in traditional Western-influenced development approaches. In contrast, Gandhian thought, which promotes self-reliance, simplicity, and community-driven development with sustainable living, offers a viable alternative for fostering holistic development in 21st-century India. Mahatma Gandhi's vision remains remarkably relevant in addressing the contemporary developmental challenges of emerging India. This paper revisits the Gandhian principles and explores how they can help in addressing current issues in the areas of education, health and the environment. It answers the question of how far applying Gandhian thought to policymaking can help in creating a more people-centric holistic development model for all. The paper also analyses the role of Gandhian principles in creating a long-term development strategy that can ensure sustainable, inclusive, and equitable progress in India.

Keywords- Gandhian Thought; Holistic Development; Inclusive Progress; India; Reforms, Sustainability.

Introduction

The 21st century is the era of Globalization in which the World is witnessing faster-growing economies with highly equipped modern patterns of development. India is also at the pace of the fastest-growing economy, with the aspirations to reach high middle-income status by 2047. India is heading towards a sustainable

competitive model that can result in building new global leadership and investment in human resources. It also focuses on the development of Indigenous resources like agriculture, cottage industry, handloom crafts, labor-intensive work in a more efficient manner, education, infrastructure, and health facilities. According to the World Bank, India has made remarkable growth in the past two decades in reducing extreme poverty to half (below $2.15 per person per day) of the population living in extreme poverty between 2011 and 2019. However, as per the World Bank's Poverty and Inequality Portal & Macro Poverty Outlook, this progress slowed during the COVID-19 pandemic.

At present, each nation follows a distinct development model that has a specific economy during the policy-making and implementation process. However, we can still observe that Western-influenced development models, commonly known as capitalist models, are widely embraced in many parts of the world. After the end of the Cold War, even countries with different governing systems, such as the Soviet Union (communist model) and Japan (conservative model), adopted the capitalist model as their approach to development. The Western or capitalist model of development became popular largely due to the dominance of Western powers over many non-Western countries, specifically what we call them today as developing and underdeveloped nations. These areas were former colonies of Western nations, which influenced their adoption of this model. When we look at the colonial experience, there is a stark contrast between the two sides. Western nations experienced it as colonial rulers, while non-Western or Third World countries experienced it as colonies of developed powers. This has resulted in a significant gap between the two worlds in terms of their historical background, growth, and approaches to development (Behera & Nayak, 2022, pp. 4–5).

Andre Gunder Frank, in his "theory of dependency," highlights the ongoing debate surrounding development and underdevelopment. He emphasized the importance of his underdevelopment theory by arguing that we cannot formulate the exact developmental theories and policies for the majority of nations, especially those who have suffered or are suffering from underdevelopment. According to him, it is crucial to gain a deeper understanding of the background of economic and social history that has led to a nation's current status as underdeveloped. This is why there are significant flaws in the current development model, which is heavily influenced by Western approaches and built on unequal foundations. As a result, non-Western or Third World countries have not benefited equally (Persaud, 1987, pp. 337–339).

Holistic development is crucial for addressing and overcoming the complex challenges of today's world in a comprehensive manner. It encompasses the entire development process, starting from the individual to society, with the inclusion of the community and culture of the nation as a whole. This approach ensures that even the most vulnerable and disadvantaged members of society are included and benefit from development efforts. Holistic development not only focuses on including the

vulnerable but also works to bridge the gap between the urban and rural landscapes of society. By ensuring equitable growth, it addresses the disparities that exist within different sections of society. For instance, NITI Aayog's Aspirational District Program aligns with this vision, emphasizing inclusive development, convergence, and collaboration as crucial driving factors for development (A Holistic Approach to Rural Development in India, 2023).

The Gandhian vision is very close to the approach of Holistic development. Gandhian perspective always talks about the vision, which is collective and holistic in nature. It includes from individual to nation, and in between, it also involves society, community, culture, etc. Gandhi stated that "the Earth has enough resources for our need, but not for our greed." His ideas of Self-reliance, Swadeshi, Trusteeship, Nai-Talim, Non-violence, Truth, Wardha education, promoting cottage and handicraft industry, etc., represented the core pillars of development. But there are major key challenges that arise in between the way of holistic development of emerging India like scarcity of resources, increasing population with higher density, lack of skilled person, imbalance in parameters of Human Development Index in terms of education, health, and poverty, per capita income, life expectancy, etc., lack philosophical balance in policy making and implementing process, lack of technology and quality education and vocational education, gap in economic participation and need more participation of women in the workforce, etc. At present, we can see the disparities among nations, whether developed or developing nations. The growing disparity between rapidly increasing resource needs and the slow rate at which resources are replenished is getting wider and needs to be addressed (Gupta, 2015, pp. 27–32).

This study looks at why holistic development is crucial for the overall development of the Indian population and revisits the idea of Mahatma Gandhi from a locally relevant perspective. As New India faces certain sets of challenges in its path of development, it's important to bring Gandhian vision back into our development strategies. The first part of this article will discuss the current state of India and the obstacles to achieving holistic development. The second part will explore how the Gandhian perspective can help in tackling the issues of poverty, education, health, and the environment, especially in light of the COVID-19 pandemic. Finally, the paper will conclude by highlighting why Gandhi's approach is vital for shaping India's developmental goals and offering practical suggestions for addressing today's challenges.

Pillars of Holistic Development, India & Gandhian Vision

According to the UN Report, South Asia's economies, including India, are facing key developmental challenges such as infrastructure deficits, energy shortages, inequality, and social unrest. The latest "The Sustainable Development Goals Report 2024" highlights that the current progress is falling short of meeting the expected targets of SDGs. It is also observed that to overcome the developmental challenges, it is necessary to achieve SDG goals. Suggestive measures prescribed

in the report advocate for massive investment, scaled-up actions, and a well-defined blueprint for achieving the milestone of a prosperous and resilient globe (The Sustainable Development Goals Report 2024, 2024, pp. 4–7). Divides between the rural and urban areas, elites and the masses, as well as Western and non-Western models, continue to create significant gaps in the path of holistic development. Social challenges such as corruption, discrimination, skill gaps, and the lack of cultural integration in policymaking further hinder progress (Gururaja & Ranjitha, 2022, pp. 173–174).

Holistic development focuses on the overall aspect of existing challenges and untouched areas that need to be taken into consideration for development. All the important aspects are interconnected and interrelated to each other, like poverty can be eradicated with inclusive policies for hunger, quality education, and basic living conditions. These aspects should be dealt hand in hand for better outcomes. That's why holistic development is important; it talks about collective affords and measures in the way of handling and identifying issues and challenges (Dab & Bose, 2022, pp. 90–91). India is going through a transitional phase of development in which they are trying to recognize the Indigenous strength of the nation through various programs and policies like Atamnibhar Bharat, Digital India, and Sabka Sath Sabka Vikas. India is on its way to fulfilling the global agenda of the 2030 Sustainable Development Goals (SDGs) by making effective policies and their implementation to eradicate poverty & hunger, quality education, and clean cities. In this context, Gandhian thought, with its focus on inclusivity, sustainability, and equitable growth, can play a contemporary role in accelerating development. Over the next six years, integrating Gandhi's vision could significantly enhance both the speed and quality of holistic development, aligning with the goals for a more prosperous and resilient India.

This extreme situation of challenges requires the Indigenous approach of the individual countries with a strong baseline of development. The Gandhian vision comes with that baseline for the developmental process, which can blend and broaden the growth of any nation in the long run. For India, his approach is very indigenous and inclusive in targeting the prevalent crisis. It is based on the holistic and sustainable development of the masses in an interconnected model. He stated that "the Earth has enough resources for our need, but not for our greed." His ideas are still very relevant and will remain relevant in many aspects, such as education, environment, economy, international relations, political and social aspects, etc. Gandhian perspective is a continuous lifestyle approach that focuses on the holistic inclusion of the masses (Vyas & Upadhayay, 2019, pp. 7256–7260).

1. Education as a Catalyst for Holistic Development: A Gandhian Perspective

Education forms the foundation of a well-rounded society. It nurtures awareness, knowledge, morality, ethics, culture, and responsibility and generates a sense of accountability toward the nation. Mahatma Gandhi believed that education should be rooted in four key principles: Peace, nonviolence, Sustainable development, and

Service to others. These values guide the true purpose of education by making a harmonious and inclusive society. Recognizing the contribution and relevance of Gandhian thoughts in terms of peace and sustainable development, the Mahatma Gandhi Institute of Education for Peace and Sustainable Development (MGIEP) is established under UNESCO Category 1 International Institute. It has gained global significance, especially in the Asia-Pacific region, to become a leading center for education, knowledge creation, and promotion of peace and sustainable development (Education for Peace and Sustainable Development, MGIEP, UNESCO).

Different parts of the world have their own education systems, shaped by their unique goals, interests, ambitions, and visions. These systems help in imparting values and cultures and help in generating an understanding of the local environment. The problem arises when some countries teach their children by glorifying their own nation and portraying it as superior to others. This can lead to a sense of narrow nationalism among children, fostering division rather than unity. In contrast to this, Gandhi ji focuses on the aspect where a nation should inculcate the qualities of cooperation, harmony, tolerance, love, patriotism, adjustment, and fraternity in the minds of children. This creates a broader sense of nationalism and friendship among nations and creates a sense of happiness and freedom (Bridging Past and Present: A Gandhian Perspective on India's National Education Policy, 2020).

Mahatma Gandhi had always sought an education system that would contribute to the transformation of the nation. His vision for education was holistic, encompassing theoretical, practical, vocational, and skill-based knowledge aimed at fostering self-reliance and self-sufficiency among individuals. In contemporary times, the New Education Policy (NEP) 2020 aligns with Gandhi's educational ideals. Gandhi emphasized various aspects of education, including curriculum design, teaching methods, the roles of teachers and students, the significance of craftsmanship, spirituality, and the environment. The NEP 2020 echoes many elements of Gandhi's Nai Talim approach, such as promoting multilingualism, removing the divide between academic and vocational streams, offering flexibility in course selection, and encouraging students to engage with local communities (Gandhi's Ideas of Education and the New Education Policy, 2020).

Gandhi believed that detaching education from labor would give rise to social injustice, a concept that strongly resonates with the NEP's emphasis on Hands-on leading and community engagement, mirroring his philosophy of Nai Talim. We will explore how both the New Education Policy (NEP) 2020 and Gandhi's educational ideals align with each other:

NEP 2020 focuses on the phrase "learn how to learn," which means exposure to skills and learning the skills by own hands to realize the significance of work to children. It also helps to make children self-reliant and self-sufficient. Similarly, in Nai Talim, Gandhi emphasizes education as "learning by doing," which means productive and skillful work that we do on a daily basis or in day-to-day life. The goal of NEP 2020 is very similar to Mahatma Gandhi's vision of education. His major fo-

cus, which is a relevant and important feature of NEP 2020, is Vocational (Skilled) education, which should be as casual as basic education without any distinction. According to NEP 2020, there should be no hard separation between curriculum and extracurricular subjects like gardening, dancing, yoga, etc. (Sahoo & Sahoo, 2024, p. 2)

· One of the prominent visions of NEP 2020 is to promote multilingualism through the Indian language, arts, and culture. According to the policy for school education, the medium of instruction will be in the mother tongue or local language. As it is mentioned, children learn and acquire important concepts and terminology more quickly in their own native language. Gandhi Ji also highlighted the importance of learning in the mother tongue and considered English education, which was introduced by Macaulay as a means of enslaving the Indian People. He is one of the prominent supporters of vernacular language as a teaching mode, especially in elementary/ primary education. This makes the education process more relatable and enjoyable for children. The new National Education Policy (NEP) 2020 came with "the medium of instruction at least up to class 5 but preferably up to Class 8 should be in mother tongue/ local language/ regional language" for both Public and Private schools (Sahoo & Sahoo, 2024, p. 6).

· NEP 2020 focuses on a student-centric model of education in which the entire curriculum and environment are constructed keeping their requirement in mind. Additionally, facilitating the flexible model provides the scope for the inclusion of a child's own experience in schools and institutions. This scope will make education relevant to the process of reconstruction with due changes required in the coming time as per the needs of the environment. This is also a step that is very close to Gandhian thought on education. According to him, children and young minds are building blocks of the future, so it is important to make them the epicenter of Education policies. This can help in creating a relevant and flexible structure that will be applied in future times also (Sahoo & Sahoo, 2024, pp. 5-6).

· NEP 2020 also highlighted the work-oriented and vocational education-based learning system, which ensured the basic necessity of employment. It also provides ground for the students to master and have the ability to make decisions about what they actually want to pursue further. NEP introduced the vocational courses from class 6 onwards. In higher education, multiple entry and exit options are provided to all subjects to cater to their ability in each development stage of education and make them capable of creating and generating employment. This is also a very important and unavoidable principle of the Gandhian view on the motive of grasping education. He didn't restrict the notion of education to merely learning the facts and passing the examinations. Rather, he focused on making the students capable of fighting the ongoing and upcoming challenges of life and living experiential journeys. He differentiates between the knowledge grasped in classrooms of schools and colleges from the practical learning gained with events and situations in life (Sahoo & Sahoo, 2024, pp. 6–8).

· NEP 2020 specially given attention to women's education. Its goal is to provide equal representation and opportunity to women, such as giving appropriate forums for recruitment on the basis of qualifications and merit, addressing gender inequality in rural areas, etc. Similarly, MK Gandhi strongly advocated the emancipation of women by means of education. It also talks about eradicating the hurdles in the way of facilitating education to women, like child marriage, sati, gender inequality, health issues, etc. This notion also influences other education policies and commissions like the Kothari Commission (Sahoo & Sahoo, 2024, pp. 6–8).

2. Health and Wellness: Gandhian Insight for a Balanced Approach in Modern India

Health is a key pillar of development, often encapsulated in the saying, "Health is Wealth." This highlights the critical role that health plays in achieving holistic development. Mahatma Gandhi also recognized the importance of public health, viewing it as essential for improving the quality of life in India. He believed that lifestyle choices significantly impact public health, closely linking it to socio-economic conditions, food habits, and poverty. Gandhi emphasized the value of balanced diets and proper sanitation as crucial for combating malnutrition and waterborne diseases. His philosophy of simple living, combined with healthy eating habits, finds it relevant in today's world. In the 21st century, lifestyle-related chronic diseases – such as heart disease, diabetes, cancer, stroke, and respiratory illnesses – are on the rise. It emphasized the idea of prevention through healthy lifestyle choices. During British colonial rule, Gandhi also addressed health issues prevalent at the time, such as malaria, tuberculosis, cholera, leprosy, and plague. Gandhi's focus on preventive care and simple living continues to offer valuable lessons for addressing modern public health challenges (Behera & Nayak, 2022, pp. 161–163).

In the contemporary era, there are many instances in the form of government initiatives and actions that reflect the Gandhian vision, like the LiFE initiative, Swachh Bharat Abhiyan, and the COVID-19 pandemic period as great practices to improve health culture. The honorable Prime Minister Narendra Modi, in his address at COP26 OF the UN Climate Change Conference in Glasgow on 1st November 2021, talked about the initiative "LIFE- Lifestyle for the environment." He invited the global community, individuals, and institutions to join hands in this initiative and calls for an international mass movement to protect and converse environment, which directly impacts the health aspect through natural ways (Lifestyle for Environment–Life, https://www.mygov.in/life/).

Another instance is the pandemic of Covid 19 which hit entire nations worldwide and brought them the reality of interdependency. It is evident to nations worldwide in each and every aspect, such as health, education, development process, environmental issues, security challenges, and combating pandemics like COVID-19. The collective and interconnective initiatives are key to stabilize World order in this globalizing and transnational era. The Gandhian idea of Swaraj, Sarvodaya, Swachhtata, Trusteeship, Non-violence, and Global Village became the guiding fac-

tors for fighting the Covid 19 pandemic. From adopting Naturopathy for a cure to providing global medical support with the feeling of brotherhood reflects the vision of Gandhian philosophy and its practicability across the nations (Hazarika et al., 2023, pp. 349–356).

3. Bridging Resource Management and Ecological Balance Through Gandhian Principles

Gandhi rightly pointed out that "Mother Earth has enough resources to fulfil everyone's needs, but not everyone's greed." The practice of consumerism and greed-based economy are excellent examples of unsustainable practices that have a huge bearing on natural resources. Gandhi believed that instead of exploiting society and nature by man, we all can live in a symbiotic way of life which is in harmony with each other. The idea of Sustainable development is a hope for present-day crisis and future preservation. The idea of sustainability and sustainable development is closely associated with the idea of MK Gandhi. We should be in a position to understand the issues that are generated out of existing models of development and evaluate the idea of Sustainable development in light of Gandhian thoughts to find the similarities and differences between the two. A Sustainable society is one where man and nature are in harmony with each other. The level of consumption is in equilibrium with the available resources in nature. This can only be achieved through responsible production as well as consumption of goods and services by every member of society. A sustainable society can be created through a sustainable lifestyle, and it is the lifestyle that matters a lot regarding resource consumption. The rate of resource consumption has a direct relationship with environmental degradation and ecological crisis. So, in order to protect ecology and the environment, we need to change our lifestyle to a sustainable pattern.

The lifestyle that Gandhi followed throughout his life is an excellent example of a sustainable lifestyle. His practices were in harmony with nature and society. The ultimate aim of a Gandhian egalitarian society is the development of man and society based on the idea of "Sarvodaya," i.e., the development of all in all facets of life. The goals of sustainable development are in sync with Gandhian ideas, but the major difference lies in the method used to achieve them. The responsibility of "WHAT' by WHOM & WHEN" is missing in SDGs. The major problem with SDGs is that they focus more on governments, institutions and technologies for their fulfilment. This results in ignorance of individuals and a lack of participation by the community.

Mahatma Gandhi's ideas offer valuable lessons for managing resources and maintaining ecological balance. He believed in living simply by using only what we need for our development. In today's world, we can apply his ideas by promoting sustainable farming, reducing waste, and supporting local communities in conservation efforts. Gandhi's vision of small-scale local production can help in reducing the strain on natural resources. It will establish a healthier relationship between humans and nature. The idea of Mahatma remains relevant today as we strive for a balance between human progress and environmental protection.

Conclusion

The Gandhian vision continues to be a profound and highly relevant approach to addressing the multifaceted challenges of 21st-century India. Gandhi's principles of self-reliance, swadeshi, trusteeship, and non-violence offer a sustainable framework for holistic development that contrasts sharply with the Western, consumer-driven models that often dominate the global discourse. In a world facing critical imbalances between resources and needs, growing inequality, and environmental degradation, Gandhi's emphasis on human dignity, simplicity, and interconnectedness remains a viable and necessary alternative.

The current developmental challenges- such as poverty, educational disparities, health crises, environmental degradation, and uneven resource distribution- call for an approach that transcends material progress. Gandhi's call for a balanced life, rooted in ethical values and local traditions, emphasizes a development process that is sustainable for growth while respecting the cultural and social fabric of the nation. Gandhi's vision of development is defined as searching for peace and harmony within, with surroundings, and with others. Gandhi also emphasized localizing the nature of the economy and social development, which work as a pushing factor for sustainable development. The seventeen goals defined under the sustainable development goals (SDGs) given by the UN can be viewed in comparison with the Gandhian idea to highlight both ways, including convergence and divergence, to enhance the applicability of Goals.

As India aims to establish itself as a global leader and achieve its developmental goals, including the SDGs, integrating Gandhian thought into policy frameworks across sectors such as education, economy, health, and environment are essential. This vision can help balance the demands of modern growth with the imperatives of equity, sustainability, and social harmony. Gandhi's holistic model advocates not just for economic development but for the enrichment of the human spirit, the upliftment of the marginalized, and the empowerment of communities through decentralized and inclusive growth. Thus, embracing Gandhian thought in contemporary policy-making can create a more resilient and self-sufficient India. It can guide the nation through its current crises while setting the stage for a future where development is not just about economic prosperity but about achieving well-being for all, harmony with nature, and respect for human dignity. In the present context, Gandhi and his philosophy are important for holistic and inclusive governance as well as development and public policy. The current market-driven governance and policies have narrowed down the space for concepts like autonomy and universal approach, which are exemplified by Gandhian principles like Swaraj and Sarvodaya. Gandhi's development framework offers a valuable lens for the critical evaluation of shortcomings of the existing neo-liberal, market-oriented rational choice models in governance and public policy.

❒

References :

1. *"Theory of dependency,"- Frank, A.G. (1966). The Development of Underdevelopment. Monthly Review, 41, 17-31. https://www.semanticscholar.org/paper/The-Development-of-Underdevelop ment-Frank/2720bd80075478548d8bfa5b09f16b321ad38379*
2. *"The Earth has enough resources for our need, but not for our greed" - M. K. Gandhi - Book – Trusteeship, Navajivan Trust Publication-Ahmedabad, 1960; Page 3. https://www.mkgandhi.org/faq/q5.php*
3. *"The Sustainable Development Goals Report 2024" - UN DESA. 2024. The Sustainable Develop ment Goals Report 2024 – June 2024. New York, USA: UN DESA. © UN DESA. https://unstats.un.org/sdgs/report/2024/*
4. *Ibid*
5. *Sahoo, D., & Sahoo, A. (2024). A study on the relevance of M. K. Gandhi's educational thoughts in NEP 2020: A reflection. International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR), 6(2), 1–8.*
6. *Ibid*
7. *Ibid*
8. *Chauhan, M. Gandhian views on health. Retrieved from https://www.mkgandhi.org/articles/g_health.php*
9. *"LIFE- Lifestyle for the environment." - Gupta, V., & Gupta, N. (2023). India's Target to Be a Carbo-free Country: "Life" (Lifestyle for the Environment). DME Journal of Management, 3(01), 64–70. https://doi.org/10.53361/dmejm.v3i01.10*
10. *Ibid*
11. *"Sarvodaya," - Gandhi, M. (1963). Village swaraj. Navajivan Publishing House. https://gandhiashramsevagram.org/pdf-books/village-swaraj.pdf*
12. *Ibid*

Bibliography :

- *Appadurai, A. (2011). Our Gandhi, our times. Public Culture, 23(2), 263–264. https://doi.org/10.1215/08992363-1161931*
- *Behera, A., & Nayak, S. (Eds.). (2022). Gandhi in the twenty-first century: Ideas and relevance. Springer Nature Singapore. https://doi.org/10.1007/978-981-16-8476-0*
- *Bhargava, B., & Kant, R. (2019). Health file of Mahatma Gandhi: His experiments with dietetics and nature cure. Indian Journal of Medical Research, 149(7), 5. https://doi.org/10.4103/0971-5916.251654*
- *Bridging past and present: A Gandhian perspective on India's national education policy 2020. (n.d.). Mahatma Gandhi. Retrieved September 9, 2024, from https://www.mkgandhi.org/articles/Gandhian-perspective-on-Indias-national-education-policy2020.php*
- *Chauhan, M. (n.d.). Gandhian view on health. Retrieved from https://www.mkgandhi.org/articles/g_health.php*
- *Dab, J. K., & Bose, A. (2022). The world development crisis today: Search for an alternative development model through the Gandhian perspective. Jamshedpur Research Review, 1(50), 90–91.*
- *Frank, A. G. (1996). The development of underdevelopment. Monthly Review. 41(2). 17-31. https://www.semanticscholar.org/paper/The-Development-of-Underdevelopment-Frank/2720bd 80075478548d8bfa5b09f16b321ad38379*
- *Gandhi, M. (1963). Sarvodaya. In Village swaraj. Navajivan Publishing House. Retrieved from https://gandhiashramsevagram.org/pdf-books/village-swaraj.pdf*
- *Gandhi, M.K. (1960). Trusteeship. Navajivan Trust. https://www.mkgandhi.org/faq/q5.php*
- *Gandhi's ideas of education and the new education policy. (2020, September 30). Vivekananda International Foundation. https://www.vifindia.org/2020/september/30/gandhi-s-ideas-of-educa tion-and-the-new-education-policy*
- *Gupta, I. (2015). Sustainable development: Gandhi approach. OIDA International Journal of Sustainable Development, 08(07), 27–32.*

- *Gupta, V., & Gupta, N. (2023). India's Target to Be a Carbo-free Country: "Life" (Lifestyle for the Environment). DME Journal of Management, 3(01), 64–70. https://doi.org/10.53361/dmejm.v3i01.10*
- *Gururaja, B. L., & Ranjitha, N. (2022). Socio-economic impact of COVID-19 on the informal sector in India. Contemporary Social Science, 17(2), 173–190. https://doi.org/10.1080/21582041.2021.1975809*
- *Hazarika, A., Chetia, R., Rajkhowa, P., & Sarmah, B. (2023). Gandhian socio-economic principles and the COVID-19 era: A study through Indian perspectives. Res Militaris, 13(3), 349–356.*
- *Lifestyle for environment—Life Retrieved September 18, 2024, from*
- *https://www.mygov.in/life/*
- *Nair, A. (2023, November 23). A holistic approach to rural development in India. Hindustan Times. https://www.hindustantimes.com/ht-insight/climate-change/a-holistic-approach-to-rural-development-in-india-101700714851942.html?utm_source=ht_site_copyURL&utm_medium=social&utm_campaign=ht_site*
- *Persaud, N. (1987). Conceptualizations of development and underdevelopment: The works of Frank and Amin. International Review of Modern Sociology, 17(2), 337–359. https://www.jstor.org/stable/41420903*
- *Sahoo, D., & Sahoo, A. (2024). A study on the relevance of M. K. Gandhi's educational thoughts in NEP 2020: A reflection. International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR), 6(2), 1–8.*
- *Singh, P. (2020). A comparative media research study on the relevance of Mahatma Gandhi's mass journalism in the age of mass communication revolution & modern literature. International Journal of Advanced Research, 8(02), 419–432. https://doi.org/10.21474/IJAR01/10478*
- *The 17 goals of Sustainable Development. United Nations Department of Economic and Social Affairs. Retrieved September 9, 2024, from https://sdgs.un.org/goals*
- *The Sustainable Development Goals Report 2024. (2024). United Nations Department of Economic and Social Affairs (UN DESA). UN DESA.*
- *https://unstats.un.org/sdgs/report/2024/*
- *Vyas, M., & Upadhayay, A. (2019). Sustainable development – Relevance of Gandhian thoughts. Think India Journal 22(10), 7256–7266.*
- *https://thinkindiaquarterly.org/index.php/think-india/article/view/12102/7560*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121, अप्रेल–जून, 2025 पृ. 132–141

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Inclusive Education- Reflection of Dr. B.R. Ambedkar's Philosophy of Social Justice in the National Education Policy 2020 and the National Curriculum Framework for School Education 2023

Dr. Subhash Singh
Assistant Professor, Dept. of Education in Social Sciences (DESS),
National Institute of Education (NIE),
National Council of Educational Research and Training (NCERT), New Delhi.
Email- subhashsingh.ncert23@gmail.com, Mobile- 7835838686

Abstract

Inclusive education is a fundamental principle in India's evolving educational landscape, rooted in Dr. B.R. Ambedkar's vision of social justice and equality. His advocacy for the marginalized communities inspired the National Education Policy (NEP) 2020 and the National Curriculum Framework for School Education (NCF) 2023 to emphasize access, equity, and quality education for all students, regardless of caste, gender, disability, or socio-economic background. The NEP 2020 promotes students-centric approach, multilingual education, and flexible pathways, reflecting Dr. Ambedkar's commitment to educational empowerment as a means of societal transformation. The NCF 2023 operationalizes these principles through inclusive pedagogy, competency-based learning, and teacher training reforms aimed at fostering empathy and diversity awareness. Together, these frameworks embody Dr. Ambedkar's legacy, ensuring education becomes a tool for dismantling social hierarchies and building an equitable society. This synergy marks a significant step towards realizing India's constitutional promise of social justice through inclusive education.

Keywords : Affirmative Action, Equity, Inclusive Education, Marginalized Communities, Social Justice,

Introduction

Inclusive education and social justice are critical pillars for the holistic development of contemporary India, a diverse country with a complex social fabric shaped by centuries of caste, class, gender, and religious distinctions. In a country where disparities in access to education have historically mirrored societal inequities, fostering an inclusive educational environment is essential for achieving social justice. By integrating diverse learners into the mainstream education system, inclusive

education not only empowers marginalized communities but also promotes national unity and sustainable development[1]. Inclusive education refers to a system that accommodates all students, regardless of their socio-economic background, caste, gender, religion, or disability, within a common learning environment. This approach aims to provide equitable learning opportunities and foster an environment where every learner feels valued and respected. According to the United Nations International Children's Emergency Fund (UNICEF), "Every child has the right to quality education and learning. Inclusive education allows students of all backgrounds to learn and grow side by side, to the benefit of all.'[2] Thefore, the idea of inclusive education is based on social justice. In India, where systemic inequalities have long deprived certain groups of quality education, inclusive education serves as a powerful tool to bridge these gaps.

The concept of social justice, deeply rooted in India's Constitution, finds resonance in Dr. B.R. Ambedkar's philosophy. He believed that education is the most powerful tool for social reform and envisioned it as a means to eradicate caste-based discrimination and economic disparity. Dr. Ambedkar's advocacy for universal education and affirmative action laid the foundation for many contemporary policies that aim to uplift marginalized communities. In contemporary India, social justice in education goes beyond mere access; it involves creating an environment that nurtures dignity, equality, and empowerment.[3] Affirmative Action's such as reservations for Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), and Other Backward Classes (OBCs) in educational institutions are examples of policies that aim to redress historical injustices.[4] However, ensuring social justice also requires addressing emerging inequalities, such as those faced by economically disadvantaged groups and persons with disabilities.

The National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes inclusive education as key to achieving equity and social justice,[5] particularly for marginalized communities like SCs, STs, OBCs, and minorities. Reflecting Dr. B.R. Ambedkar's vision of education as a tool for social transformation, the NEP 2020 promotes flexible curricula, regional languages, and community involvement to remove barriers to education. The National Curriculum Framework for School Education (NCF-SE) 2023 builds on the NEP 2020 by focusing on competency-based learning and culturally responsive teaching. It integrates local knowledge and social justice issues, ensuring education is relevant and engaging for diverse students.[6] Together, these initiatives aim to create a just, empathetic, and socially responsible society through transformative, inclusive education.

Dr. B.R. Ambedkar's Philosophy on the Role of Education in Social Justice

Dr. B.R. Ambedkar, one of India's foremost social reformers and the chief architect of the Indian Constitution, profoundly influenced the nation's pursuit of social justice. His philosophy cantered on dismantling social hierarchies, particularly the oppressive caste system, and advocating for the rights and dignity of marginalized communities. Dr. Ambedkar's vision of social justice went beyond mere legal equal-

ity; he sought to establish a society where every individual, regardless of caste, class, gender, or religion, had equal opportunities and a dignified existence.[7] He believed that education was the most powerful tool to achieve this vision, offering both individual empowerment and societal transformation.

Dr. Ambedkar's personal experiences with caste discrimination shaped his belief in education as a means of liberation. Born into a Dalit family, he faced significant social and economic barriers but overcame them through relentless pursuit of knowledge. Dr. Ambedkar's journey from being a Dalit boy denied basic schooling to a scholar at prestigious institutions like Columbia University and the London School of Economics, exemplified his commitment to academic excellence and highlighted the transformative power of education. He argued that education was not just a privilege but a fundamental right that could eradicate ignorance, foster critical thinking, and challenge social inequalities.[8]

Central to Dr. Ambedkar's philosophy was the idea that education should be inclusive and accessible to all, particularly the oppressed and marginalized communities. He was a staunch advocate for the education of Dalits, women, and other disadvantaged groups, recognizing that their exclusion from education perpetuated systemic inequalities.[9] Dr. Ambedkar believed that education was essential for the emancipation of the oppressed, particularly the Dalits, who had been historically marginalized under the rigid caste system. He viewed education as a means to empower individuals, enabling them to break free from the shackles of social discrimination and economic exploitation. He tirelessly campaigned for policies that ensured educational access for underprivileged communities, laying the groundwork for affirmative action in India's educational system.[10] Dr. Ambedkar's emphasis on education as a means of social justice is reflected in his broader political philosophy. He argued that education should foster a sense of social responsibility and ethical citizenship. He saw education as the foundation for creating a just society where individuals could exercise their rights and fulfil their duties with awareness and integrity. Dr. Ambedkar's vision aligned with his belief in a just and equitable society governed by rationality, liberty, equality, and fraternity.[11]

Dr. Ambedkar's philosophy emphasized the role of education in bridging social inequalities. He argued that education should be accessible to all, irrespective of caste, creed, or gender, to dismantle the hierarchical structures that perpetuate social injustice. In his speeches and writings, he often criticized the traditional Hindu social order for its exclusionary practices and advocated for reforms that would democratize education. He was a staunch supporter of affirmative action policies in education, believing that they were necessary to rectify historical injustices and provide equal opportunities for marginalized groups.[12] For Dr. Ambedkar, education was intrinsically linked to political awareness and participation. He believed that an educated populace is essential for the functioning of a democratic society. Dr. Ambedkar often urged the Dalit community to educate themselves, organize, and agitate for their rights, encapsulated in his famous slogan, "Educate, Agitate,

Organize." He was convinced that education would enable the oppressed to understand the socio-political structures that perpetuate their marginalization and equip them with the tools to challenge and change these structures through democratic means.[13]

Dr. Ambedkar also recognized the critical role of women's education in achieving social justice. He believed that educating women was fundamental to creating a just and equitable society. His advocacy for women's rights, particularly in the context of education, was evident in his efforts to draft progressive laws during his tenure as India's first Law Minister. Dr. Ambedkar's support for the Hindu Code Bill, which sought to grant women equal rights in marriage, inheritance, and property, was a reflection of his belief in gender equality as a cornerstone of social justice.[14] Dr. Ambedkar's philosophy extended beyond the acquisition of knowledge to the cultivation of self-respect and dignity. He believed that education should empower individuals to assert their rights and challenge societal norms that demean and dehumanize them. For the Dalit community, in particular, education was a path to reclaiming their identity and humanity in a society that had long denied them both. Dr. Ambedkar's insistence on the dignity of the individual was a recurring theme in his advocacy for universal education and equal access to learning opportunities.[15]

Dr. Ambedkar's philosophy on education remains profoundly relevant in contemporary times. In a global context where social inequalities persist, his emphasis on education as a means of social mobility and justice resonates across various societies. His ideas inspire movements advocating for, affirmative action, and social inclusion, not only in India but around the world. The challenges of access, quality, and equity in education highlight the ongoing need to revisit Dr. Ambedkar's vision to address contemporary social justice issues.

Inclusive Education in the National Education Policy 2020

The National Education Policy (NEP) 2020 marks a significant milestone in 21st-century education, aiming to meet the evolving developmental needs of India. This policy envisions a comprehensive overhaul of the education system, encompassing structural reforms, regulation, and governance, to align with the ambitious goals of modern education, including Sustainable Development Goal (SDG) 4. Rooted in India's cultural heritage and value systems, NEP 2020 emphasizes nurturing the creative potential of every individual. It underscores the importance of developing not only foundational literacy and numeracy skills but also higher-order cognitive abilities like critical thinking and problem-solving, alongside fostering social, ethical, and emotional growth.[16]

The NEP 2020 marks a transformative shift in India's education system, emphasizing inclusivity and equity as its core pillars. The NEP 2020 states "Education is the single greatest tool for achieving social justice and equality. Inclusive and equitable education - while indeed an essential goal in its own right - is also critical to achieving an inclusive and equitable society in which every citizen has the opportunity to dream, thrive, and contribute to the nation. The education system must aim to

benefit India 's children so that no child loses any opportunity to learn and excel because of circumstances of birth or background."[17] The policy recognizes that inclusive education is essential for fostering social cohesion, reducing disparities, and promoting holistic national development. This approach is particularly relevant in a diverse country like India, where educational inequalities are prevalent across various regions and communities.

The Indian education system has made progress in reducing gender and social category gaps, but significant disparities persist, particularly at the secondary level, for socio-economically disadvantaged groups (SEDGs). These groups include individuals based on gender (female and transgender), socio-cultural identities (SCs, STs, OBCs, minorities), geography (rural and remote areas), disabilities, and socio-economic conditions (migrant communities, low-income households, orphans, urban poor). Enrolments drop steadily from Grade 1 to Grade 12, with sharper declines among SEDGs, especially for female students, and even more so in higher education.[18]

According to Unified District Information System for Education (U-DISE) 2016-17 data, 19.6% of primary-level students belong to Scheduled Castes, but this figure drops to 17.3% at the higher secondary level. The decline is even more pronounced for Scheduled Tribes (from 10.6% to 6.8%) and differently-abled children (from 1.1% to 0.25%), with female students in each group experiencing sharper decreases. Enrolment in higher education shows an even steeper decline. Various factors, such as limited access to quality schools, poverty, social customs, and language barriers, have negatively impacted enrolment and retention rates among Scheduled Castes. Addressing these disparities in access, participation, and learning outcomes remains a key priority.[19]

Other Backward Classes (OBCs), identified as historically socially and educationally disadvantaged, also require special attention. Similarly, children from tribal communities face multiple disadvantages due to historical and geographical factors. Tribal students often find school education culturally and academically disconnected from their lives. Although several initiatives are in place to support tribal children, additional mechanisms are necessary to ensure they fully benefit from these programs. Minority groups are also underrepresented in both school and higher education. The Policy emphasizes the need for targeted interventions to promote education among all minority communities, especially those that are educationally marginalized. Furthermore, the Policy highlights the importance of providing children with special needs (CWSN or Divyang*)* equal opportunities for quality education. Specific strategies will be developed to address social category disparities in school education, as detailed in the subsequent sections.[20] It emphasizes the importance of creating an inclusive learning environment by providing teachers with specialized training in inclusive pedagogies, developing appropriate learning materials, and leveraging technology. Provisions such as assistive devices, accessible learning resources, and barrier-free infrastructure are highlighted to ensure that students with disabilities can fully participate in the educational process.

The NEP 2020 also aims to bridge the gender gap in education by promoting gender sensitivity and inclusivity across all levels of schooling. The policy introduces measures to encourage girls' enrolment and retention, especially in rural and underserved areas, by offering incentives such as scholarships, free transport, and sanitary facilities. Furthermore, the NEP 2020 supports the establishment of 'Gender Inclusion Funds' to promote gender equity and ensure that socio-cultural barriers hindering girls' education are systematically addressed.[21] Another key aspect of inclusivity under NEP 2020 is its focus on marginalized and disadvantaged groups (SEDGs), which include scheduled castes, scheduled tribes, other backward classes, and minorities. The policy proposes Special Educational Zones (SEZs) and targeted interventions in regions with high concentrations of SEDGs to improve their access to quality education. By incorporating local culture, language, and context into the curriculum, NEP 2020 seeks to create a more relevant and inclusive learning experience for students from diverse backgrounds.[22]

Lastly, NEP 2020 promotes the use of multilingual education as a tool for inclusion, particularly at the foundational stage. By encouraging the use of regional languages and mother tongues as mediums of instruction, the policy aims to make education more inclusive and engaging for young learners. This approach not only helps in preserving India's linguistic diversity but also enhances cognitive development and learning outcomes.[23] Overall, the NEP 2020 envisions an education system that is equitable, accessible, and inclusive, ensuring that every child, irrespective of their circumstances, has the opportunity to succeed.

Reflection of Dr. Dr. Ambedkar's Philosophy in the NEP 2020 and NCF-SE-2023

Dr. B.R. Ambedkar, a visionary social reformer, emphasized education as a critical tool for social transformation and empowerment. He believed inclusive and accessible education was essential to eradicating inequality, particularly for marginalized communities like Dalits. Dr. Ambedkar viewed education as a "weapon" to combat social discrimination and foster democratic values, emphasizing its role in building a just society founded on liberty, equality, and fraternity.[24] Under the leadership of Prime Minister Modi, the Indian government is dedicated to implement Dr. Ambedkar's vision and philosophy, that reflected in the National Education Policy (NEP) 2020 and the National Curriculum Framework for School Education (NCF-SE) 2023, both of which emphasize inclusivity, equity, and quality education for everyone.

A key element of Dr. Ambedkar's philosophy was the emphasis on social justice-ensuring that every individual, regardless of caste, class, gender, or disability, has equal opportunities. His advocacy for the marginalized sections is seen in his contributions to India's Constitution, which enshrined principles of equality and non-discrimination.[25] The NEP 2020 echoes this commitment by focusing on inclusive education, seeking to address systemic inequalities in the education system. Through measures like scholarships, inclusive curricula, and special education zones, the NEP 2020 aims to bridge the educational divide and provide equal opportunities to

marginalized sections of society.[26] The NEP 2020 incorporates multiple provisions that directly reflect Dr. Ambedkar's vision for social justice through education. The policy emphasizes the need for equitable access to education for children from disadvantaged groups, including SC, ST, and OBC, as well as children with disabilities. Additionally, the NEP 2020 promotes the use of local languages and diverse learning materials to create an inclusive learning environment that respects cultural and linguistic diversity.[27] These efforts mirror Dr. Ambedkar's belief that education should not just be for the privileged but must uplift those who have historically been denied access.

The NEP 2020 emphasizes equity and inclusion, core tenets of Dr. Ambedkar's educational vision. By proposing a flexible, multidisciplinary approach and recognizing the diverse learning needs of students from marginalized communities, the NEP 2020 aims to bridge societal gaps in education. For instance, the policy advocates for the establishment of Special Educational Zones in regions with disadvantaged populations, echoing Dr. Ambedkar's call for focused attention on underrepresented groups. This emphasis on inclusivity addresses Dr. Ambedkar's long-standing vision of democratizing education to uplift the oppressed.[28] Dr. Ambedkar championed the cause of universal access to education, particularly for Dalits and other marginalized communities. The NEP 2020 aligns with this by promoting initiatives such as gender inclusion funds and targeted scholarships for socio-economically disadvantaged groups. Additionally, the policy proposes the incorporation of local languages in early education, ensuring linguistic diversity and reducing cultural alienation—a move that aligns with Dr. Ambedkar's advocacy for inclusive pedagogy that respects the cultural context of learners.[29]

Dr. Ambedkar's philosophy placed significant importance on school education and skill development as a pathway for economic empowerment. The NEP 2020 addresses this through its emphasis on vocational education and a flexible curriculum, which prepares students for both academic and professional pursuits. By integrating skill-based learning and promoting digital literacy, the NEP 2020 creates opportunities for marginalized communities to compete in a global economy,[30] thus reflecting Dr. Ambedkar's vision of education as a means for socio-economic mobility.

The National Curriculum Framework for School Education (NCF-SE) 2023 builds on the National Education Policy 2020's principles, incorporating Dr. Ambedkar's ideas of equity, social justice, and critical thinking into the curriculum. By emphasizing ethical and moral education, it inculcates values of empathy, social responsibility, and democratic participation. The framework encourages students to engage with social issues, fostering a sense of civic duty and justice,[31] which are fundamental to Dr. Ambedkar's vision of an enlightened, egalitarian society. He believed in the transformative power of education to foster social justice and ethical consciousness.[32] The NCF-SE 2023 integrates these principles by including modules on constitutional values, human rights, and social responsibilities. This ensures

that students are not only academically proficient but also socially aware and responsible citizens.33The emphasis on critical thinking and ethical reasoning mirrors Dr. Ambedkar's belief in education as a tool for questioning social norms and advocating for equality.

Dr. Ambedkar's advocacy for linguistic diversity and cultural inclusivity is evident in the NCF-SE 2023. By promoting multilingual education and recognizing the significance of local languages in the learning process, the framework addresses the linguistic needs of diverse communities.[34] This approach not only enhances cognitive development but also preserves cultural identities, reflecting Dr. Ambedkar's vision of a society that values diversity and inclusivity. Ultimately, the NEP 2020 has the potential to carry forward Dr. Ambedkar's vision of social justice through education. By promoting inclusion, equity, and respect for diversity, the policy reflects the ideals that Dr. Ambedkar championed throughout his life. For India to truly honour his legacy, sustained efforts will be needed to translate the promises of the NEP 2020 into action, ensuring that education becomes a tool for empowerment, liberation, and social transformation for all its citizens.

Conclusion

In conclusion we can say that Dr. B.R. Ambedkar was a towering figure in India's socio-political landscape and consistently advocated for education as the cornerstone of social justice and empowerment. His belief in education as a tool to dismantle caste-based inequalities and create an equitable society remains profoundly relevant today. The NEP 2020 and the NCF-SE 2023 embody his vision by emphasizing inclusivity, equity, and access to quality education for all. Dr. Ambedkar's philosophy was grounded in the belief that education is a fundamental right, not a privilege. He argued that without access to education, marginalized communities-particularly Dalits-would remain trapped in a cycle of poverty and social discrimination. His vision extended beyond mere literacy; he envisioned education as a means of fostering critical thinking, self-respect, and democratic participation. The NEP 2020 and the NCF-SE 2023 reflect this vision by addressing systemic barriers and promoting educational equity.

The NEP 2020 prioritizes universal access to education from the foundational level, aiming to bridge socio-economic and regional divides. It acknowledges the need for affirmative action, such as scholarships and special provisions for underrepresented groups. This approach mirrors Dr. Ambedkar's call for affirmative measures to ensure Dalits and other marginalized communities have equal opportunities in education. By introducing flexible, multidisciplinary learning models and emphasizing the development of life skills, the NEP 2020 seeks to create a more inclusive learning environment that nurtures diverse talents and aspirations.

The NCF-SE 2023 further strengthens this commitment by integrating principles of equity and social justice into the curriculum. It encourages pedagogical approaches that respect diversity and promote empathy, tolerance, and mutual respect among students from different socio-economic and cultural backgrounds. The framework

also emphasizes the importance of mother tongue instruction in early education, fostering a sense of identity and belonging among marginalized communities. This is consistent with Dr. Ambedkar's advocacy for linguistic and cultural inclusion as a means of social empowerment. Moreover, both the NEP 2020 and the NCF-SE 2023 recognize the role of teachers as change agents. They emphasize the need for continuous professional development to equip educators with the skills to address diverse classroom needs. This aligns with Dr. Ambedkar's belief in the transformative power of teachers in shaping an egalitarian society.

Finally, the NEP 2020 and the NCF-SE 2023 reflect Dr. Ambedkar's enduring legacy by embedding the principles of social justice, inclusivity, and equity into the Indian education system. By addressing historical disparities and fostering a culture of respect and equality, these policies aim to create a more just and inclusive society. The implementation of Dr. Ambedkar's educational ideals in these frameworks represents a significant step toward realizing his vision of an India where education serves as a vehicle for social transformation and empowerment for all, regardless of caste, creed, or socio-economic background.

❐

References :

1. "Learning For All: Equitable and Inclusive Education | Ministry of Education, GoI," accessed December 3, 2024, https://dsel.education.gov.in/inclusive-education.
2. "Inclusive Education | UNICEF," accessed December 3, 2024, https://www.unicef.org/education/inclusive-education.
3. Pranita Thorat, "Reimagining Education: A Vision of Justice and Equity," NO NIIN Magazine, accessed December 3, 2024, https://no-niin.com/issue-26/reimagining-education-a-vision-of-justice-and-equity/.
4. ayush chandra, "Caste-Based Reservations and Affirmative Action in India?» LegalOnus," LegalOnus (blog), July 29, 2024, https://legalonus.com/caste-based-reservations-and-affirmative-action-in-india/.
5. "Learning For All: Equitable and Inclusive Education | Ministry of Education, GoI."
6. "Shri Dharmendra Pradhan Releases National Curriculum Framework for School Education in New Delhi," accessed December 3, 2024, https://pib.gov.in/pib.gov.in/Pressreleaseshare. aspx?PRID=1951485.
7. Mallik, Basanta Kumar. "The Concept of Social Justice: With Reference to Dr. Babasaheb Ambedkar." Proceedings of the Indian History Congress 57 (1996): 759–60. http://www.jstor.org/stable/44133399.
8. Dhananjay Keer, Dr. Ambedkar: Life and Mission, 1. publ., reprint (Bombay: Popular Prakashan, 1991).
9. Get link et al., "Dr. B.R. Ambedkar's Vision for Educational Reforms," accessed December 3, 2024, https://www.thefatherofmodernindia.com/2024/02/ambedkar-education-reforms.html.
10. Dr. B.R. Ambedkar, "Selected Works Of DR. B. R. Ambedkar," n.d., chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://drambedkarbooks.com/wp-content/uploads/2009/03/selected-work-of-dr-b-r-ambedkar.pdf.
11. Christophe Jaffrelot, Dr. Ambedkar and Untouchability: Analysing and Fighting Caste, The Indian Century (New Delhi: permanent black, 2006).
12. Ambedkar, "Selected Works Of DR. B. R. Ambedkar"; link et al., "Dr. B.R. Ambedkar's Vision for Educational Reforms."

13. Vasant Moon, Dr. Babasaheb Ambedkar, 1. ed, National Biography (New Delhi: National Book Trust, 2002).
14. G Yoganandham, “Dr. Br Ambedkar’s Vision for Women Empowerment and Social Transforma tion: A Blueprint for Gender Equality and Inclusive Education in Contemporary India,” Interna tional Journal of Early Childhood Special Education 16, no. 3 (July 8, 2024): 274–85, https://doi.org/10.48047/intjecse/v16i3.28.
15. Patade, Prachi. “An Overview of Dr. B.R. Ambedkar’s Educational Philosophy and Vision.” AP Bodhi Taru: A Global Journal of Humanities 7, no. 2 (April–June 2024): 509–514.
16. “National Education Policy 2020” (Ministry of Educaation, Government of India, 2020), 3–4, chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf.
17. “National Education Policy 2020,” 24.
18. “National Education Policy 2020,” 24.
19. “National Education Policy 2020,” 25.
20. “National Education Policy 2020,” 25.
21. “National Education Policy 2020,” 26.
22. “National Education Policy 2020,” 26.
23. “National Education Policy 2020,” 13–14.
24. Shivam Agrawal, “Education and Its Influence on the Nation-Building Process: A Reflection on Ambedkar’s Views in Colonial India,” Contemporary Voice of Dalit 13, no. 2 (November 2021): 132–40, https://doi.org/10.1177/2455328X211008451.
25. Debashis Debnath, “Babasaheb Dr. B.R. Ambedkar’s Human Rights Movement and Contempo rary Issues in Socio-Economic and Socio-Political Upliftment of the Depressed Sections in India,” Man in India 104, no. 1–2 (2024): 77–92, https://doi.org/10.47509/MII.2024.v104i01-2.05.
26. “National Education Policy 2020.”
27. “National Education Policy 2020,” 24–26.
28. “National Education Policy 2020,” 25–26.
29. “National Education Policy 2020,” 13–14, 26.
30. “National Education Policy 2020,” 43–44.
31. “National Curriculum Framework for School Education 2023,” chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/ncf_2023.pdf.
32. Patade, Prachi. “An Overview of Dr. B.R. Ambedkar’s Educational Philosophy and Vision.” AP Bodhi Taru: A Global Journal of Humanities 7, no. 2 (April–June 2024): 509–514.
33. “National Curriculum Framework for School Education 2023.”
34. “National Curriculum Framework for School Education 2023.”

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121, अप्रेल–जून, 2025 पृ. 142–155

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

The Position of Indian Scheduled Tribe Women in the MSME Sector

Dr. Himanshu Agarwal
Professor, Faculty of Commerce and Business Administration,
Deva Nagri College, Meerut, UP-250002, India
Email: drhimag@gmail.com Phone no. 9412125893

Taruna
Research Scholar, Faculty of Commerce and Business Administration
Deva Nagri College, Meerut, UP, India
Email: tarukutharia92@gmail.com

Abstract

The aim of this paper is to examine the social and economic status of tribal women in relation to Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs). This analysis is grounded in secondary data sourced from the Census of India and MSME reports, which were obtained from the official websites of the Census and the Ministry of Small, Medium and Large Enterprises, as well as reports from the Ministry of Tribal Affairs. The researcher has also consulted various books, journals, and online resources to gather diverse information. Scheduled tribes represent a small fraction of India's overall population and face significant marginalization. Although the Indian Constitution includes several provisions aimed at improving their circumstances, these communities continue to encounter numerous challenges. In tribal societies, gender relations appear to be more egalitarian, with women enjoying a relatively higher social status and economic value compared to their non-tribal counterparts. The Government of India has established various institutions to enhance the conditions of tribal populations, one of which is the Dalit Indian Chamber of Commerce and Industries (DICCI), founded on April 14, 2005, with the mission statement encouraging its Dalit members to become entrepreneurs rather than job seekers. Additionally, the Government of India has initiated several programs aimed at uplifting marginalized groups, including Scheduled Castes and Scheduled Tribes. The National SC/ST Hub (NSSH) has been established to provide professional support to SC/ST enterprises, facilitating their participation in public procurement processes. In this context, MSMEs play a crucial role in fostering employment and entrepreneurship among Scheduled Tribe women. MSMEs possess a remarkable ability to leverage local resources at minimal costs while assessing market needs and adjusting production to meet product demand. This sector is one of the most dynamic in India,

second only to agriculture, and is often referred to as the "backbone" of the national economy. The aim of this paper is to examine the participation rate of Scheduled Tribe (ST) women in Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs), to assess the contribution of MSMEs to employment generation in the country, and to identify the challenges encountered by ST women. To conduct a comprehensive analysis at the national level, the researcher will utilize secondary data from various annual reports on MSMEs published by the Government of India 2023-24, along with data from six census reports related to the MSME sector.

Key words: Schedule Tribes, Women, MSME, Employment, GDP Contribution, Growth

1. Introduction:

Women have become absolute half in Indian population presently. Women role and relevance in socio-economic structure of Indian economy has transformed over the year. Women have put herself on a better mark in comparison to yester years. Even in agriculture sector, the role of women cannot be underestimated. In recent past, women have emerged as an entrepreneur, not alone as big entrepreneurs but also as small and micro entrepreneurs. Every street, village, town or city has abundant numbers of Women Entrepreneurs. But all women are not at equal opportunities. There is a marginal section of Women entrepreneurs who even today are facing hidden disparities. There issues are waiting to broadcast in the main stream of the industrial current of the country. Aimed to discuss evolving role of women entrepreneurship in India, with the gradual shift of mind-set amongst the stakeholders in MSME, such women from various tribal and backward societies who are breaking the socio-economic constraints and restrictions. They are not only becoming financially independent but also challenging social outdated phenomena without removing theirselves from their primary role of 'service providers'.

The schedule tribe are only 8.08 percent of total population in India. There population is very low living in isolated places and remote from mainstream population.[1] They are at margin in many ways. Even after a number of supportive provisions in the constitution of India, there position can not be changed and they still facing confronted challenges. The gender relation in tribal societies seems to be egalitarian and woman enjoys quite high social status and economic values as compared to non-tribal women.[2] Her economic and non-economic role has equally important like males in society. She enjoyed freedom, decision power and raise her voice in not only family but also at social issues.

Scheduled Tribes in India refers to communities recognized by the Indian Constitution as tribal groups, defined by their distinct culture, geographical isolation and backwardness and are listed under Article 342 of the Constitution, allowing them special protections and affirmative action policies. Since independence various measures and policies have been implemented to protect their interest at country level in different planning periods.[3]

The advancement of tribal communities is significantly influenced by the status of tribal women within these societies, as they constitute half of the tribal demographic. The Government of India is actively initiating various programs aimed at uplifting marginalized groups, including Scheduled Castes and Scheduled Tribes. The National SC/ST Hub (NSSH) has been established to offer professional assistance to SC/ST enterprises, thereby facilitating their effective engagement in the public procurement process. This initiative will involve participation from Central Public Sector Enterprises (CPSEs), Central Ministries, state governments, and industry associations such as the Dalit Indian Chamber of Commerce and Industry (DICCI) and others. Additionally, the Hub aims to foster the development of new entrepreneurs to engage in the procurement process, leveraging the 'Stand Up India' initiative. Selected entrepreneurs will receive support and mentorship from industry experts, CPSEs, and incubators.[4]

In 2007, the Ministry of Small-Scale Industries and the Ministry of Agro and Rural Industries were consolidated to establish the Ministry of Small, Medium and Large-Scale Industries. The advancement of Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs) serves as a significant indicator of a nation's economic health. MSMEs are crucial in generating employment in a densely populated country such as India. The primary objective of emphasizing and supporting MSMEs is to create additional job opportunities, alleviate poverty, harness regional natural resources and foster a conducive business environment that facilitates the mobilization of labour, capital, and local resources.[5] It has been noted that the recognition and support of Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) represent a crucial strategy for developing nations aiming to enhance their export capabilities and maintain a competitive position in the global market. MSMEs possess a remarkable ability to leverage local resources at minimal costs while effectively assessing market demands and adapting their production processes to align with consumer needs. This sector is regarded as the most dynamic after agriculture in India, which is why it is often referred to as the "Backbone" of the entire economy.

The Micro, Small & Medium Enterprises (MSME) have been contributing significantly to the expansion of entrepreneurial endeavours through business innovations. The MSME are widening their domain across sectors of the economy, producing diverse range of products and services to meet demands of domestic as well as global markets. The MSME in India are playing a crucial role by providing large employment opportunities at comparatively lower capital cost than large industries as well as through industrialization of rural & backward areas, inter alia, reducing regional imbalances, assuring more equitable distribution of national income and wealth. Under Atmanirbhar Bharat Package, the Government of India announced to set up an INR 10,000 crore Fund of Funds for MSME.[6] This fund, which is called Self Reliant India (SRI) Fund, has the objective of supporting Venture Capital (VC) / Private Equity (PE) firms investing in the MSME sector to encourage them to invest in the MSME segment. This Fund addresses the equity

funding challenges of MSME sector and give them a thrust to break their barriers, encourage corporatisation and allow them to grow to their full inherent potential to become global champions. With Government intervention, the Fund is able to channelize diverse variety of funds into under-served MSME and address the growth needs of viable and high growth MSME.[7]

Employment generation is the salient objective of Indian Economy and MSME are very capable to eradicate this in constructive manner poverty elevation, inclusive growth and income inequality were interlinked with only one solution of employability. Today the MSMEs are widening their domain across sectors of the economy, producing diverse range of various products and services to meet the demand of domestic and international markets. This is the best time to analyse its role regarding entrepreneurship development among marginalized groups like ST.

Small and Medium Enterprises (SMEs) are playing vital role for the economic growth and stability of country and decisive position especially for developing countries as they facilitate economic activity and provide huge employment thus contributing to poverty reduction. The Micro sector with 630.52 lakh estimated enterprises accounts for more than 99% of total estimated number of registered MSMEs. Small sector with 3.31 lakh and medium sector with 0.05 lac estimated registered MSMEs accounts for 0.52% and 0.01% of total estimated MSMEs, respectively.[8] Thus, instead of taking a welfare approach, this sector seeks to empower people to break the cycle of poverty and deprivation. It focuses on people's skills and agency. However, different segments of the MSME sector are dominated by different social groups like SC/ST.

2. Concept of Women Entrepreneurship:

Women entrepreneurs can be characterized as individuals or groups of women who create and manage their own businesses. Essentially, these women are self-employed and engage in various economic activities through their enterprises. Historically, women were largely restricted to domestic roles, with their efforts primarily focused on household responsibilities, lacking socio-economic autonomy. In contemporary society, however, women are making significant strides across numerous sectors, creating job opportunities not only for themselves but also for others.[9]

The Government of India has defined a woman entrepreneurship as "an enterprise owned and controlled by a woman having a minimum financial interest of 51% of the capital and giving at least 51% of the employment generated in the enterprise to women".[10]

Women participate in business for a variety of reasons that foster their sense of dignity and self-worth within society. Key motivators such as independence, career awareness, and self-respect drive women entrepreneurs to embrace their professions as a challenge. These motivations are typically referred to as pull factors. Conversely, there are instances where women enter the business sector due to familial obligations, assuming the responsibilities associated with running a business.

These circumstances are identified as push factors. Consequently, both pull and push factors play a significant role in inspiring women to establish new enterprises or manage existing ones, thereby achieving financial independence. India has 63 million micro, small, and medium enterprises (MSMEs), of which around 20% are women owned, employing 22 to 27 million people. India ranked 57th among 65 countries in the Mastercard Index of Women Entrepreneurs.[11] Estimates suggest that by accelerating women's entrepreneurship, India could create more than 30 million women-owned enterprises, potentially creating 150 to 170 million jobs. Out of the 432 million working-age women in India, only 19% of women participate in any formal and paid work. Global Entrepreneurship Monitor (GEM) shows women's total early-stage entrepreneurial activity (TEA) rates are often high in low-income countries. Contrarily, India has an average TEA rate of only 2.6% for women. GEM reported that female entrepreneurs in India cited job scarcity as a critical motivation for business creation as against the opportunity to grow a business and earn profits.[12]

3. Scope and Objective of the study:

The aim of this paper is to examine the social and economic status of Scheduled Tribe women and their participation in Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) in India. Given the widespread nature of this issue, there is an urgent need to enhance employability to foster self-sufficiency. It is essential to develop MSMEs and encourage the involvement of Scheduled Tribe women in these opportunities. The primary objectives of this paper are as follows:

- To explore the role of MSMEs in generating employment within the country.
- To assess the participation rate of Scheduled Tribe women in MSMEs.
- To identify the challenges encountered by Scheduled Tribe women.
- To evaluate the significance of MSMEs in the economy.

4. Methodology:

This document is a theoretical research study that relies on secondary data sourced from the Census of India, the Ministry of Small, Medium and Large Enterprises of the Government of India, as well as the Annual Report of MSME and other relevant reports and studies.

5. Review of Related Literature:

Agarwal, Himanshu (2018) writes that during the British regime, the Government did not pay much attention on the tribes living in the interior forest areas, although, their attitude towards the tribes was paternalistic and protective. After Indian independence, a number of policies and programmes were initiated in the tribal areas, which had far reached consequences. The main objectives of all policies should be socio-economic development and protection of PVTGs against exploitation. The government should direct plan the forest policy so that dependency of different tribes on the collection of forest produce and hunting can be reduced through alternative sources of livelihood. Food gathering activity should also be

demoralised through engagement in the cultivation of modern crops. However, the impact of money wages and modern farm technology is negligible in the remote and interior tribal areas. Enforcement of existing legal measures should be resorted to prevent tribe indebtedness, bonded labour and other exploitation. Involving tribes especially those engaged in shifting cultivation, closely and gainfully involved in joint forest management, social forestry, agro-forestry etc., are intended to facilitate rightful collection and gainful disposal of forest produce. [13]

Agarwal and Ahmed (2021) conducted a study where in it is quoted that the development process in India is not yielding the desired results such as standard of living, extended per capita income and basic welfare facilities to all. The main culprit is low capital formation capacity of the citizens. Therefore, broader poverty line, low standard of living and weak per capita income is persisting for years. Effective allocation of regular credit, quick small loans and financial inclusion are needed strongly. Microfinance is bringing in a demographic change from lower to middle class with the support of institutional credit. Emergency loans, consumption loans, business loans, working capital loans, housing loans, micro-pensions, micro-insurance, direct benefit transfers, support amount to female account holders and other such financial services are benefiting low-income groups. Present study is based upon primary as well as secondary data. The area is Meerut, Bulandshahr and Muzaffarnangar districts of Uttar Pradesh. The study is a descriptive study. The microfinance sector is undergoing a drastic change with the advents of rising competition in consumer durables, increasing awareness about standards of living, advances in technology and evolving regulatory platforms. AI, digitalization, app-based transactions have converted microfinance in a wide-horizon business model. Financial security, data safety, transparency of transactions, fair transfer of GST and accounted information of transactions. The microfinance programme not only establishes economic, social and political empowerment of its members, but also its overall identity.[14]

Kumar et. al. (2017) conducted a study to explore the sociological factors influencing the emergence of small entrepreneurs. The findings indicated that both community and family backgrounds play a significant role in the success of aspiring entrepreneurs. Interestingly, formal education was not found to be a beneficial factor in fostering entrepreneurship. The research also highlighted that merely providing infrastructure facilities is insufficient for promoting entrepreneurial growth. Furthermore, the Association of Small Scale Industries is crucial in identifying and nurturing entrepreneurs, and there is a pressing need for robust policies to support entrepreneurs, particularly as the economy increasingly calls for the advancement of women entrepreneurs.[15]

Shukla, Rekha (2020) in her work "What would be the effect of MSME in India, if the lockdown increases 4 to 8 weeks" demonstrates that daily wage labourers are suffering the most due to coronavirus. Around 25 to 30 percent of the people in urban areas work on daily wages. The country's 75 million MSMEs are the pillars

for growth of the Indian economy, creating around 180 million jobs. It also speeds up the economy by about $ 1183 billion. Out of this only, 7 million MSMEs are registered.[16]

Rao (2019) emphasizes the importance of providing skill training, vocational education, and entrepreneurship development to the emerging workforce. It is crucial to recognize that the responsibility for offering entrepreneurial training does not rest solely with the government; other stakeholders must also contribute. A significant number of women are now active as entrepreneurs, which has altered demographic dynamics and positively influenced the country's economic growth. This paper examines the challenges and issues encountered by women entrepreneurs and proposes strategies to address them.[17]

Mishra (2022) conducted a study examining the success factors associated with small and medium-sized enterprises owned and operated by women in India. The research also explores the challenges faced by female entrepreneurs, the motivations driving women to establish their own businesses, their perceptions of success factors, and the differences in attitudes between educated and uneducated women entrepreneurs. The study is based on primary data gathered through a questionnaire, with 130 women entrepreneurs participating as respondents. Various statistical methods, including percentage, frequency, rank order, weighted average, and standard deviation, were employed for data analysis. Additionally, T-test analysis was performed for hypothetical evaluation. The findings indicate that women prioritize personal attributes such as skills, business ethics, and strong customer relations as the key success factors for their businesses. Notably, significant challenges include issues related to low self-esteem.[18]

Priyadarshini et.al. (2018) conducts an analysis of research trends related to gender and entrepreneurship, offering recommendations for future studies. They advocate for contrasting empirical findings by using male and female entrepreneurs as distinct independent variables. There is a call for more research into the behavioral differences between male and female entrepreneurs, particularly concerning the social forces that affect them. Additionally, they propose a re-evaluation of the gender perspective in entrepreneurship research, suggesting that it should encompass elements of masculinity and femininity beyond mere biological distinctions.[19]

4. Growth and performance of MSME in Indian Economy:

It is found from the below data that maximum number of 36% MSMEs was engaged in trade while 31% were found to be in doing manufacturing activities and 33% were in other activities. On the other hand, it is stated that out of 633.88 units 324.88 means 51.25% were working in rural areas and 309 working units' means 48.75% were in urban areas. As per the National Sample Survey (NSS) 73rd round, conducted by National Sample Survey Office, Ministry of Statistics & Programme Implementation during the period 2015-16, there were 633.88 lakh unincorporated non-agriculture MSME in the country engaged in different economic activities (196.65 lakh in Manufacturing, 0.03 lakh in Non-captive Electricity Generation and Trans-

mission, 230.35 lakh in Trade and 206.85 lakh in Other Services) excluding those MSME registered under (a)Sections 2m(i) and 2m(ii) of the Factories Act, 1948, (b)Companies Act, 1956 and (c)construction activities falling under Section F of National Industrial Classification (NIC) 2008.[20]

Table 1: Distribution of MSME (Activity wise in 2023-24) (In Lakh)

Activity Criteria	Estimated Number of Enterprises (in Lakh)			Share %
	Rural	Urban	Total	
Manufacturing	114.14	82.50	196.65	31
Trade	108.71	121.64	230.35	36
Other Services	102.00	104.85	206.85	33
Electricity*	0.03	0.01	0.03	00
ALL	**324.88**	**309.00**	**633.88**	**100**

*Non-captive electricity generation and transmission
Source: annual report of MSME govt. of India (2023-24) pdf available at https://msme.gov.in.pp23-24

Table 2: Distribution of MSME (Category wise in 2023-24) (In Lakh)

Area/Sector	Micro	Small	Medium	Total	Share (%)
Rural	324.09	0.78	0.01	324.88	51%
Urban	306.43	2.53	0.04	309.00	49%
ALL	**630.52**	**3.31**	**0.05**	**633.88**	**100**

Source: annual report of MSME (2023-24) pdf available at jttps://msme.gov.in. pp 25

Depicts from table 2 that out of the total number of 633.88 working Enterprises 99% (630.52) were in Micro sector, whereas only 3.31 lakh were working as small Enterprises and Medium units account only 0.05 (0.01%). In other words, we can say that 99% working Enterprises have under 25 lakh working capital in manufacturing and 10 lakh working capital in service sector. Investment of capital is very poor for various reasons.

5. Discussion:

It has been observed form various reports that 8.05 million out of the total 58.5 million establishments were run by women entrepreneurs in India which is around 13.76 % of the total number of establishments. Total workers engaged in women owned & run establishments were 13.48 million persons, which is 10.24% of the total number of workers engaged in India under different economic activities. Micro sector with 630.52 lakh estimated enterprises accounts for more than 99% of total estimated number of MSME. Small sector with 3.31 lakh and medium sector with 0.05 lakh estimated MSME accounted for 0.52% and 0.01% of total estimated MSME, respectively. Out of 633.88 estimated numbers of MSME, 324.88 lakh MSME (51.25%) are in rural area and 309 lakh MSME (48.75%) are in the urban areas. (21)

a) Ownership of ST women enterprises (MSME) 2023-24:

The socially backward groups owned almost 66.27% of MSME. Bulk of that was owned by OBC (49.72%). The representation of SC and ST owners in MSME

sector was low at 12.45% and 4.10% respectively. In rural areas, almost 73.67% of MSME were owned by socially backward groups, of which 51.59% belonged to the OBC. In urban areas, almost 58.68% belonged to the socially backward groups, of which 47.80% belonged to the OBC. The analysis of enterprises owned by socially backward groups in each of the three segments of MSME sector reveals that micro sector had 66.42% of enterprises owned by socially backward group, whereas small and medium sectors had 36.80% and 24.94% of enterprises owned by socially backward groups, respectively. (22)

Table 3: Percentage distribution of enterprises by social group of owners (2023-24)

Area/Sector	SC	ST	OBC	Other	Not Known	ALL
Rural	15.37	6.70	51.59	25.62	0.72	100
Urban	9.45	1.43	47.80	40.46	0.86	100
ALL	**12.45**	**4.10**	**49.72**	**32.95**	**0.79**	**100**

Source: Ministry of MSME, Government of India, Annual Report 2023-24, unorganized sector.

a) Gander disparity:

As depicted in table 4 that Gander disparity is very sharpening but it shows increase in women owned enterprises. Out of 633.88 MSME, there were 608.41 lakh (95.98%) MSME were proprietary concerns. There was dominance of male in ownership of proprietary MSME. Thus, for proprietary MSME as a whole, male owned 79.63% of enterprises as compared to 20.37% owned by female. There was no significant deviation in this pattern in urban and rural areas, although the dominance of male owned enterprises was slightly more pronounced in
urban areas compared to rural areas (81.58% as compared to 77.76%).

Table 4: Percentage Distribution of Enterprises in rural and urban areas (ownership Gender-wise and Category wise)

Sector	Male	Female	Total
Rural	77.76	22.24	100
Urban	81.58	18.42	100
All	79.63	20.37	100

Source: annual report of MSME govt. of India (2023-24)

It is observed from table 5 that 3.27 million establishments constituting 40.6 % were owned by OBCs. Others i.e. General category owned 3.23 million (40.2%) establishments, SCs owned 12.18 %, and ST owned 6.97%. Participation of ST women is lower as compared to the other social groups. It can be said that the participation of ST group was lowest among SC, OBC & Other group in Sixth Economic Census, 2016 like earlier trend.

Table 5: Total number of Establishments under women entrepreneurship by social group of owner (%)

Social	Number of Women establishments by Social group of Ownership	% age of establishments by social group of ownership
SC	980947	12.18
ST	561167	6.97
OBC	3272478	40.65
Others	3236227	40.20
Total	**8050819**	**100**

Source : Six economic census 2016 Govt. of India

a) Participation of ST women as workers in MSME:

The table below illustrates the representation of female workers in MSMEs. The data indicates that the participation of Scheduled Tribe (ST) women as both marginal and main workers is significantly higher than the all-India averages, with rates of 36.06% and 59.77%, respectively. In contrast, this trend is not mirrored among ST male workers, suggesting that ST women exhibit greater diligence and work ethic compared to their male counterparts. Furthermore, the participation rates of ST women surpass those of the overall female population in India, with 36.06% versus 24.64% for main workers and 59.77% compared to 50.78% for marginal workers. These figures clearly demonstrate that the involvement of ST women in MSMEs is notably higher than the national average for female participation.

Table 6: Percentage Distribution of Main and Marginal Workers by Category

	All population		ST	
All India	**Male**	**Female**	**Male**	**Female**
Main workers	75.36	24.64	63.94	36.06
Marginal workers	49.22	50.78	40.23	59.77

Source: Statistic profile of ST, Ministry of tribal affairs, Govt of India, 2013

a) ST Women entrepreneurs in MSME (State/ UT representation)

Table 7 illustrates the distribution of women-owned establishments across different states, categorized by the social group of the owners. It is noted that 40.6% of these establishments are owned by Other Backward Classes (OBCs), while the General category accounts for 40.2%. Scheduled Castes (SCs) own 12.18%, and Scheduled Tribes (STs) own 6.97%. The participation of ST women entrepreneurs at the state level is nearly negligible, indicating a concerningly low representation in the MSME sector. However, as indicated in Table 3, their involvement as marginal and main workers is comparatively high when measured against the overall female participation in India. Odisha leads with the highest percentage of ST female entrepreneurs at 12.64%, followed by Gujarat at 11.24%. Andhra Pradesh and West Bengal rank third and fourth, with 8.06% and 7.46%, respectively. An analysis of

the data reveals that most states exhibit less than one percent participation of ST individuals as entrepreneurs. Despite Madhya Pradesh having the largest tribal population at 14.7%, followed by Maharashtra at 10.1%, Odisha, Rajasthan, and Gujarat have tribal populations of 9.2%, 8.6%, and 8.2%, respectively, according to the 2011 census. The proportion of owner-operated units in businesses owned by ST and SC individuals is significantly lower than that of OBCs and the General category. The most notable difference lies between these three groups and the "Others," whose proportions of owner-operated enterprises have remained relatively stable over time, while the other three groups have experienced substantial growth. (23)

Table 7: % share of State/UT in Women establishments by Social group of Owner

S.N.	State/UT	SC	ST	OBC	Other	Total
1	Jammu & Kashmir	0.19	0.36	0.08	0.77	0.39
2	Himachal Pradesh	1.09	0.5	0.21	0.89	0.61
3	Punjab	2.45	0.15	0.44	2.22	1.38
4	Chandigarh	0.27	0.02	0.01	0.08	0.07
5	Uttarakhand	0.4	0.31	0.18	0.62	0.39
6	Haryana	2.13	0.23	1.02	2.13	1.55
7	Delhi	1.08	0.37	0.32	1046	0.87
8	Rajasthan	2.77	2.67	3.51	2.82	3.08
9	Uttar Pradesh	6.43	2.03	6.78	5.74	5.99
10	Bihar	1	0.83	1.71	2.57	1.91
11	Sikkim	0.03	0.37	0.04	0.05	0.07
12	Arunachal Pradesh	0.03	0.65	0.01	0.07	0.08
13	Nagaland	0.04	2.13	0.01	0.03	0.17
14	Manipur	0.41	2.96	1.38	0.69	1.1
15	Mizoram	0.01	2.57	0	0.04	0.2
16	Tripura	0.28	0.65	0.09	0.16	0.18
17	Meghalaya	0.05	4.6	0.01	0.09	0.37
18	Assam	1.68	4.78	1.03	2.38	1.91
19	West Bengal	14.53	7.46	3.76	16.19	10.33
20	Jharkhand	0.39	0.76	0.32	1.12	0.68
21	Odisha	5.21	12.64	2.21	1.71	3.1
22	Chhattisgarh	0.58	4.41	0.71	0.75	0.97
23	Madhya Pradesh	3.04	3.34	2.51	2.86	2.77
24	Gujarat	4.28	11.74	5.86	7.08	6.57
25	Daman & Diu	0	0.01	0	0.01	0.01
26	D & N Haveli	0	0.03	0	0.03	0.02
27	Maharashtra	7.99	5.32	4.73	12.4	8.25

28	Karnataka	5.63	5.88	8.99	5.05	6.78
29	Goa	0.07	0.36	0.11	0.32	0.21
30	Lakshadweep	0	0.06	0	0	0.01
31	Kerala	6.32	2.0	16.65	9.01	11.35
32	Tamil Nadu	15.48	5.42	21.28	6.45	13.51
33	Puducherry	0.13	0.02	0.21	0.06	0.13
34	A & N islands	0	0.07	0.01	0.05	0.03
35	Telangana	4.11	5.44	5.73	3.03	4.43
36	Andhra Pradesh	11.93	8.06	10.07	11.07	10.56
	All India	100	100	100	100	100

Source: sixth economic census 2016, Table 6.8 p.118.

6. Findings:

The key findings from the analysis of the data are as follows:

a) Rural vs. Urban Working Units: The data suggests that rural areas have a greater number of working units compared to their urban counterparts, as illustrated in Table 1. This trend highlights the potential for economic activity and entrepreneurship in less densely populated regions, which may be driven by factors such as lower operational costs and a closer connection to local markets.

b) Sectoral Distribution of MSME Units: A significant portion of Micro, Small, and Medium Enterprises (MSMEs) are primarily engaged in trading activities, followed by manufacturing. The remaining units are involved in a variety of other sectors, as detailed in Table 2. This distribution indicates the diverse nature of MSME operations and their critical role in the economy.

c) Micro Sector Dominance: The overwhelming majority of enterprises, approximately 99%, fall within the micro sector, with a mere 0.05% classified as small and the remainder categorized as medium-sized enterprises (Table 2). This finding underscores the predominance of micro-enterprises in the overall business landscape, which often serve as the backbone of local economies.

d) Women Entrepreneurs: According to table 5, there were 8,050,819 establishments owned by women entrepreneurs, with a notable 65.12% located in rural areas and 34.88% in urban settings. This statistic reflects the significant role women play in entrepreneurship, particularly in rural communities, where they may have more opportunities to establish and run businesses.

e) Caste Disparity in Enterprise Ownership: The data reveals an increasing caste disparity in enterprise ownership, establishments owned by Scheduled Tribes (ST) are less than the establishments owned by Scheduled Castes (SC) and Other Backward Classes (OBC). The ownership by SC and OBC groups are combinedly more than 50% (Table 3), indicating shifting dynamics in the entrepreneurial landscape among different caste groups.

f) ST-Owned Enterprises in Rural vs. Urban Areas: The proportion of ST-owned enterprises is significantly higher in rural areas compared to urban settings, with 6.70% in rural areas versus 1.13% in urban areas for the years 2018-19. This trend mirrors findings from 2006-07, as shown in Table 3, suggesting that rural environments may provide more favorable conditions for ST entrepreneurs.

7. Conclusion:

It is observed that significant and ongoing disparities related to caste and gender across various enterprise characteristics within the MSME sector. The representation of Scheduled Tribes (ST) has decreased over this period, with their share being lower in urban areas compared to rural ones. Ownership of MSMEs reveals pronounced caste and gender imbalances, with Scheduled Castes (SC) and STs being under-represented relative to their population proportions, while Other Backward Classes (OBC) are approximately in line with their demographic share, and Others are over-represented. Additionally, the proportions of SC, ST, OBC, and female ownership are notably higher in rural areas than in urban settings. ST-owned businesses are under-represented compared to their population share within the states. The distribution of enterprises varies significantly between rural and urban locations, as well as by the caste and gender of the owners. For a developing economy like India, focusing on this sector is crucial for achieving sustainable growth. Micro enterprises have shown promising performance, and the government should play a pivotal role in job creation and providing financial assistance to enhance their efficiency. Technological advancement and financial backing have historically been significant challenges for micro enterprises, which possess substantial potential to strengthen the economy. The ownership proportion of OBCs aligns with their population share. Furthermore, the leading five states in terms of ownership are those where OBCs hold political dominance, indicating that small business ownership may contribute to their political influence. However, disparities remain evident between OBCs and Others, with indications of homophily among OBC and Other firms. Consequently, the current state of the MSME sector does not serve as a significant avenue for job creation for ST women. While it has been acknowledged that MSMEs play a crucial role in job creation and reducing income inequality since the early days of Indian Independence, it seems that the goals of policies emphasizing the importance of MSMEs have not yet been fully achieved. Consequently, an entitlement approach is necessary to encourage all relevant stakeholders to collaborate on a unified national agenda and make collective decisions within a scientifically designed framework. This viewpoint necessitates the identification and examination of significant security threats facing MSMEs and grassroots entrepreneurship.

❐

References :

1. *Annual report (2023-24) Ministry of Micro, small and medium enterprises, Government of India.*
2. *Romesh Naik B., (2016) Social, Economic and Educational Status of Tribal women in India: Some Issues, IJSR V(VII) July 2016, pp 47-50.*

3. *Annual Report (2023-24), Ministry of Tribal Affairs, Government of India*
4. *Micro, small & medium enterprises, (2019) dristi, available at https://www.drishtiias.com.*
5. *Pujar, Uma (2014) MSMEs and Employment in India: an analytical study, IOSR journal of business and management 16(2), PP 13-15.*
6. *Press information Bureau, (2019) Ministry of Micro, small and medium enterprises, Government of India, Delhi available at https://pib.gov.in.*
7. *Raman, R., Subramaniam, N., Nair, V. K., Shivdas, A., Achuthan, K., & Nedungadi, P. (2022). Women entrepreneurship and sustainable development: bibliometric analysis and emerging re search trends. Sustainability, 14(15), 9160.*
8. *FE, NEWS (2019)99% MSME creates these many jobs, given this much money under the govern ment scheme to create entrepreneurs, (Dec 10. 2019) financial express, News available at https:// www.financialexpress.com.*
9. *Mehta, R. (2019), MSME Sector-A Force to Reckon with As the Biggest Job Creator, Employment News, 42 available at http://employmentnews.gov.in.*
10. *M.B. Shukla (2011). Entrepreneurship and Small Business Management. Kitab Mahal, Allahabad, p. 91.7.*
11. *Einar H. Dyvik (Pub.) (2024). Publisher Index of female entrepreneurs worldwide 2021, by coun try. Oct 9, 2024. https://www.statista.com/statistics/1368758/index-of-women-entrepreneurs-world wide-country/*
12. *Jose, Tom (2019) Micro, small and medium enterprises: the importance in Indian Economy, avail able at https://www.clearias.com.*
13. *Agarwal, Himanshu (2018). Socio Economic Development of PVTGs in India- Problems and Solutions. In book: Developmental Issues of Tribes (Ed. 1). Publisher: Shandilya Publications. April 2018. DOI: 10.5281/zenodo.3463114.*
14. *Agarwal, Himanshu & Ahmed, Sarfraj (2021). Poverty Elimination and Upliftment of Living Stand ard Through Microfinance (A Case Study of Selected Districts of Uttar Pradesh). Journal of Com merce & Trade 16(2):69-76. October 2021. DOI: 10.26703/JCT.v16i2-13.*
15. *Kumar, A., & Rajput, N. (2017). Empowering women through entrepreneurship development in India: Opportunities and challenges. Journal of Entrepreneurship, Business and Economics, 5(1), 1-16*
16. *Shukla Rekha, (2020), what would be the effect of MSME in India, if the lockdown increases 4 to 8 weeks (news March 30,020) Inventiva available at https://www.inventiva.co.in*
17. *Rao, N. 2019. Women entrepreneurship in India: Issues and Challenges. International Journal of Management Studies, 6(1), 87-90.*
18. *Mishra, Vijay Laxmi (2022). Rural Women And Entrepreneurship In India Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME) 75 ISSN: 2231–167X, Impact Factor: 6.889, Volume 12, No. 03, July-September 2022, pp. 75-80*
19. *Priyadarshini, S. & Rabiyathul Basariya, S. (2018). Women entrepreneurs-problems and prospects in India. International Journal of Civil Engineering and Technology 9(4):96-102.*
20. *National Sample Survey (NSS) 73rd round, conducted by National Sample Survey Office, Ministry of Statistics & Programme Implementation, 2015-16.*
21. *The National Small Industries Corporation,Govt. of India available at https:// www.nsic.co.in / Schemes /National-Scheduled-Caste-and-Scheduled-Tribe-Hub.aspx.*
22. *Annual report (2023-24) Ministry of Micro, small and medium enterprises, Government of India.*
23. *Sharma, V., & Gaur, M. (2020). Women entrepreneurs in India: A study of opportunities and challenges. Journal of Xi'an University of Architecture & Technology, 12(7), 1307-1317.*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121, अप्रेल–जून, 2025 पृ. 156–164

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

The Dutch East India Company and their slave trade across India

Rohit Raj
Research Scholar, Department of Sociology, BHU, Varanasi (U.P.)-
Email- rohitraj786@bhu.ac.in Mob. No.- 9450363159

Abstract :

This research explores the Dutch East India Company's (VOC) involvement in the slave trade across India during the 17th and 18th centuries. The study examines how the VOC, primarily known for its trading empire, also played a significant role in the capture, transportation, and sale of enslaved individuals within and beyond the Indian subcontinent. Through detailed analysis of historical records, trade logs, and archival documents, the research uncovers the extent and mechanisms of the VOC's slave trade activities, focusing on key regions such as the Coromandel Coast, Malabar, and Bengal. It highlights the economic motivations behind the VOC's engagement In slavery, as well as the social and cultural impact on Indian communities subjected to these practices. The research also investigates the VOC's interactions with local rulers and other European powers, revealing the complex networks that facilitated the slave trade. By shedding light on this often overlooked aspect of colonial history, the study aims to provide a more comprehensive understanding of the VOC's operations in India and their long-lasting consequences for the region. This work contributes to broader discussions on colonialism, exploitation, and the legacy of the slave trade in South Asia.

Keywords - The Dutch East India Company (VOC), Slave trade, Forced migration, Indian Ocean, Bay of Bengal, Indian Diaspora,

Introduction :

The Dutch East India Company, known as the Vereenigde Oostindische Compagnie (VOC), was established in 1602 and quickly became a dominant force in global trade during the 17th and 18th centuries. As one of the first multinational corporations, the VOC played a crucial role in establishing Dutch colonial presence

and influence in Asia, particularly India. The company's primary objective was to control and monopolise the lucrative spice trade, but its activities extended far beyond commerce. Among the darker aspects of the VOC's operations was its involvement in the slave trade across India. The Dutch established several trading posts and settlements in India, including notable locations such as Masulipatnam, Pulicat, Surat, Cochin, and Nagapattinam. These trading hubs facilitated the VOC's extensive trade networks, allowing them to export spices, textiles, and other goods to Europe and other parts of the world. However, alongside these economi pursuits, the VOC also engaged in the capture, transport, and sale of slaves, fuelling a transoceanic slave trade that had devastating effects on countless individuals and communities. This paper explores the impact of the Dutch East India Company in India, with a particular focus on their involvement in the slave trade across the region. It examines the establishment of Dutch trading posts, their economic and political influence, and the human cost of their activities. The Dutch slave trade in India represents a significant yet often overlooked chapter in the history of colonialism and its profound impact on Indian society. During the 17th and 18th centuries, the Dutch East India Company (VOC) played a pivotal role in the transoceanic slave trade, transporting enslaved individuals across the Indian Ocean and into various colonies. This paper examines the origins, mechanisms, and consequences of Dutch involvement in the Indian slave trade, focusing on the social, economic, and cultural ramifications for the Indian populace. By analyzing historical records and accounts, this research seeks to illuminate the complex dynamics between European colonial powers and the indigenous communities they exploited, as well as the long-term effects of this exploitation on the social fabric of India. Through this exploration, the paper aims to contribute to a broader understanding of colonial history and its enduring legacies in South Asia.[1]

According to Matthias van Rossum (2017), the VOC actively participated in the Indian Ocean slave trade, with enslaved people being transported between various Dutch-controlled territories. The Dutch primarily sourced enslaved people from regions such as the Coromandel Coast, Bengal, and Malabar. These individuals were often captured during military conflicts, purchased from local slave markets, or acquired through coercive means. The VOC then transported these enslaved people to other parts of its empire, including Batavia (modern-day Jakarta), Ceylon (Sri Lanka), and the Cape Colony (South Africa).

The Establishment of the VOC in India: The VOC was founded in 1602 as a joint-stock company, with the primary objective of monopolizing the spice trade in Asia and establishing Dutch dominance over Portuguese and Spanish rivals. By the early 17th century, the VOC had established a network of trading posts across the Indian subcontinent, particularly along the Coromandel Coast, in Bengal, and on the Malabar Coast.

Coromandel Coast: The VOC established its presence on the Coromandel Coast, particularly in the port of Pulicat (Pallaverkadu), which became a significant centre

for the VOC's trade in textiles, particularly cotton. Pulicat served as the headquarters of the Dutch in South India and was a hub for various commercial activities, including the slave trade. Politically, the VOC navigated complex relationships with local rulers and other European powers. They often engaged in diplomacy, forging alliances with regional leaders to secure favourable trade terms and protect their interests. However, the VOC also resorted to military force when necessary to assert control or fend off competitors, such as the Portuguese and the British. Over time, the Dutch influence on the Coromandel Coast waned, particularly as the British East India Company gained prominence. Despite this, the VOC's activities in the region left a lasting impact on the local economy and political landscape, contributing to the broader patterns of colonial dominance in India.

In Malabar: The Dutch East India Company (VOC) established a significant presence in the Malabar Coast of India during the 17th century, primarily driven by the lucrative spice trade, especially pepper. They seized control from the Portuguese in 1663 and established a network of forts and trading posts, with Cochin (now Kochi) becoming their main stronghold. In Malabar, the VOC also engaged in the slave trade, which was intertwined with their broader economic activities. The Dutch transported enslaved people from various parts of India, as well as from Southeast Asia and East Africa, to work in their colonies or be sold in markets across the Indian Ocean. The slave trade in Malabar was relatively small compared to other regions but still significant in the context of local and regional economies. Interaction with the local population in Malabar was shaped by the VOC's need to maintain control over the spice trade. The Dutch formed alliances with local rulers, such as the Zamorin of Calicut, and also engaged in military conflicts to assert their dominance. The relationship between the Dutch and the local people was complex, involving both cooperation and exploitation. The VOC's dominance in the region disrupted traditional trade patterns and social structures, leading to a mix of resistance and adaptation among the local communities.

In Bengal: The Dutch East India Company (VOC) established its presence in Bengal in the early 17th century, attracted by the region's thriving economy and its rich resources, particularly textiles, silk, and saltpetre, which were in high demand in Europe and other markets. The VOC set up its main trading post at Chinsurah (now in West Bengal), which became a significant centre for Dutch trade in the region. In Bengal, the VOC engaged in extensive trade, exporting large quantities of textiles, particularly muslin, as well as silk and saltpetre, which was used in the production of gunpowder. The company interacted with local weavers, merchants, and artisans, often negotiating contracts for the production of goods. While the Dutch brought European goods into Bengal, their interactions with the local population were largely driven by economic interests rather than cultural exchange. The VOC's relationship with the local rulers and population was marked by a combination of cooperation and tension. The Dutch often had to navigate complex political dynamics, including dealing with the powerful Nawabs of Bengal and competing with other

European powers, particularly the British and the French. While the VOC played a significant role in the region's trade, its influence eventually diminished as the British East India Company grew more powerful in Bengal, particularly after the Battle of Plassey in 1757. Despite this, the Dutch left a lasting legacy in Bengal's trade and colonial history.

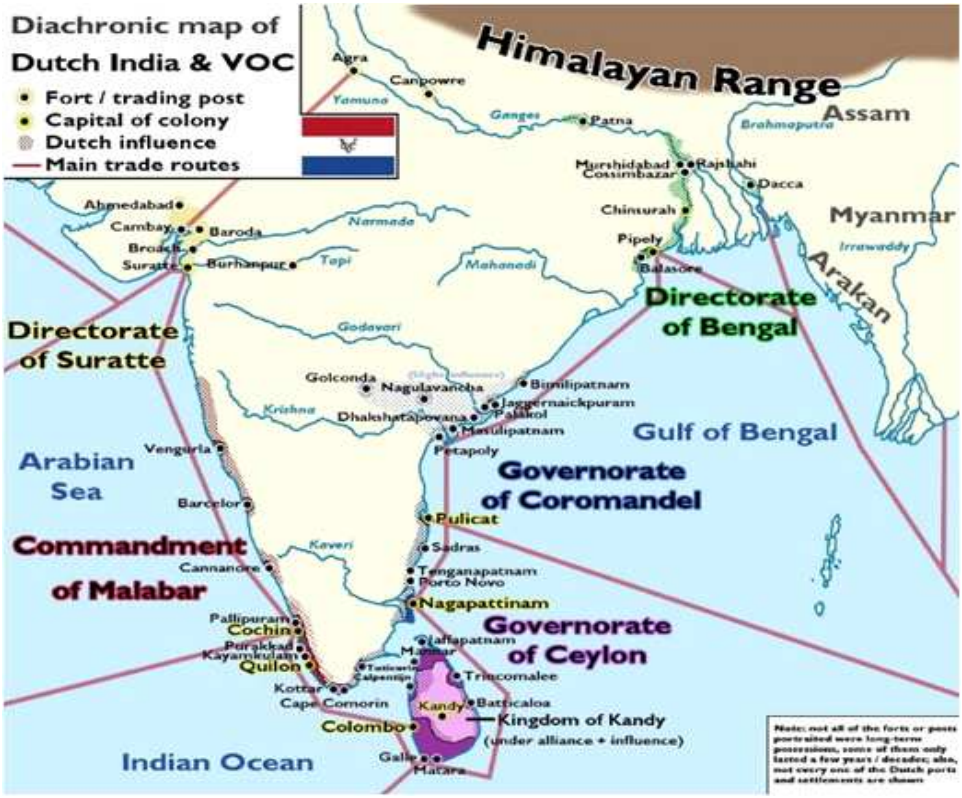

Voc colonial subdivisions and spheres of influence
ttps://commons.m.wikimedia.org/wiki/File:Dutch_India_(Diachronic).png

The central role played by Bengal in the Dutch East India activities in India in the 17th and the 18th century and the resulting integration of India into the worl economy by the early 1700s Bengal provided a;most 40 per cent of the value of Asian goods sent to Holland and over half of all textiles exported from Asia by the company[2]

The VOC and the Slave Trade in India: One of the more controversial aspects of the VOC's operations in India was its involvement in the slave trade. While not as well documented as the Atlantic slave trade, the VOC's slave trade was significant in the Indian Ocean region. The company transported slaves to its various outposts, including those in India, Southeast Asia, and the Cape Colony in South Africa.

The VOC engaged in the slave trade as part of its broader commercial operations. Slaves were sourced from various regions, including Africa, Southeast Asia, and the Indian subcontinent itself. In India, slaves were often captured in the course of military campaigns, bought from local rulers, or taken as part of punitive expeditions against rebellious subjects. These slaves were then transported to VOC outposts, where they were used as labourers in agriculture, construction, and domestic work.[3] Major slave markets in India included Pulicat on the Coromandel Coast and Cochin on the Malabar Coast. From these ports. Slaves were transported to other Dutch colonies. The conditions of transport were harsh, with high mortality rates due to disease, malnutrition, and mistreatment. The VOC's ships, which were primarily designed for the transport of goods, were ill-suited to carrying human cargo, leading to appalling conditions for the enslaved.[4]

Dutch Colonial Empire in the 17th century
https://commons.m.wikimedia.org/wiki/File:Dutch-Empire-coloured.png

Sources of Slaves: The VOC sourced slaves from various regions within the Indian subcontinent and neighbouring areas. These included the Malabar Coast, Coromandel Coast, Bengal, and even regions beyond India, such as the Malay Archipelago, Sri Lanka, and Madagascar. The slaves were often captured during military campaigns, and raids, or purchased from local rulers who engaged in slave trading. In some instances, criminals or debtors were also sold into slavery.[5]

Slave Trade Routes: The Dutch established several key ports in India that served as hubs for the slave trade. Pulicat on the Coromandel Coast, Cochin on the Malabar Coast, and Chinsura in Bengal were among the primary centres from which slaves were transported to other parts of the Dutch Empire, including Batavia (modern-day Jakarta), the Cape Colony in South Africa, and the Dutch-controlled territories in the Indian. The conditions under which slaves were transported were often brutal. Packed tightly into ships designed for cargo, slaves faced appalling conditions during their voyages, leading to high mortality rates. Disease, malnutrition, and mistreatment were rampant, reflecting the dehumanizing nature of the trade.

Impact on Indian Society: The Dutch slave trade had a multifaceted impact on

Indian society, affecting social structures, economies, and cultural practices in various ways.

The slave trade caused significant disruption to local communities in India. Families were torn apart as individuals were captured and sold into slavery, leading to the breakdown of social bonds and traditional community structures. The removal of large numbers of people, particularly from the lower strata of society, also had demographic consequences, affecting labour markets and local economies. While the VOC's activities brought certain economic benefits to India, such as increased demand for goods and the establishment of trade networks, the slave trade itself had a largely detrimental economic impact on the regions involved. The forced removal of labourers, artisans, and other skilled individuals from their communities deprived local economies of human capital. Additionally, the involvement of local rulers and elites in the slave trade could exacerbate existing social inequalities, as they profited from the sale of slaves while the general population suffered. The Dutch slave trade also had cultural consequences in India. The interaction between enslaved people and local populations led to the exchange of cultural practices, languages, and religious beliefs. In some regions, this cultural mixing resulted in the emergence of new communities and identities, although often under conditions of oppression and marginalization. The presence of the Dutch and their involvement in the slave trade contributed to the entrenchment of social hierarchies and the development of racist attitudes in Indian society. The treatment of slaves by the Dutch, who often viewed them as inferior, reinforced existing social divisions and introduced new forms of discrimination based on race and ethnicity. These attitudes sometimes persisted even after the decline of the VOC and the abolition of the slave trade.[6]

Historical Sources For voc: Studying the Dutch East India Company (VOC) in India relies on a range of historical sources, which provide valuable insights into the company's activities, interactions, and impact. Key sources include:

VOC Archives: The primary source for studying the Dutch presence in India is the extensive records of the VOC, preserved in the National Archives of the Netherlands. These archives contain detailed documents, including letters, contracts, trade logs, reports, and maps, which offer a comprehensive view of the VOC's operations, trade routes, and interactions with local powers.

Travelogues and Diaries: Accounts written by Dutch officials, merchants, and travellers provide personal perspectives on the VOC's activities in India. These narratives often include observations on local cultures, trade practices, and diplomatic encounters, offering a more nuanced understanding of daily life and the challenges faced by the VOC in India.

Archaeological Evidence: Archaeological studies of VOC forts, trading posts, and settlements in India, such as those in Cochin and Pulicat, provide physical evidence of the Dutch presence. Artefacts, building structures, and other material remains help to reconstruct the spatial and economic impact of the VOC on Indian society.

SLAVE CACHING IN THE INDIAN OCEAN (1873) https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/

Conclusion

The Dutch East India Company (VOC) played a significant and complex role in the history of India during the 17th and 18th centuries. While the VOC is often remembered for its extensive trade networks, particularly in spices and textiles, its involvement in the slave trade across India reveals a darker aspect of its operations. The VOC's activities in India, including the establishment of trading posts, strategic alliances with local rulers, and the ruthless pursuit of profit, were deeply intertwined with the exploitation of enslaved individuals. The Dutch slave trade in India had far-reaching implications, disrupting local communities, contributing to social hierarchies, and fostering economic inequalities that resonated long after the VOC's decline. The forced removal of men, women, and children from their homes to serve as labourers in far-off colonies not only dehumanized those involved but also left a lasting legacy on Indian society, shaping social and cultural dynamics in the affected regions. Understanding the VOC's involvement in the slave trade is crucial to gaining a comprehensive view of its impact on India. It highlights the complex nature of colonial exploitation, where economic interests often drove human suffering and social disruption. The legacy of the VOC in India is thus a reminder of the dual nature of colonialism—bringing both commercial development and profound human cost. As we reflect on this history, it is important to acknowledge the resilience of those who suffered under this system and to critically assess the long-term consequences of such exploitative practices on Indian society.

❐

References :

1. *Matthias van Rossum , Chasing the Delfland: Slave Revolts, Enslavement, and (Private) VOC Networks in Early Modern Asia page: 201-227*
2. *Om Prakash,(1988) The Dutch East India company and the economy of Bengal – (1630-1720) Oxford University press 1988 . (pp. 53-89)*
3. *Sinnappah Arasaratnam, Maritime India in the Seventeenth Century (Oxford: Oxford University Press, 1994), (pp.145-150.)*
4. *Kerry Ward, Networks of Empire: Forced Migration in the Dutch East India Company (Cam bridge: Cambridge University Press, 2009), 112-118.*
5. *Om Prakash, European Commercial Enterprise in Pre-Colonial India (Cambridge: Cambridge University Press, 1998), pp.92-97.*
6. *Sanjay Subrahmanyam, The Political Economy of Commerce: Southern India 1500-1650 (Cam bridge: Cambridge University Press, 1990), pp.150-155.*

Bibliography :

- *M Vink, (2013). The world of the slave trade: A geographic and demographic history. Yale Uni versity Press.*
- *W H Moreland, . (1923). India at the death of Akbar: An economic study. Macmillan.*
- *A Das Gupta, (1970). European trade and colonial conquest: The case of Dutch India 1750-1795. Routledge.*
- *Boxer, C.R., The Dutch Seaborne Empire, 1600–1800. London: Hutchinson, 1965. Furber, Holden. Rival Empires of Trade in the Orient, 1600–1800. Minneapolis: University of Minnesota Press, 1976.*
- *Knaap, Gerrit., Slavery and the Dutch in Asia: On the Dynamics of a Reluctant Relationship. Leiden: KITLV Press, 2007.*
- *Jha, Ashutosh Kumar. ,The Dutch East India Company and the Economy of Bengal, 1630–1720. New Delhi: Pragati Publications, 2013.*
- *Om Prakash, European Commercial Enterprise in Pre-Colonial India (Cambridge: Cambridge University Press, 1998), 92-97.*
- *Kerry Ward, Networks of Empire: Forced Migration in the Dutch East India Company (Cam bridge: Cambridge University Press, 2009), 112-118.*
- *Matthias Van Rossum, Chains of Empire: Forced Labour and Dutch Colonial Expansion in Asia (Manchester: Manchester University Press, 2019), 85-90.*
- *Sanjay Subrahmanyam, The Political Economy of Commerce: Southern India 1500-1650 (Cam bridge: Cambridge University Press, 1990), 150-155.*
- *Gijs Kruijtzer, Xenophobia in Seventeenth-Century India (Leiden: Leiden University Press, 2009), 73-79.*
- *Sanjay Subrahmanyam, The Political Economy of Commerce: Southern India 1500-1650 (Cam bridge: Cambridge University Press, 1990), 150-155*

Journal Articles :

- *Böesken, J. E. "The Slave Trade of the Dutch East India Company." Journal of Southeast Asian Studies 3, no. 1 (1972): 45–63.*
- *Dijk, Wil O. "The Slave Trade in Asia by the Dutch East India Company." Journal of World History 14, no. 2 (2003): 131–177.*
- *Aben, Remco. "Slavery and the Dutch Colonial State in India: The Historical Context." Journal of Colonialism and Colonial History 6, no. 3 (2005).*
- *The Slave Trade of the Dutch East India Company in India" Author: J.E. Böesken, Journal: Journal of Southeast Asian Studies,Volume: 3, Issue 1 (1972), pp. 45-63*
- *The Dutch East India Company and Indian Labor: A Comparative Analysis of Slave and Free Labor"Author: Markus Vink, Journal: Journal of Global History, Volume: 2, Issue 1 (2007), pp. 129-160*

Ø *The Dutch and Slavery in Coromandel, 1600–1800", Author: Om Prakash, Journal: Indian Economic and Social History Review, Volume: 15, Issue 3 (1990), pp. 101-121*
Ø *The Role of the Dutch East India Company in South Asian Trade and Slavery" Author: Gijs KruijtzerJournal: Itinerario: International Journal on the History of European Expansion and Global InteractionVolume: 29, Issue 3 (2005), pp. 23-45*
Ø *"Dutch Colonialism and the Indian Ocean Slave Trade"Author: Remco Raben Journal: Comparative Studies in Society and History. Volume: 37, Issue 4 (1995), pp. 691-716*

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 31, अंक, 121, अप्रेल–जून, 2025 पृ. 165–171

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

Kamala Markandaya's The Nowhere Man A Study of The Racial Discrimination Between Two National Identities In Diasporic Literature

Dr. Pramod Kumar
Asst. Professor, Dept. of English, Harsh Vidya, Mandir (P.G) College,
Raisi, Haridwar (Uttarakhand)
Email: pramodharidwar@gmail.com

Abstract

This study analyses carefully the novel, The Nowhere Man as one of the first diasporic novels. It narrates powerfully several ways how this novel explores the racial prejudice, identity crisis and passion for native country. It narrates the estrangement of Indian Brahmin who experiences painfully racism and bad treatment in England. Diasporic novels are fascinating narratives about the people who leave their native country and begin intentionally a new life in a contrasting country. Kamala Markandaya's The Nowhere Man focuses strongly on the character of Srinivas, an Indian immigrant who leaves his native country for England to escape colonization. He and his family settle in London, but Srinivas becomes disappointed and frustrated. Srinivas ultimately leaves and becomes a "nowhere man". It is authentically a real presentation based on Markandaya's own real experiences regarding identity crisis particularly in foreign country. Novel's contemporary themes like identity crisis, racial prejudice, and community are still relevant issues nowadays. It tries to probe deeply into the themes of national and cultural dualism and agony of estrangement.

Key - Words: Identity, Racial Prejudice, Agony, Torture, Cultural Differences

Kamala Markandya's *The Nowhere Man* is authentically a novel authored in 1972. It was essentially Markandaya's seventh novel. This novel shows a tragedy of alienation on account of racial prejudice felt and experienced by the protagonist of the novel, Srinivas who has lived willingly in England for several years. This novel's setting was in 1968. This novel is set in London where Srinivas encounters antagonism and racial discrimination on account of his national identity. Markandaya's

The Nowhere Man mainly aims to analyse the clash between two national identities in relation to Indian and British cultures. This study attempts to examine obviously several experiences of an Indian immigrant named Srinivas who lives intentionally in England. Having an Indian Identity he faces terribly agonized issues of estrangement and racial discrimination. Markandaya effectively uses the systematic and scientific research methodology in writing this novel, *The Nowhere Man*. She technically employs a few aspects of research methods like social realism, direct and individual observations of different national identities. She actively carries out several interviews with different people from different social and cultural backgrounds in order to collect deep insights into their lives and point of views. This novel focuses powerfully on Srinivas, an Indian widower and spice merchant who visited England in 1919 and presently lives in his own large house in a London sub locality. He has fully experienced the loss of his country's national identity and many loved ones. Like Anita Desai's *Bye Bye Black Bird*, she narrates the issue of alienation. It closely deals with the tragic story of the life of an immigrant Srinivas, "who even after having spent half a century in England is compelled to feel like an outsider, an outcast.**1**(p.x) She has beautifully made a vivid the psyschological study of a man who felt loneliness, estrangement and rootlessness in a nation where the domestic people keep in mind a low view of him and some of them practically make a hell of his life. R.S. Pathak rightly states:

The Nowhere Man deals in still greater details with the plight of a lonely man in an alien land. It characters the inner Srinivas, who is presented as 'a figure of loneliness ,' a disoriented person and an intruder,.**2**(p.79)

The narrative of the novel starts in the clinic of Dr. Radcliffe, a compassionate and sympathetic man who has carefully been treating Srinivas for sometime. He cultivates a passion for this taciturn Indian whom he doubts to be suffering from leprosy. Individually, Dr. Radcliffe is not cheerful on account of his inappropriate married life. His point of view towards life is dramatically opposed to that of his wife, Marjorie who represents the materialistic significance of the Western culture and looks for cheerfulness and contentedness in worldly collections. After consulting Dr. Radcliffe Srinivas returns to his house, Chandraprased. He remembers his dead wife, Vasantha who never attempted to shape herself according to the new surroundings and had maintained her Indian Identity throughout her life. Their sons Laxman and Seshu, born and brought carefully up in London, had adopted many English characteristics. Like other Britishers they faced difficulties a lot during the second world war. Their sons willingly joined the military. When Laxman comes home on leave from his R.E.M.E. Posting his parents find him a changed man. Estrangement causes a schism between the parents and the son. We are provided an account of the sentiments of the parents:

Towards the end of 1943 Laxman, the elder, came home on leave from his R.E.M.E posting somewhere near Plymouth. He had grown up, filled out, the shadows of a stranger were encroaching, so that his parents felt they hardly knew this

thick – set booming man in khaki to whom the army aura so palpably appealed. He spent five days with them and went back to Plymouth where, he told them , he had friends and an interest in an engineering firm, though he did not specify. Nor did they ask him to, since they saw he, like many other things, had been taken out of their hands.**3**(p.23)

Afterward, both Laxman and Seshu give up their military jobs. Laxman joins an engineering firm and becomes engaged to an English girl, without consenting his parents. The Indian identity of the parents is enormously hurt. In this reference, Margaret P. Joseph rightly comments,"The generation gap is particularly wide in the case of immingrant .Parents identity with the mother country, and children with the adopted one".4(p.76) Indeed, Srinivas ran an export – import profession in spices. His profession suffers a setback during the war. Seshu became an ambulance driver and is unlucky blown to pieces in a bomb attack. It proves utterly a great shock for Srinivas and vasantha. Vasantha is fully shattered as her younger son had been the apple of her eye. In the near future she suffered from tuberculosis. As a result, she passes away. Srinivas is not able to get better from the sorrow of losing her. The demise of his son and his wife make his life sorrowful and painful. He does not get any purpose and importance in his life. He feels lost in the new isolation. A nowhereman became nowher. He has the emotions of being a foreigner with his roots. During this time his profession also suffers a fall partly on account of the war but chiefly on account of his carelessness. His friend Abdul the Zenzibari endeavours to happy him. Laxman also comes to convince his father to take care of his professon. But Srinivas remains lost in his own world. In this critical time a middle – aged, divorced woman relieves his isolation and becomes a component of his life. She creates a little happiness in his cheerless and sorrowful life. Once she asks heartily Srinivas about his son Laxman. He answers her that the father and his son were quite estranged from each other. With passing of time, Mrs. pickering and Srinivas develop intimate. They have many resemblances in their way of ideology, though their eating habits many a time cause estrangement between them. Srinivas belongs originally to a Brahmin family. He is a pure vegetarian, while mrs. Pickering is habitually fond of eating meat and frequently cooks it . At this Srinivas is utterly shocked and feel alienated from her. This makes a difference between Srinivas and mrs. pickering in reference to animal kingdom. It leads to alienation between them, but they continue living together. Of course, it was on the emotional and cultural level that Srinivas appeared himself to be far away from Mrs. pickering. However, as the time passes, both of them learn to balance to each other. Both adopt their own identities differently. It seems clearly a clash between different identities regarding their vegetarianism and non- vegetarianism. In this matter, Shyam M. Asnani praises for their relationship regarding two different identities. He states clearly :

> The relationship between Mrs. Pickering and Srinivas can be read as an allegory of the cordial relationship between the best of England and the best of India.**5**(p.26)

Laxman goes to his father before the festival of Christmas. He did not like the view to invite his father to his house at Plymouth on this occasion. He comes to understand about the presence of Mrs. pickering. He views about her in unapproved words. His heritage, appears endangered to him . But when he really sees Mrs. Pickering. His fears are allayed soon. He leaves peacefully his father's house. Srinivas comes close to Mrs. Pickering in celebrating the Chritmas. In spite of being two different identities their sentimental harmony and empathy bring them close to the same bed. This study focuses on the two different ideas of Srinivas's and his friend , Abdul. Srinivas's bosom friend Abdul who is a successful business, visits him. Srinivas who considers England as his own country by adoption shows happiness over her developing business, whereas Abdul considers correctly England neither his own country nor Srinivas's . His warning is that one day the Britishers would ask them to quit England. Once, on his business visit to London, Laxman comes to see his father and Mrs. Pickering. He does not like his father's Indian identity and Indian ways of life . However, he cultivates a little honour to Mrs. Pickering. In this reference Shantha Krishabaswamy aptly remarks:

The lonely, alienated Srinivas is brought back to the mainstream of life through the caring he receives from Mrs. Pickering, an equally old and destitute but English lady.**6**(p.204)

Laxman gives a glimpse her the photographs of his children. His conversation with Mrs. Pickering makes it clear that he wanted his children to look English. Laxman leaves. But he could not get a chance to introduce this subject. Srinivas feels evidently a sense of wrongdoing as a British citizen when England suddenly attacks Egypt. He talks about this matter with Mrs. pickering. She insists that half of the population, according to polls was against using the force against Egypt. But Srinivas does not feel relieved. He realizes as if something secret between them had immediately alienated their true beings from each other. Thus this racial prejudice on the side of Mrs. Pickering provokes her immediately to take sides with her own compatriots through she is unable to break the bonds of comprehension cultivated between the two estranged spirits i.e, her ownself – a lonely sort of living entity. Srinivas reduced to a "nowhere man".

Srinivas essentially belonged to a prosperous South Indian family. His father, Narayan professionally was a lecturer in a Government college. In their neighbourhood there lived the family of Vasantha who was fiancée of Srinivas. They had beautifully cultivated a powerful passion for each other in their early life. Having received through the the school final exam with significance, he joined the college and received consciousness of the political situation and status of the nation. Vasantha's brother Vasudev who also studied in the college of Srinivas was an adamant nationalist. During those pre-independence days, the Indian masses realized estranged from their English masters due to deformed identities of ruler-ruled relationship. Narayan had also felt the bitterness produced on account of the haughty ways of the Britishers. On many occasions he had found carefully that his Britishers

collegues considered him inferior to themselves on account of different identity. It pinched him to great extent. He also noted their racial discrimination in relation to his promotion due to national identity. This caused obviously an estrangement in him from his parallels. In 1918, the First World War was ended and most of the Indian masses expected for the sunrise of liberation , since it had been assured by the British Government. But England did not permit this boon to India. As a result of, peaceful protests were organized against the Government in many provinces. In the month of April, Jalianwala Bag massacre occurred. It awakened the anger of the Indian masses. Srinivas's family helped them in every possible ways. Due to the peaceful protest, Srinivas returned his medal awarded to him by the vice-chancellor. His father inspired by the Swadeshi movement, throws away his formal dress and goes to his college wearing khaddar. During this time, Vasantha along with her mother, comes heartily to live with the family of Srinivas. One night, a police party headed by a young British sergeant, raids Srinivas's house on the suspicion of subversive activities being executed from there. The British Sergeant becomes annoyed. In his temper of annoyance and disgust, he commits a heinous act. With his stick he flicks Vasantha's skirt upward, rendering her nude. At this humiliation, Srinivas becomes and with crossness and knocks the Englishman down. The other policeman gain control over Srinivas due to Indian identity. At last, the police men depart, leaving the residents of the house in a painful condition .

This study analyses briefly the worst state of Vasantha. The British sergeant's act hurt her maidenhood brutally. This trauma causes horribly such a deep torture and shame to Vasantha that she loses all senses of intimacy and reaches at the verge of madness. She is hospitalized. Though she recovers physically, yet the deep hurt is there. During the chancellor's visit to their college, Narayan had no alternative but to wear his formal dress. The students look at him with scornful eyes. Although, the Indian people outnumbered the Englishmen in that function, yet they had to sing the national anthem of Britain. Narayan in the mood of passion for national identity and pride sings heartily an Indian hymn. An unprecedented atmosphere is fully created. This single event has a far- reaching influence on Srinivas. Thakur Guruprasad aptly remarks :

It is young Srinivas's retaliation that is the crucial, climatic action that leads to his self-exile and eventually turns him into the nowhereman.7(p.201)

Of course, Srinivas observes hostile attitude of hatred on the side of the Britishers for the immingrants. Racial discrimination against the immigrants was on the increase. It introduces a violent blow to his good view of the Britishers. He realizes that though he had been a British citizen for a long time, yet the native Britishers could not accept him as one of them due to Indian identity. Thus he falls dejectedly into the darkness of alienation. He feels absolutely lost the new isolation. A 'nowhere man' relates to nowhere. Srinivas has the sorrowful emotions of being an immigrant with his roots. We are given a vivid narration of how estranged he real-

ized despite his long stay in England, he feels he was an unwanted creature. Srinivas thought of his son, Laxman who had never attempted to make it convenient to see his parents though he had enough to spent and spare. Laxman considered himself superior to his parents on account of their innate Indian identity of life. Generation gap had furher strengthened their estrangement from each other. Srinicas could not keep the secrect of his illness upto his ownself. When he tells Mrs. Pickering that he was suffering from leprosy, She is shocked.

This study gives the reason why Srinivas is being tortured by the Britishers. One day a dead mouse is intentionally kept at the door-step of Srinivas to cause him torture and tension. Srinivas is fully fed up with this kind of circumstances. The main cause responsible for his subordination to insult was only that he was an alien and had different identity. Laxman comes to see his father. Laxman wants to be considered one of the Britishers, yet he does not approve of the antagonistic point of view of the Britishers towards the coloured. The trouble at present being faced by Srinivas could confront Laxman in future, as inspite of being born and brought up in England, his skin betrayed his Indian identity. With his fanatic friends, Fred plans to burn Srinivas alive. To carry out his bad designs, one night he enters into the basement of the house of Srinivas. A negro who lived there, under the influence of liquer, does not bother about fred's actions. Inside the basement , Fred, after lighting fire, attempts to escape. Fred requests the negro to save him but the latter simply goes out, ignoring his entreaties. Srinivas lost his consciousness. Laxman picks him up and with the help of constable kent, rescues him. Mrs. Pickering and Dr. Radcliffe could clearly guess that Srinivas was at the verge of death.

We find carefully *The Nowhere Man* confronts the agony of identity crisis and racial discrimination which were developing phenomenon in England. As an Indian-born lady, Markandaya, had intelligently narrates the real picture of national identity - differences and racial violence. The novel ends with the unhappiness. It shows obviously the lack of affection for one's fellowman, lack of belief and lack of the feeling of human brotherhood due to the racial discrimination. As a postcolonial diasporic writer Markandaya attempts powerfully to introduce a combination of the Indian and the Western identities as can be observed through the relationship of Srinivas and Mrs. Pickering. It suggests judiciously a way to reconciliation between the both countries regarding different national identities.

References :

1. Prasad, madhusudan. *"Introduction," Perspectives on Kamala Markandaya (ed.)* Ghaziabad : Vimal Prakashan, 1954.

2. Pathak, R.S *The Alienated Protagonist in the Indo – English Novel, Glimpses of Indo –English Fiction.* Vol.1. (ed.) O.P. Saxena. New Delhi : Jainson Publications, 1985.

3. Markandaya, Kamala. *The Nowhere Man.* Bombay: Sangam Books, 1975.

4. Joseph, P. Margaret. *Kamala Markandaya*. New Delhi: Arnold Heinemann, 1980.

5. Asnani, M. Shyam. *East and West Encounter in Kamala Markandaya's Later Novels.* Triveni p.26.

6. Krishanaswamy, Shantha. *Glimpses of Women in India*. New Delhi: Ashish publishing house, 1983.

7. Guruprasad, Thakur. *"And Never the Twain shall Meet" Explorations in Modern Indo- English Fiction,(ed.)* R.K Dhawan. New Delhi: Bharati Publications, 1982.

पूर्वदेवा– सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
वर्ष 30, संयुक्तांक 117–118, अप्रेल–सितम्बर, 2024 पृ. 172–182

UGC Care Listed Journal
ISSN 0974 -1100

संगोष्ठी प्रतिवेदन

द्वि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

"भारतीय संविधान की सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक संरचना में डॉ.बी.आर. अम्बेडकर की भूमिका"

(Role of Dr. B.R. Ambedkar in Social, Political and Economic Structure of the Indian Constitution)

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी द्वारा भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधन परिषद, नईदिल्ली के सहयोग से द्वि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन उज्जैन में दिनांक **23–24 मार्च, 2025** को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। संगोष्ठी में देश–प्रदेश से पधारे विद्वानों, शोधार्थियों एवं प्रतिभागियों ने विषयान्तर्गत अपने शोध आलेख एवं सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। शुभारम्भ एवं समापन सत्रों के अतिरिक्त चार विचार–सत्रों में संगोष्ठी सम्पन्न हुई। संगोष्ठी का मुख्य विषय था–"भारतीय संविधान की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना में डॉ.बी.आर. अम्बेडकर की भूमिका"।

संगोष्ठी उद्घाटन सत्र : सत्र में मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुवे **डॉ. प्रकाश बरतुनिया,** पूर्व कुलाधिपति, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.) ने डॉ. अम्बेडकर एक आदर्श समाज की स्थापना करके सामाजिक प्रजातन्त्र भी लाना चाहते थे। जिसमें यह भाव निहित है कि समाज के पिछड़े व कमजोर वर्गों के कल्याण के लिये विशेष कार्यक्रम को अपनाऐं। दुर्भाग्यवश जिन समूह को योग्यता हांसिल करने का अपार अवसर मिला उन्होंने आपनी योग्यता को सिर्फ स्वार्थ साधने मे लगाया। नतीजतन न केवल वे जिन्हें योग्य होने से वंचित रखा गया । बल्कि वह समूह भी जिन्होनें योग्यता हासिल करने का एकाधिकार हासिल किया, वास्तव में अयोग्य बनाता गया। इन वजहों से भारत में नये ज्ञान–विज्ञान का विकास संभव नही हुआ ।

विशेष आमंत्रित माननीय संत **श्री उमेशनाथजी महाराज**, राज्यसभा सासंद, नईदिल्ली व अधिष्ठाता वाल्मीकि धाम, उज्जैन ने अपने संदेश में कहा कि डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकार के लिए संघर्ष किया। आज हम उनके विचारों और आदर्शों पर चलने का संकल्प लेते हैं। इस संगोष्ठी के माध्यम से हम डॉ. अम्बेडकर के विचारों को और गहराई से समझने का प्रयास करेंगे और उनके योगदान को सम्मानित करेंगे। संगोष्ठी कार्यक्रम के आयोजकों और

प्रतिभागियों को बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि यह कार्यक्रम सफल और सार्थक होगा।

विशेष अतिथि प्रोफेसर **अर्पण भारद्वाज**, कुलगुरु, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने कहा कि डॉ. अम्बेडकर ने भरसक प्रयास किया कि भारतीय समाज में विभेद पैदा करने वाली सभी व्यवस्थाओं का संविधान द्वारा विधिवत निराकरण किया जावे जिससे समतामूलक समाज की रचना का मार्ग प्रशस्त हो सके।

अन्य विशेष अतिथि प्रोफेसर **डॉ.यतीन्द्र सिंह सिसोदिया,** निदेशक, म.प्र.सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान,उज्जैन ने कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय कर्णधारों, मनीषियों एवं संविधान शिल्पीयों ने प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक विषमता एवं भेदभाव को समाप्त कर सामाजिक समरस्ता के लिये एक ओर संविधान में अनेक प्रावधानों का समावेश किया, तो दूसरी ओर योजनाबद्ध नीति से सामाजिक, आर्थिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रम आरंभ किये गये। जिसके फलस्वरूप भारत में समतामूलक समाज की रचनाका स्वप्न संजोया।

विषय प्रवर्तन करते हुवे मुख्य वक्ता **प्रोफेसर डॉ. दीपक कुमार वर्मा**, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय, महू (म.प्र.) ने कहा कि भारतीय समाज के इतिहास का सूक्ष्म एवं विशद अवलोकन से स्पष्ट होता है कि समाज में सदियों से व्याप्त विषमता को समाप्त कर समतामूलक समाज की स्थापना के लिये जितना गहन चिंतन एवं प्रयास डॉ. अम्बेडकर का रहा है उतना शायद ही किसी अन्य दार्शनिकों एवं चिन्तकों का रहा हो। डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन का किरण बन्दु जातिविहीन समतामूलक समाज की स्थापना है। इन्होंने सैद्धातिक (संवैधानिक) एवं व्यवहारिक दोनो रूपों में समतामूलक समाज की स्थापना के लिये सोचा एवं प्रयास भी किये। यह उनका भारतीय समाज के लिए अतुल्य एवं अमूल्य योगदान है।

अध्यक्षता करते हुवे **डॉ.एच. एल. अनिजवाल**, अतिरिक्त संचालक, उच्च शिक्षा, मध्यप्रदेश, संभाग उज्जैन ने कहा कि भारतीय समाज में सदियों से व्याप्त सामाजिक विषमता को समाप्त कर जातिविहीन सामाजिक समता की स्थापना के लिये अनेक संतो, मनीषियों, समाज सुधारको, प्रबुद्धजनों आदि द्वारा प्रयास भी किया जाता रहा है। भक्तिकाल में संतो ने हिन्दू समाज में व्याप्त जात–पात और ऊॅच–नीच का विरोध करते हुये समाज की आंतरिक विसंगतियों को उजागर किया है। उन्होने "भारतीय संविधान के विविध प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में डॉ. अम्बेडकर के मौलिक योगदान पर अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत करते हुवे संबोधित किया।

प्रारंभ में अकादमी अध्यक्ष **डॉ. हरिमोहन धवन** द्वारा संगोष्ठी की रूपरेखा प्रस्तुत की एवं संगोष्ठी का उद्देश्य स्पष्ट किया कि "भारतीय संविधान की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक संरचना में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के योगदान" को जानने, उनके विचारों, और उनके द्वारा प्रस्तावित सामाजिक–आर्थिक न्याय की अवधारणाओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझने और उनका समग्र मूल्यांकन, विश्लेषण करने पर केंद्रित था। भारतीय संविधान का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन एवं विकास हैं। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुवे स्वतंत्र भारत के संविधान की संरचना की गई हैं। भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, अवसर एवं कानूनों की समानता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, व्यवसाय, संघ निर्माण और कार्य की स्वतंत्रता, कानून और सार्वजनिक नैतिकता के अधीन प्राप्त होगी।

अकादमी सचिव पी.सी.बैरवा एवं संगोष्ठी संयोंजक डॉ. राजेश लालावत ने अतिथियों का स्वागत किया।

प्रथम विचार सत्र : सत्र की निर्धारित थीम–''**भारतीय संविधान की सामाजिक संरचना में डॉ. बी.आर.अम्बेडकर का भूमिका''** पर केन्द्रित शोधपत्रों का प्रतिभागियों द्वारा प्रस्तुतीकरण किया गया एवं तत्संबंधी विचार विमार्श हुआ।

सत्र में प्रमुख रूप से

Dr. Subhash Singh, Professor,New Delhi. "Reflection of Dr. Ambedkar's Philosophy of Social Justice विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि डॉ. बी.आर. अंबेडकर भारत के सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य में एक महान व्यक्तित्व थे और उन्होंने सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण की आधारशिला के रूप में शिक्षा की लगातार वकालत की। जाति आधारित असमानताओं को खत्म करने और एक समतामूलक समाज बनाने के साधन के रूप में शिक्षा में उनका विश्वास आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

डॉ. अजीत कुमार राय, सहायक प्रोफेसर : "डॉ. अम्बेडकर के विचारों के परिप्रेक्ष्य में दलितोत्थान" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि डॉ अम्बेडकर ही ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दू धर्म ग्रन्थों में, जाति और उच्च व निम्न वर्ग का आलोचनात्मक वैज्ञानिक विश्लेषण समाज के समक्ष प्रस्तुत किया, उन्होंने उच्च जाति के हिन्दुओं को चुनौती दी और दलितों के सामने मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

डॉ. प्रियंका कुमारी मिश्रा, पोस्ट डॉक्टोरल फेलो : "डॉ. अम्बेडकर और अस्प श्यता का प्रश्न" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि वैदिक साहित्य में वर्ण और अन्य ग्रन्थों में कुल शब्द का प्रयोग विभिन्न कार्यों में निवृत्त लोगों के लिए किया गया हैं। कालान्तर में यहीं कुल और वर्ण जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गए। कृषि और गैर–कृषक कर्म में लिप्त रहने वाले लोग हिन्दू धर्म में वर्ण व्यवस्था के कर्मणा स्वरूप के जन्मना स्वरूप में बदलने से वे हाशिये पर धकेल दिए गये। आधुनिक भारत में इस समाज को सभी अधिकारों से वंचित रखा गया और उन्हें बहिष्कृत किया गया । इसी बहिष्कृत समाज को दलित कहा गया।

डॉ. आशीष रावल, सहा प्राध्यापक : "महिलाओं और अल्पसख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि महिलाओं और अल्पसख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा संबंधी प्रावधान संविधान में डॉ. आम्बेडकर के द्वारा करके इन वर्गो को किस प्रकार समाज में आगे बढाया जाए इसका ध्यान रखा गया। इन प्रावधानों का यह प्रभाव हुआ कि महिलाओं और अल्पसख्य वर्गो का प्रतिनिधित्व कार्यपालिका, न्यापालिका तथा विधायिका में बढा हैं। अल्पसंख्यक समुदायों को बहुसंख्यकों द्वारा सांस्कृतिक रूप से हावी होने की संभावना से बचाने के लिए सुरक्षा उपायों की आवश्यकता है। भारत सांस्कृतिक रूप से विविधतापूर्ण देश है, और इस देश में बिना किसी भेदभाव के हर धर्म और संस्कृति के लोग रहते हैं। भारत के हर नागरिक को जीने का समान अधिकार है और अपनी संस्कृति, लिपि, धर्म और भाषा को मानने और उसे बनाए रखने की स्वतंत्रता है।

डॉ. अंतिम बाला पांडेय, सहा प्राध्यापक, : "डॉ.अंबेडकर द्वारा राष्ट्र निर्माण में सामाजिक न्याय का उत्थान" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. अंबेडकर ने न केवल दलितों के लिए बल्कि असमान सामाजिक व्यवस्था और शोषित वर्ग के लिए भी मानवाधिकारों के लिए एक योद्धा के रूप में काम किया, जिसमें मजदूर, किसान और महिलाएं शामिल थीं। अंबेडकर एक असाधारण समाज सुधारक, शोषित वर्गों के मुक्तिदाता, विद्वान और शिक्षाविद् और मानवाधिकारों के सच्चे चौंपियन थे। डॉ. अंबेडकर ने संविधान में सभी भारतीय नागरिकों के लिए समान अधिकारों की वकालत की। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में, उन्होंने संविधान को इस तरह से डिजाइन किया कि कानून के सामने सभी नागरिक समान हों। पूरे देश के लिए यह गौरव का विषय था। .

डॉ. पी. सी. करोड़े, शोध निदेशक : "सामाजिक संदर्भो में डॉ. भीमराव आम्बेडकर का शैक्षिक चिन्तन" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि आज हम सब खुदकिस्मत हैं कि आज हमें ज्ञान इतनी सरलता से मिल रहा है, वरना एक समय था जब बाबासाहेब को स्कूल के भीतर धुसने भी नहीं दिया जाता था। आज हमारे पास अवसर है, हम ज्ञान को प्राप्त करने में कंजूसी अथवा संकोच न करें और आगे बढ़ कर एक लीडर की भांति ज्ञान प्राप्त करें और समाज को नई दिशा दे।

डॉ. धनंजय शर्मा, सहायक प्रध्यापक, हरिद्वार, "महिला सशक्तिकरण और दलित समाज की चुनौतियां–एक विमर्श" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि भारत के स्वतंत्रता के पा चात संविधान द्वारा अपनायी गयी, लोगतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को समान अधिकार, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय व अवसर की समानता बिना किसी भेदभाव के प्रदान की गयी। किन्तु सामाजिक व्यवस्था में अपेक्षित परिर्वतन देखने को नहीं मिलता। समय–समय पर सरकार ने दलितों और अनुसूचित जनजातियों के लिए अनेक कानूनो और योजनाओं का निमार्ण इन समुदायों के अधिकारो की रक्षा के लिए बनाया गया।

किशोर मालवीय, शोधार्थी : "डॉ. बी.आर. अंबेडकर और भारतीय संविधान का निर्माण" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि .अंबेडकर जी वास्तव में एक दलित नेता की बजाए राष्ट्रीय निर्माता और वैश्विक नेता थे। उन्होंने सामाजिक न्याय के सिद्धांत भी दिए थे। अंबेडकर जी उन लोगों में से हैं जिन्होंने भारत निर्माण इसके शुरुआती दिनों में किया था। वह भारत को मुक्त कराने के लिए लड़े और फिर अपने सपनों का भारत लाने की कोशिश की।

संजय कुमार, शोधार्थी, : "बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकर का सामाजिक न्याय" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय का आधार स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व है और इसकी स्थापना की राह में आने वाली बाधाओं को वे कानून द्वारा समाप्त करना चाहते थे।

महेश कुमार, शोधार्थी, जयपुर : "अंबेडकर के चिंतन में अस्पृश्यता का ऐतिहासिक विश्लेषण" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि अम्बेडकर का मत था कि एक न्यायनिष्ठ सामाजिक प्रणाली ही लोकतंत्र के आदर्शों को प्रतिबिम्बित कर सकती है। इस उद्देश्य से उन्होंने

भारत में सामाजिक संस्थाओं और राजनीतिक संविधान के मध्य तारतम्य स्थापित किया जाना आवश्यक माना। उन्होंने कहा कि समानता स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के मूल्यों पर आधारित एक ऐसी उपयुक्त सामाजिक प्रणाली में ही लोकतंत्र का आदर्श चरितार्थ हो सकता है जिसमें सामाजिक हितों को प्रोत्साहित व संरक्षण देने के लिए समाज की उपलब्ध समस्त क्षमताओं और विवेक का बिना भेदभाव के उपयोग किया जा सके।

मेवालाल, शोधार्थी, वाराणसी :जाति का उन्मूलन – "डॉ.बी. आर. अंबेडकर से परे" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि समकालीन संवैधानिक काल में संविधान जिसमें जाति के आधार पर भेदभाव और अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया है। फिर भी दलितों का शोषण जाति और अस्पृश्यता के आधार पर हो रहा है। 1991 का आर्थिक उदारीकरण भी दलितों के लिए शून्य सिद्ध हुआ। निश्चित रूप से जाति के उन्मूलन के लिए अलग और नए तरीके से सोचने की जरुरत है।

विचार सत्र की अध्यक्षता करते हुवे **डॉ. अनिता वर्मा,** प्राचार्य व प्रोफेसर, शासकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान) एवं विशेष अतिथि **डॉ. तारा परमार,** संपादक– 'आश्वस्थ' पत्रिका, उज्जैन (म.प्र.) ने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। सत्र का संचालन **श्री पी.सी.बैरवा,**सचिव, अध्यक्ष, मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन द्वारा किया गया।

द्वितीय विचार सत्र : सत्र की निर्धारित थीम–''**भारतीय संविधान की राजनीतिक संरचना में डॉ.बी.आर.अम्बेडकर की भूमिका''** पर केन्द्रित शोधपत्रों का प्रतिभागियों द्वारा प्रस्तुतीकरण किया गया एवं तत्संबंधी विचार विमार्श हुआ।

सत्र में प्रमुख रूप से

Dr- Ujjwala D- Sadaphal, Principal, Wardha, "Role of Dr.B.R. Ambedkar in Political and Educational Institutions , A Catalyst for Social Equality विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि भारतीय संविधान के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचे में डॉ. बी.आर. अंबेडकर के योगदान का राष्ट्र पर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा है। सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और शैक्षिक सशक्तिकरण के लिए उनके अथक प्रयासों ने भारत के लोकतांत्रिक ढांचे को बदल दिया है, जिससे यह सुनिश्चित हुआ है कि हाशिए पर पड़े मुदायों को समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों।

डॉ. उषादेवी कटियार, सहा. प्राध्यापक : "डॉ. अम्बेडकर के विचारों के सामाजिक और राजनैतिक महत्व की समीक्षा" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहा कि बाबा साहब एक ऐसे समाज का विकास करना चाहते थे, जिसमें समानता, स्वतन्त्रता, और मातृत्व का समागम हो, डॉ. अम्बेडकर लोगों में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना पैदा करना चाहते थे लेकिन सामाजिक विकास राजनीतिक चेतना को अति आवश्यक मानते थे डॉ. अम्बेडकर के अनुसार राजनीति चेतना ही अधिकारों की रक्षक है डॉ. अम्बेडकर द्वारा किये गये सामाजिक संघर्ष का उद्देश्य उपेक्षित वर्ग पर होने काले अत्याचारों को खत्म करना था। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि

समाज के सभी वर्गो का समाज में समान अधिकार होना चाहिये और सभी वर्ग के लोगों को उठने के जीवन में ऊपर वर्ग के लोगों को के समान लिए अवसर दिये जाए। अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन हिन्दू समाज महान क्रान्तिकारी आन्दोलन था।

रूपलाल अहिरवार, शोधार्थी : "डॉ. भीमराव अंबेडकर का राष्ट्र निर्माण के परिपेक्ष में सामाजिक एवं राजनीतिक

दृष्टिकोण" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाने वाले महान चिंतक, समाज सुधारक और संविधान निर्माता थे। उनका दृष्टिकोण राष्ट्र निर्माण में सामाजिक और राजनीतिक पहलुओं को मजबूत प्रदान करने पर केंद्रित था। उन्होंने सामाजिक सुधारो में दलित उत्थान, तथा राजनीतिक विचारों एवं लोकतंत्र, और उनका संविधान निर्माण में योगदान महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार से राष्ट्र का निर्माण एक समावेशी प्रक्रिया है। जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, स्थिरता आर्थिक विकास और समानता की आवश्यकता होती है ।

डॉ. ममता जलवाय– शोधार्थी : "डॉ. आंबेडकर एवं गाँधी का समाज दर्शन– एक दार्शनिक विवेचना" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. आंबेडकर ने समाज की वर्ण व्यवस्था तथा जाति प्रथा का अध्ययन किया था। इन दोनों की भाषा–शैली, चिंतन–प्रणाली, विचार–अभिव्यक्ति में अंतर था। डॉ. आंबेडकर को अस्पृश्यता सामाजिक–सांस्कृतिक उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। गांधी का अस्पृश्यता विरोध उनकी संवेदनशील नैतिक चेतना से प्रेरित था। मनुष्य का मनुष्य के साथ यह अमानुशिक व्यवहार गांधी की मानवीयता बरदाश्त नहीं कर सकती थी।

ऋषि कुमार, शोधार्थी : "राष्ट्रीय आंदोलन में डॉ. भीमराव आंबेडकर का योगदान–एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि डॉ. भीमराव आंबेडकर आधुनिक भारत में सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे। डॉ. आंबेडकर ने कट्टरता, अस्पृश्यता एवं साम्प्रदायिक भेदभाव का घोर विरोध किया। पद्दलित समाज को एक नयी दिशा एवं आत्म–सम्मान देने का महान कार्य वे जीवनपर्यंत अखंड रूप से करते गए। आंबेडकर भारत को एक सशक्त एवं शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। .

डॉ. कैलाश चन्द सामोता, सहायक आचार्य : "भारतीय राजनीतिक चिंतन में दलितोद्धार का पूना पैक्ट. गांधी बनाम अम्बेडकर" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि गांधी के द्वारा दलितोंद्धार की दिशा में भौतिक रूप से अनके रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया और निः सन्देह उन्होंने मानवता की दिशा में कार्य किया है लेकिन फिर भी इस दिशा में किसी ने गांधी से कई गुना बेहतर एवं परिवर्तनकारी और यर्थाथ कार्य किया है तो वे मानवता के मसीहा बाबा साहेब बी आर अम्बेडकर थे।

Mrs. Kavita Shukla, Research Scholar, Bhopal : "Socio-Economic Justice For the People and Ideas of Dr. Ambedkar विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा परिकल्पित सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में बहुत अच्छी तरह से परिलक्षित होती है– संविधान का भाग IV जिसे राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के रूप में नामित किया गया है, जिसमें आजीविका के पर्याप्त साधनों का अधिकार, आर्थिक शोषण के खिलाफ अधिकार, समान काम के लिए समान वेतन दोनों का अधिकार, काम करने का अधिकार, अवकाश और आराम का अधिकार और बेरोजगारी के मामले में सार्वजनिक सहायता का अधिकार, वृद्धावस्था, बीमारी आदि शामिल हैं।

शिवु कुमार, शोधार्थी, नई दिल्ली, "भारतीय राजनीति और जाति" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि भारत में जाति व्यवस्था सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं के साथ विचित्र संस्था के रूप में उभरी है। वर्चस्व की राजनीति में जाति व्यवस्था का प्रारम्भ से ही संबंध रहा है। जाति का भारतीय समाज पर व्यापक प्रभाव रहा है। इसके प्रभाव को हम हिन्दू समाज की उच्च और निम्न जातियों के दो मुख्य स्तम्भों को ध्यान में रखकर जान सकते हैं।

विचार सत्र की अध्यक्षता करते हुवे **डॉ. शैलेन्द्र पाराशर,** पूर्व चेयर पर्सन, डॉ. अम्बेडकर पीठ, उज्जैन (म.प्र.) एवं विशेष अतिथि **डॉ. जय प्रकाश श्रीवास्तव**– प्रोफेसर व पूर्व प्राचार्य ,शास. कन्या महाविद्यालय, नागदा, जिला उज्जैन ने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। सत्र का संचालन **डॉ. राजेश लालावत ,** संयोंजक संगोष्ठी, शोध निदेशक, मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी द्वारा किया गया।

तृतीय विचार सत्र : सत्र की निर्धारित थीम–**''भारतीय संविधान की आर्थिक व शैक्षिक संरचना में डॉ.बी.आर. अम्बेडकर की भूमिका''** पर केन्द्रित शोधपत्रों का प्रतिभागियों द्वारा प्रस्तुतीकरण किया गया एवं तत्संबंधी विचार विमर्श हुआ।

सत्र में प्रमुख रूप से **डॉ. उज्ज्वला सदाफल**, एसोसिएट प्रोफेसर वर्धा : "शैक्षिक नीतियों और संस्थागत सुधारों पर छात्रों का प्रभाव" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि भारतीय संविधान के मुख्य निर्माता डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक शासन और समावेशी नीति–निर्माण की वकालत की। उनकी दृष्टि ने शिक्षा में समान अवसरों और हाशिए पर पड़ी आवाजों के सशक्तिकरण पर जोर दिया। हालाँकि, प्रशासनिक प्रतिरोध, जागरूकता की कमी और नौकरशाही बाधाओं के कारण निर्णय लेने में छात्रों की भागीदारी सीमित रहती है। कई संस्थान ऊपर से नीचे की ओर दृष्टिकोण अपनाते हैं, जिससे छात्रों की भागीदारी सार्थक जुड़ाव के बजाय प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व तक सीमित हो जाती है।

डॉ. ज्योति सोलंकी, सहायक प्राध्यापक : "श्रम और श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए अंबेडकर का दृष्टिकोण" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. भीम राव अम्बेडकर जी न केवल भारतीय संविधान के निर्माता थे बल्कि भारत के श्रम कानून सुधारों के दूरदर्शी वास्तुकार भी थे। अम्बेडकर ने व्यापक श्रम सुधारों की आवश्यकता पर जोर दिया जो विशेषकर दलितों और अन्य हाशिये पर रहने वाले समुदायों का उत्थान करेगा। उनका विचार कार्यस्थल से आगे बढ़कर, समान अवसर, उचित वेतन और सम्मानजनक कामकाजी परिस्थितियों को

सुनिश्चित करके व्यक्तियों के समग्र सशक्तिकरण का लक्ष्य रखता था।

डॉ. रंजना शर्मा, सहा. प्राध्यापक : "श्रम और श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए अंबेडकर का दृष्टिकोण" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि "डॉ. अम्बेडकर ने "श्रम और श्रमिकों के मानवीय अधिकारों को कानूनी संरक्षण दिलवाया।

डॉ. राजकुमार नागवंशी, सहायक प्राध्यापक, "डॉ. भीमराव अम्बेडकर का आर्थिक चिंतन एवं आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था में उसकी प्रासंगिकता" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि भारतरत्न डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर एक प्रख्यात सामाजिक–आर्थिक विचारक और युग निर्माता के रूप में कई सिद्धांतों को पेश करके भारत के आर्थिक भाग्य को एक नया आकार दिया है। जिन्होंने अपने देश के संविधान को लिखने के साथ–साथ न केवल अछूत परिवारों के जीवन को बदला है, बल्कि भारत को एक सबसे बड़े लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में आकार देने में भी उनकी अहम भूमिका रही है।

डॉ. हेमन्त कुमार मालवी, आचार्य, व **रत्ना सिंह**, शोध छात्रा, वाराणसी :"धर्मान्तरण और दलित मुक्तिः अम्बेडकर के विचारों का विश्लेषण" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. अम्बेडकर का धर्मांतरण आंदोलन केवल धार्मिक परिवर्तन तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक क्रांति थी, जिसने भारत के दलितों को आत्मसम्मान, स्वाभिमान और समानता का एहसास कराया। उनके इस कदम ने आधुनिक भारत के सामाजिक, राजनीतिक और कानूनी ढाँचे को प्रभावित किया। उनके विचार आज भी प्रासंगिक है और दलितों के उत्थान के लिये एक प्रेरणास्रोत बने हुये हैं। अम्बेडकर का धर्मांतरण आंदोलन यह संदेश देता है कि जब तक समाज में समानता, स्वतंत्रता और न्याय नहीं होगा तब तक शोषित वर्ग अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करता रहेगा।

श्रीमती मीना परस्ते, शोधार्थी : "बाबा साहेब डॉ.भीमराव अम्बेडकर का नव्य बौद्धवाद" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर एक कालजयी महापुरुष थे, उन्होने अपनी विचारधारा को विकसित कर खुले दिमाग से विषलेशण किया। उनका दार्शनिक विश्लेषण मानवतावादी भूमिका पर आधारित था। आज के आपाधापी, भौतिकवादी युग में तृतीय विश्वयुद्व की विभीषिका से बचाने की जो क्षमता बौद्व धर्म में है,वह अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता। इस दृष्टि से बाबा साहेब का अथक प्रयास और उनका कालजयी व्यक्तित्व अविस्मरणीय रहेगा।

डॉ महेश चंद गोठवाल, असिस्टेंट प्रोफेसर,व **डॉ. भरत लाल मीणा**, असिस्टेंट प्रोफेसर अलवर : "डॉ. अंबेडकर का उच्च शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि डॉ. अंबेडकर की पहचान संविधान निर्माता के रूप में है लेकिन वास्तविकता में उनकी पहचान राष्ट्र निर्माता के रूप में होने चाहिए। एक राष्ट्रनिर्माण के जितने भी क्षेत्र है उन सभी में डॉ. अंबेडकर का योगदान रहा है। सेवा क्षेत्र, विज्ञान, वाणिज्य, अर्थव्यवस्था, किसान, मजदूर, महिलाओं, पिछड़ों, दलितों आदि के उत्थान के साथ–साथ विभिन्न धर्मों की न्यूनताओ को रेखांकित करते हुए तथा सभी के उत्थान और विकास के लिए चिंतन करते हुए वे राष्ट्र निर्माण हेतु निरंतर कार्यरत रहे।

Sarika Vinayakrao Bhagwat, Wardha - "Role of Dr. B. R. Ambedkar in Political and Educational Institutions : A Catalyst for Social Equality विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि भारतीय संविधान के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचे में डॉ. बी.आर. अंबेडकर के योगदान का राष्ट्र पर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ा है। सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और शैक्षिक सशक्तिकरण के लिए उनके अथक प्रयासों ने भारत के लोकतांत्रिक ढांचे को बदल दिया है, जिससे यह सुनिश्चित हुआ है कि हाशिए पर पड़े समुदायों को समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों।

डॉ.अश्विन लोया, सहायक प्राध्यापक (विधि), "संविधान में श्रम कानून और उनका प्रभाव" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि श्रम कानून किसी भी देश में श्रमिकों के अधिकारों और कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए बनाए जाते हैं। भारत में श्रम कानूनों का एक समृद्ध इतिहास रहा है, जो औद्योगीकरण, सामाजिक सुरक्षा और श्रमिक कल्याण की आवश्यकताओं के आधार पर विकसित हुआ है। भारतीय संविधान में श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई प्रावधान किए गए हैं, जिनमें मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक तत्व और समवर्ती सूची के अंतर्गत श्रम कानून शामिल हैं।

विचार सत्र की अध्यक्षता करते हुवे **डॉ. अरुण कुमार,** प्रोफेसर व प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, विजय राघवगढ़ (म प्र.**) व** विशेष अतिथि– **डॉ. ब्रह्मदीप अलूने,** प्रोफेसर, शासकीय महाविद्यालय, विदिशा (म.प्र.) ने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। सत्र का संचालन **डॉ.जी.एस.धवन,** कोषाध्यक्ष, मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन द्वारा किया गया।

चतुर्थ विचार सत्र : सत्र की निर्धारित थीम **''डॉ.बी.आर. अम्बेडकर के योगदान के योगदान**'' पर केन्द्रित शोधपत्रों का प्रतिभागियों द्वारा प्रस्तुतीकरण किया गया एवं तत्संबंधी विचार विमर्श हुआ।

सत्र में प्रमुख रूप से **रंजना बागड़े**, शोधार्थी : "डॉ. अंबेडकर के विचारो की वतमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता/समग्र मूल्यांकन" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि डॉ. अंबेडकर ने न केवल भारतीय संविधान को रूपरेखा दी, बल्कि उन्होंने समाज में व्याप्त जातिवाद और भेदभाव के खिलाफ भी कड़ा विरोध किया। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में समाज के हर वर्ग का ध्यान रखा जाए । डॉ. अंबेडकर ने समाज में समानता और सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने हमेशा यह सुनिश्चित किया कि हर व्यक्ति को उसके अधिकार मिले, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या लिंग का हो। उन्होंने हिन्दू धर्म के कुप्रथाओं के खिलाफ संघर्ष किया और बौद्ध धर्म को अपनाया। यह उनके समाज सुधार आंदोलन का एक महत्वपूर्ण पहलू था ।

Gaurav Dhakad, Delhi, E. C. Member : "The Worth of Constitution Provisions in the Contemporary India:Checks, Balances and Beyond" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि चूंकि वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और राजनीतिक बदलाव संवैधानिक कानून को प्रभावित करना जारी रखते हैं, इसलिए राष्ट्रों को स्थिरता और अनुकूलनशीलता के बीच संतुलन बनाना होगा। संवैधानिक ढाँचों की लचीलापन अंततः अधिकारों की रक्षा, न्याय को

बढ़ावा देने और 21वीं सदी में कानून के शासन को सुनिश्चित करने में उनकी प्रभावशीलता को निर्धारित करेगा।

डॉ. विमल कुमार लहरी , सहा. प्रोफेसर, वाराणसी : "आपदा से अवसरः अंबेडकर की प्रासंगिकता" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि भारतीय सामाजिक व्यवस्था विविध कालखण्डों में समान भागीदारी को लेकर बहुतायत उदासीन रही है। अस्पृश्यता एवं छूआछूत के नाम पर जनसंख्या का एक बड़ा भाग हाशिये पर रहा है। इनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए बड़े स्तर पर आवाजें नहीं उठीं। हाँ, धर्म की भित्ति का सहारा लेकर कबीर, रैदास, दादू, धन्ना, पीपा, सेन, त्रिलोचन, सधना आदि संतों ने कुछ सवाल जरूर किए, उन्ही सवालों को अंबेडकर व्यवहार में क्रियान्वित करने का सार्थक प्रयास किया और अस्पृश्यता एवं छूआछूत के दंश को अवसर एवं चुनौतियों के रूप में स्वीकार किया।

मयंक प्रताप, सहायक आचार्य, वाराणसी : "बाबा साहब अंबेडकर का संविधान निर्माण करने में योगदान" विषयक शोध पत्र प्रस्तुत करते हुवे कहाकि, अम्बेडकर का मत था कि एक न्यायनिष्ठ सामाजिक प्रणाली ही लोकतंत्र के आदर्शों को प्रतिबिम्बित कर सकती है। इस उद्देश्य से उन्होंने भारत में सामाजिक संस्थाओं और राजनीतिक संविधान के मध्य तारतम्य स्थापित किया जाना आवश्यक माना। उन्होंने कहा कि समानता स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के मूल्यों पर आधारित एक ऐसी उपयुक्त सामाजिक प्रणाली में ही लोकतंत्र का आदर्श चरितार्थ हो सकता है जिसमें सामाजिक हितों को प्रोत्साहित व संरक्षण देने के लिए समाज की उपलब्ध समस्त क्षमताओं और विवेक का बिना भेदभाव के उपयोग किया जा सके।

डॉ. विकास भड़िया, सहायक आचार्य : "दलितों के शैक्षिक विकास में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का योगदान" विषयक शोध पत्र का वाचन करते हुवे कहाकि दलितों के शैक्षिक विकास में डॉ. अम्बेडकर के त्रयी सिद्धांत अर्थात ''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो'' का एक दूसरे से क्रमशः उत्तरोत्तर सम्बद्ध है। इनमें शिक्षा का पहला स्थान है, शिक्षा से संगठन और संगठन से संघर्ष का सीधा सम्बन्ध है, अतः इस त्रयी सिद्धांत को डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक अभियान का हिस्सा माना गया है। डॉ. अम्बेडकर यह भलीभांति जानते थे कि बिना व्यापक शिक्षा अभियान के और बिना उसकी सफल परिणति के दलितों का बौद्धिक स्तर ऊंचा नहीं हो सकता और न ही समाज में उन्हें उन्नत स्तर ही प्राप्त हो सकता है।

विचार सत्र की अध्यक्षता करते हुवे **डॉ वीणा सिंह**–प्रोफेसर,शासकीय कन्या महाविद्यालय, कटनी (म प्र.) एवं विशेष अतिथि **डॉ. हेमलता चौहान**– प्रोफेसर, शास. स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) ने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। सत्र का संचालन **डॉ. रामचरण सिसोदिया,** पूर्व संभागीय रोजगार अधिकारी, उज्जैन द्वारा किया गया।

संगोष्ठी समापन सत्र :

मुख्य अतिथि **डॉ.राजेन्द्र कुमार छजलानी,** प्रोफेसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने व्यक्त किया कि डॉ. अम्बेडकर भारतीय समाज में समानता और समरसता चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर की मृत्यु के पश्चात श्री जगजीवन राम ने उनकी संविधानिक व्यवस्थाओं को वास्तविक धरातल पर उतारने का सफल प्रयास किया।

समारोह की अध्यक्षता करते हुवे **डॉ.प्रभा श्रीनिवासुलु ,** पूर्व प्राचार्य/आचार्य इतिहास व प्राचार्य, शास. माधव महाविद्यालय, उज्जैन ने कहाकि विश्व के सबसे बड़े प्रजातन्त्र को एक नई दिशा देने और उसमें मजबुती लाने में डॉ. अम्बेडकर का योगदान महत्वपूर्ण है।

विशेष अतिथि के रूप बोलते हुवे **डॉ. प्रभु चौधरी,** सदस्य– सम्पादक मण्डल, सामाजिक न्याय संदेश पत्रिका, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, नईदिल्ली ने कहा कि विश्व के सबसे बड़े प्रजातन्त्र को एक नई दिशा देने और उसमें मजबुती लाने में डॉ. अम्बेडकर का योगदान महत्वपूर्ण है।

समापन सत्र में संगोष्ठी स्वागताध्यक्ष व समन्वयक **डॉ. हरिमोहन धवन** एवं संगोष्ठी संयोजक **डॉ. राजेश ललावत** द्वारा संगोष्ठी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

द्वि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में देश–प्रदेश के शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं, शोधकर्ताओं एवं विषय–विशेषज्ञोंनेअपने विचारव्यक्त किये।

उद्घाटन एवं समापन सहित चार तकनीकि सत्रों में कार्यक्रम सम्पन्न हुवा। लगभग **चालीस** से अधिक शोधपत्रों का वाचन/प्रस्तुति एवं विचार–विमर्श हुवा।

समापन सत्र में संगोष्ठी स्वागताध्यक्ष व समन्वयक डॉ. हरिमोहन धवन एवं संगोष्ठी संयोजक डॉ. राजेश ललावत द्वारा संगोष्ठी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

अन्त में अकादमी कोषाध्यक्ष डॉ.जी.एस. धवन ने समस्त अतिथियों, प्रतिभागियों एवं विशेष रूप से भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधन परिषद, नईदिल्ली के प्रति आभार व्यक्त किया।

❐ ❐ ❐

पूर्वदेवा

मध्यपदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उनमूलन, दलितों में मानवीय–अस्मिताबोध एवं अधिकार–चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन को प्रवर्त करना है। जिससे कि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं से मौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित है।

- आलेख MS-Word में A-4 आकार के पेपर पर डबल स्पेस में Kruti Dev010 फॉण्ट में टाईप होना चाहिए।
- आलेख 5000 से 8000 शब्दों के बीच होना चाहिए। शोध आलेख के साथ 150 शब्दों का सांराश भी भेजे।
- शोध आलेख E-mail ID : mpdsaujn@gmail.com पर प्रेषित करें।
- प्रकाशन हेतु प्राप्त प्रत्येक शोध आलेख की दो विषय विशेषज्ञों द्वारा समीक्षा की जायेगी । समसामयिक प्रासंगिकता, स्पष्ट एवं तार्किक विश्लेषण, सरल एवं बोधगम्य भाषा, उचित प्रविधि मौलिकता आदि आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकृति के मानदण्ड होंगे।
- किसी भी आलेख को स्वीकृत या अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक का होगा।
- सभी टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ आलेख के अन्त में दिये जाएँ तथा आलेख में यथास्थन उनका आवश्यक रूप से उल्लेख करें।
- पुस्तकों के लिए सन्दर्भ हेतु निम्न पद्धति का अनुसरण करें:
  उपनाम, नाम, (प्रकाशन वर्ष), पुस्तक का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन स्थान, पृष्ठ क्रमांक
- जर्नल के लिए सन्दर्भ हेतु निम्न पद्धति का अनुसरण करें:
  उपनाम, (प्रकाशन वर्ष), आलेख का शीर्षक, जर्नल का नाम, अंक, खण्ड, प्रकाशक, प्रकाशन स्थान, पृष्ठ क्रमांक

ग्राहक शुल्क दरें (Rates of Subscription) इस प्रकार है–

वार्षिक शुल्क : संस्थागत रू. 700/– वैयक्तिक रू. 600/–

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.) 456010

म.प्र. दलित साहित्य अकादमी के लिये पी.सी. बैरवा द्वारा
न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन से मुद्रित एवं प्रकाशित
सम्पादन – डॉ. हरिमोहन धवन

आर.एन.आई. रजिस्ट्रेशन नं. 61954/95 **ISSN 0974-1100**

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

❐ संक्षिप्त विवरणिका ❐

तथागत् बुद्ध के संदेश 'अत्त दीपो भव' तथा डॉ. अम्बेडकर के आव्हान 'संगठित रहो, शिक्षित बनो, संघर्ष करो' से अनुप्राणित प्रदेश के प्रमुख दलित समाजसेवियों, साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों के सम्मिलित प्रयास से सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्परा से समृद्ध नगर उज्जैन में एक स्वशासी संगठन के रूप में 'मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना की गई। तदुपरान्त म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट,1973 के अन्तर्गत (क्रमांक 19066 दिनांक 18 नवम्बर,1987 पर) संस्था का विधिवत् पंजीकरण कराया गया है। अकादमी का प्रधान कार्यालय उज्जैन स्थित है। ।

❐ घोषित लक्ष्य

अकादमी का लक्ष्य समाज के शोषित–पीड़ित दलितजनों को अपने मानवीय अधिकारों एवं समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से अवगत कर, उनमें नवीन चेतना का संचार करना और शोषण व असमानता के विरूद्ध संघर्ष के लिए सतत् प्रेरित करना है। इस निमित्त दलित साहित्य सृजन एवं शोध–अनुशीलन तथा तदुनुरूप परिवेश का सजृन करना है। साथ ही दलितों के मानवोचित सामान्य अधिकारों की उपलब्धि के लिए उन्हें सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान कर अपनी सक्रिय वैचारिक–साहित्यिक पहल द्वारा उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता की समाज में पुनसर्थापना का प्रयास करना है।

❐ अकादमी की प्रमुख गतिविधियाँ :

निर्धारित कार्य योजना के अनुसार अकादमी की प्रमुख गतिविधियाँ एवं उल्लेखनीय उपलब्धियाँ एवं संचालित गतिविधियाँ अधोलिखित हैं :

❐ सामाजिक विज्ञान शोध केन्द्र की स्थापना

अकादमी की विशेष योजनानुसार उज्जैन में अनुसूचित जाति के विकास एवं समस्याओं पर केन्द्रित एक उच्चस्तरीय अध्ययन–अनुसंधान केन्द्र स्थापित किया गया है। जिसके अन्तर्गत एक समृद्ध ग्रन्थालय, शोधपत्र–पत्रिकाऐं, शोध–अध्ययन कक्ष, म्यूजियम आदि अन्य आवश्यक अनुसंधान सुविधाएँ उपलब्ध है।

❐ ग्रन्थालय एवं प्रलेखन केन्द्र

अकादमी के ग्रन्थालय में दलित साहित्य, भारतीय समाज व्यवस्था, धर्म.दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि विषयों पर प्रमुख ग्रंथ संग्रहित हैं। ग्रन्थालय में देश के विभिन्न भागों से प्रकाशित दलित समस्याओं पर केन्द्रित पत्र–पत्रिकाएँ, जर्नल्स आदि संग्रहित किये गये हैं। ग्रन्थालय में शोध– अध्ययन की विशेष सुविधाऐं उपलब्ध कराई जाकर उसे एक समृद्ध प्रलेखन केन्द्र के रूप में विकसित किया जा रहा है ।

❐ राष्ट्रीय सम्मेलनों, प्रान्तीय सम्मेलनों, राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों का आयोजन, कार्यशाला, व्याख्यानमाला, जयंती, स्मृति व्याख्यान कार्यक्रमों का आयोजन आदि

❐ दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार

अकादमी द्वारा दलित साहित्य, इतिहास, कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में सृजित उत्कृष्ट कृतियों, ग्रन्थों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से उच्चस्तरीय 'दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार' की स्थापना की गई है।

❐ शोध पत्रिका "पूर्वदेवा" का प्रकाशन–'पूर्वदेवा' का वर्ष 1994 से नियमित प्रकाशन किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत माह–मार्च, 2025 तक 120 अंकों का नियमित प्रकाशन किया जा चुका है जिसमें 1064 से अधिक शोध आलेख प्रकाशित किये जा चुके हैं

❐ पुस्तक प्रकाशन – पुस्तक, पाण्डुलिपि प्रकाशन योजनान्तर्गत अब तक 12 पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है। साथ ही राष्ट्रीय सम्मेलन प्रसंग विशेष पर स्मारिकाओं का प्रकाशन भी किया गया है।

❐ अकादमी भवन व परिसर – प्रशासकीय भवन, जिसके अनतर्गत अकादमी कार्यालय, ग्रन्थालय एवं शोध केन्द्र एवं संत कबीर सभागृह संचालित है। अकादमी का प्रधान कार्यालय – बाणभट मार्ग (केन्द्रीय विद्यालय सम्मूख) उज्जैन मध्यप्रदेश में स्थित 1.672 हेक्टेयर क्षेत्रफल के भूखण्ड पर अवस्थित है।

पी.सी. बैरवा–सचिव **डॉ. हरिमोहन धवन**–अध्यक्ष